बौद्ध दर्शन

अभिधम्मत्थ सङ्गहो

मार्च १९३९

भिक्खु वरसम्बोधि

बौद्ध दर्शन

अनुरुद्ध महास्थविर रचित

अभिधम्मत्थ सङ्गहो

मूलपालि

और

हिन्दी अनुवाद तथा सारांश

Published by
U. Varasambodhi, Buddhist,
Buddhist Free Reading Room
at the Goverdhan Sarai,
Benares City.

Printed by
A. Bose,
at the Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

PATRONS

Senator U. Thwin, Trustee of Shew Dagon Pagoda and Rice Mills owner, paid for 815 copies of 'Abhidhammatha Sangh' transleted by Ven.

Bhikkhu Varasambodhi Maha Thero, in commemoration of his pilgrimage to the sacred places in India in the month of November, 1937.

U. Ba Maung, Manager of Co-operative Bank, Pegu, Burma paid for 155 copies.

U. Tun Nyein, The Burmese Company, Myan Aung, Burma, paid for 30 copise.

၁၉၃၇ခုနှစ်နိုဝင်ဘာလ
အတွင်းအိန္ဒိယရှိဗုဒ္ဓဘာ
သာတို့၏ဌာနများသို့ရောံ
ခြင်းကိုအမှတ်တရဖြစ်
စေရန်-ရန်ကုန်မြို့ရွှေတိ
ဂုံစေတီတော်ကြီး၏ဘဏ္ဍာ
တော်ထိန်းအထက်လွှတ်
တော်အမတ်သူဌေးဦးသွင်
သူဌေးကတော်ဒေါ်ဒေါ်
သိန်း။သားစက်ရှင်မင်းကြီး
ဦးစန်မောင်-သမီးမင်းက
တော်ဒေါ်ခင်ခင်ကြီးတို့
က-ပူဇော်ထားသော"အ
ဘိဓမ္မတ္ထသင်္ဂဟ"ဓမ္မစေ
တီတော်။

भूमिका

बौद्ध-धर्म भारतवर्ष की उपज है। यहीं से हमारे पूर्वजों ने इसे देश-विदेश में फैलाया। आज भी बाहर से हजारों नर-नारी भगवान् बुद्ध के कारण भारत वर्ष को अपना पुण्य-स्थान समझकर यहाँ तीर्थ के हेतु आते हैं।

कितने शोक की बात है कि अपने उस गौरव को आज हम बिलकुल भूल गये हैं। हमारे बीच में कितने ऐसे लोग हैं जिनने उस गम्भीर धर्म के तत्त्व को समझने के लिए कुछ समय लगाया हो? आज से पचास वर्ष पूर्व ही बौद्ध-धर्म के धर्म-ग्रन्थ त्रिपिटक अँगरेजी, फरांसीसी, जर्मन, रूसी आदि भाषाओं में आ गये थे। किंतु आज तक हमारी राष्ट्र-भाषा हिन्दी में उसका जिक्र भी नहीं हुआ था। हिन्दी साहित्य में बौद्ध-धर्म लाने का श्रेय सर्वप्रथम हमारे पूज्य जेठे गुरु भाई राहुलजी को है, जिनने १९३२-३५ में ही 'बुद्धचर्या' 'मज्झिम निकाय' तथा विनय 'पिटक' जैसे ग्रन्थ लिख डाले। श्री शिवप्रसादगुप्त जी तथा महाबोधि सभा ने उन ग्रन्थों को प्रकाशित करा के हिन्दी की बड़ी सेवा की है।

राहुलजी ही की प्रेरणा से पूज्य आनन्द जी तथा मैंने और भी त्रिपिट के कुछ ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद कर डाला। किंतु, अभी तक जितने अनुवाद हुए थे सभी केवल विनय-पिटक सूत्र-पिटक के ग्रन्थों के। अभिधर्म-पिटक के किसी भी ग्रन्थ का अभी तक हिन्दी में अनुवाद नहीं हुआ था।

'अभिधर्म' बौद्ध-धर्म के दर्शन का नाम है। पाली अभि-धर्म ग्रन्थों का प्रकार संस्कृत वैदिक दर्शन से बिलकुल भिन्न हैं। बौद्ध-धर्म का परम उद्देश्य चित्त-शुद्धि है, क्योंकि यहाँ कूटस्थ 'आत्मा' का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं किया गया है। अतः अभिधर्म में चित्त की भिन्न अवस्थाओं का विश्लेषण करके यह समझाया गया है कि चित्त किस तरह लोभ-द्वेष-मोह से शुद्ध होकर निरुद्ध हो सकता है। यही अभिधर्म का मुख्य विषय है। हम मज्रे में अभिधर्म को एक 'मनोविज्ञान-स्थित कर्म-शास्त्र' कह सकते हैं। इसलिए, सम्भव है पाठक को यह ग्रन्थ कुछ अजीब सा मालूम दे।

पिछली वार १९३६ में जब मैं 'सिंहल' से लौटकर यहाँ आया, तो उस समय पूज्य महास्थविर वरसम्बोधि जी 'अभि-धम्मत्थ संगहो' का हिन्दी अनुवाद कर रहे थे। जैसे, 'सिद्धान्त कौमुदी' का 'लघुसिद्धान्त कौमुदी' या 'न्याय-दर्शन' का 'तर्क-भाषा' संक्षिप्त संस्करण है, वैसे ही सारे अभिधर्म पिटक का संक्षिप्त संस्करण 'अभिधम्मत्थ संग हो' है। इसके कर्ता दक्षिण भारत के भिक्षु स्थविर अनुरुद्ध थे, जिनने शायद लंका

में जाकर बौद्ध-साहित्य का अध्ययन किया था और यह ग्रन्थ लिखा था। आजकल बौद्ध देशों में इस ग्रन्थ का बड़ा प्रचार है। अभिधर्म के विद्यार्थी को पहले इसको कण्ठ कर लेना होता है। अतः इस पुस्तक की उपादेयता बौद्ध-धर्म के विद्यार्थी को बड़ी ज़बरदस्त है।

मैं जानता था कि श्री महास्थविर वर सम्बोधिजी बर्मा में अभिधर्म के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित विद्वान् हैं। किंतु, आप स्वयं समझ सकते हैं कि विषय का कितना भी पण्डित होते हुए एक अपरिचित विदेशी भाषा में ऐसे गूढ़ ग्रन्थ का अनुवाद करना कितना दुष्कर है! तो भी, महास्थविरजी बड़े उत्साह से अनुवाद कर रहे थे। मुझसे कहा था कि ग्रन्थ समाप्त हो जाने पर भाषा की कमज़ोरी मुझसे ठीक करा लेंगे; और मैंने स्वीकार भी कर लिया था।

पारसाल जब ग्रन्थ समाप्त हो गया तब महास्थविर ने मुझे देखने को बुलाया। उसे देखकर मुझे ऐसा मालूम हुआ कि बिना अर्थों को क्षति पहुँचाए उसकी भाषा को बदलना मेरी क्षमता के बाहर था। अतः मैंने उन्हें सलाह दी कि पुस्तक को ऐसे ही छपने दें। महास्थविर का उत्साह सराहनीय है कि एक अपरिचित विदेशी भाषा में ऐसे गूढ़ ग्रन्थ को अनुवाद करके छपवा रहे हैं। मैं उन्हें इसके लिए अनेक धन्यवाद देता हूँ।

× × × ×

बौद्ध-दर्शन को समझने के लिए सबसे पहले इसका 'अनात्म-वाद' और 'अनित्य-वाद' समझना जरूरी है। आत्म-शिक्षा, अर्थात् 'मन' का स्वरूप कैसा समझाया है इसे भी जान लेना आवश्यक है। अतः इन तीन विषयों पर 'धर्मदूत' में प्रकाशित अपने लेखों को पाठक के लिए उद्धृत कर देता हूँ।

भिक्षु जगदीश काश्यप
सारनाथ

आत्मवाद या अनात्मवाद

लोग कहते हैं—मेरा शरीर, मेरा ज्ञान, मेरी भावनायें या मेरे कार्य्य। प्रश्न होता है कि यह शरीर का स्वामी कौन है? ज्ञान का ज्ञाता कौन है? भावनाओं की अनुभूति किसे होती है? कार्य्य कौन करता है?

संसार के आरम्भ से लेकर दार्शनिक इस प्रश्न पर विचार करते आये हैं। प्रश्न यद्यपि सीधा और सरल है तथापि है बहुत गम्भीर।

आरम्भ काल के विचारकों को इस प्रश्न ने चकराये रक्खा। बहुत सोच विचार के पश्चात् वह इस परिणाम पर पहुँचे कि प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में छिपी हुई एक सत्ता है जो शरीर की मालिक है—ज्ञान की ज्ञाता है भावनाओं की अनुभवकर्ता है, द्रष्टा है, श्रोता है, और सभी कार्यों की कर्त्री है। इस सत्ता का नाम करण किया उन्होंने आत्मा। सांख्य दर्शन ने इसी सत्ता को पुरुष और जैन-दर्शन ने जीव कहा। यह आत्मा शरीर और मन दोनों से परे तथा दोनों की प्रेरक शक्ति मानी गई।

भगवान् बुद्ध ने ही सर्व प्रथम 'आत्मा' के अस्तित्व का मिथ्यापन दिखा कर उस अस्तित्व का खंडन किया जिसका

विश्वास लोग अति दीर्घ-काल से करते चले आये थे। भगवान ने इस बात की घोषणा की कि प्रत्येक व्यक्ति चित्त और शरीर से संयुक्त है। और इनके सिवाय उसमें और कुछ है ही नहीं। शरीर रूप कहलाता है और चित्त के चार आकार हैं—वेदना (feeling) संज्ञा (conceptual knowledge) संखार (syntheticmental states), विज्ञान (consciousness),

इन पाँचों स्कन्धों पर ही किसी भी व्यक्ति की स्थिति निर्भर है।

राजा मिलिन्द और स्थविर नागसेन की पहली भेंट में सर्व प्रथम इसी प्रश्न पर वाद विवाद छिड़ गया। यह वाद अत्यन्त ही रोचक है और आत्मवाद सम्बन्धी बौद्ध दृष्टि-कोण को स्पष्ट करता है। मैं यहाँ मूल-पालि से इसका भावानुवाद देता हूँ।

राजा मिलिन्द भदन्त नागसेन के पास जा कुशल-संवाद पूछकर एक आसन पर बैठे। नागसेन ने भी राजा का कुशल-समाचार पूछा जिससे राजा स्वभावतः प्रसन्न हुआ।

राजा ने नागसेन से पूछा "भन्ते ! आप कैसे पुकारे जाते हैं ? आपका शुभ नाम क्या है ?"

"राजन् ! मैं नागसेन नाम से पुकारा जाता हूँ, मुझे भिक्षु यही कह कर बुलाते हैं। माता पिता अपने बच्चों के इस प्रकार के नाम रखते हैं जैसे नागसेन, सूरसेन, वीरसेन अथवा सीहसेन। लेकिन ये सब नाम केवल व्यवहार के लिये हैं। तात्त्विक दृष्टि से इस प्रकार का कोई व्यक्ति नहीं होता।

राजा मिलिन्द ने विस्मित होकर कहा "मेरे पाँच सौ युनान अनुयाइयो तथा अस्सी हज़ार भिक्षुओ ! देखिये ! यह कह रहे हैं कि यथार्थ में नागसेन नाम का कोई व्यक्ति नहीं है। क्या यह बात कभी भी माननीय है ?"

फिर स्थविर नागसेन को सम्बोधित करते हुए बोला "भन्ते ! यदि यथार्थ में व्यक्ति है ही नहीं, आप को आप की आवश्यक वस्तुयें कौन देता है ? उन वस्तुओं का उपयोग कौन करता है ? पुण्य कौन करता है ? ध्यान कौन करता है ? आर्य मार्ग और उसका फल निर्वाण कौन प्रत्यक्ष करता है ? प्राण-हत्या, चोरी तथा व्यभिचार कौन करता है ? असत्य कौन बोलता है ? नशेदार चीज़ों को कौन ग्रहण करता है ? संक्षेप में सभी प्रकार के पापों को कौन करता है ?"

"यदि—जैसे आप कहते हैं—यथार्थ में आत्मा नहीं तो फिर पुण्य पाप—इनका कोई अर्थ नहीं। भले बुरे कर्मों का कोई कर्त्ता भी नहीं; दूसरों को पाप की ओर ले जाने वाला भी कोई नहीं और अच्छे बुरे कर्मों का फल भी कोई नहीं।"

"भन्ते नागसेन ! तब तो अगर कोई आपकी हत्या कर डाले तो उसे कोई पाप नहीं। आपका कोई गुरु भी नहीं। आप दीक्षित भी नहीं।"

"आप मुझसे कहते हैं कि भिक्षु आपको नागसेन के नाम से पुकारते हैं। भला वह नागसेन क्या है ? क्या आपके केश नागसेन हैं ?"

"राजन् नहीं, भला मेरे केश किस प्रकार नागसेन हो सकते हैं!" "भन्ते, तो फिर क्या आपके नख, दांत, चमड़ी, माँस अथवा शरीर का कोई दूसरा हिस्सा नागसेन हैं?"

"राजन्, नहीं ये सब भी नागसेन कैसे हो सकते हैं ?!!

"तो फिर क्या आप का रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान, नागसेन हैं?"

"राजन्, यह भी नहीं"

"तो फिर क्या पाँचों स्कन्धों का संयोग नागसेन है?"

"राजन्, यह भी नहीं"

"तो क्या नागसेन इन पाँचों स्कन्धों से पृथक् कोई चीज़ है?"

"यह कैसे हो सकता है!"

"भन्ते! मैं पूछता पूछता हार गया, तिस पर भी मैं न जान सका कि नागसेन क्या है। तो क्या नागसेन केवल एक नाम ही है?" आखिर नागसेन है क्या असल में? भन्ते! आप असत्य बोल रहे हैं कि नागसेन नाम का कोई व्यक्तित्व यथार्थ में विद्यमान नहीं है।

× × × ×

भदन्त नागसेन राजा से बोले 'राजन्" आपका जन्म क्षत्रिय-कुल में हुआ है। इस लिये स्वभावतः आप अत्यन्त सुकुमार हैं। फिर भी आप इतनी गर्मी में दोपहर को यहाँ चले आये। मुझे विश्वास है कि आप जरूर थक गये होंगे। आप पैदल आये या रथ पर?"

"भन्ते ! मैं पैदल नहीं चलता हूँ। रथ में आया हूँ।"

"राजन्, अगर आप रथ से आये हैं तो कृपया मुझे यह बताइये कि यथार्थ में रथ है क्या ?"

"क्या रथ के बाँस रथ हैं ?"

"नहीं बाँस रथ नहीं हो सकते।"

"तो फिर क्या धुरा, चक्र, रस्से, जुआ, पहियों के डंडे, अथवा बैल हाँकने की लाठी, रथ है ?" "नहीं"

"तो फिर कहिये कि क्या रथ इनसे अलग कोई वस्तु है ?"

"नहीं, भन्ते ! यह कैसे हो सकता है।"

"राजन्, मैं पूछ पूछ कर हार गया। तिस पर भी मैं न जान सका कि यथार्थ में रथ क्या है। तो फिर क्या आप का रथ केवल एक नाम मात्र है ? राजन् आप असत्य बोल रहे हैं कि आप रथ पर आये हैं। आप इस सारे जम्बुद्वीप (भारत वष) में सब से प्रतापी राजा हैं। तो फिर आप किसके डर से असत्य बोल रहे हैं ?"

भदन्त नागसेन ने पाँच सौ युनानियों तथा अस्सी हजार भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा "यह देखिये, अभी राजन ने मुझसे कहा मैं रथ पर आया हूँ।" लेकिन जब मैंने उनसे रथ दिखाने को कहा तो वे रथ नहीं दिखा सकते। क्या वे विश्वास के पात्र हैं ? सभी युनानी एक साथ बोल पड़े "राजन् ! आप में शक्ति हो तो इस प्रश्न का उत्तर दें।"

तब राजा ने नागसेन से कहा "भन्ते! मैं असत्य नहीं बोलता हूँ। रथ के बाँस, पहिये, रथ का ढाँचा, पहियों के डंडे हाँकने की लकड़ी—इन भिन्न भिन्न हिस्सों पर 'रथ' का अस्तित्व निर्भर है। 'रथ' एक शब्द है जो केवल व्यवहार के लिये है।

"ठीक है महाराज, आपने यथार्थ रथ को समझ लिया। ठीक इसी प्रकार मेरी हालत में भी रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान—इन पाँचों स्कन्धों पर मेरा अस्तित्व निर्भर है। नागसेन शब्द केवल व्यवहार मात्र है। यथार्थ में नागसेन नाम का कोई व्यक्तित्व विद्यमान ही नहीं है।"

"राजन्! वजिरा नाम की भिक्षुनी ने भगवान् के सम्मुख इस बात को कहा था :—

"यथाहि अंगसम्भारो, होति सद्दो रथो इति,
एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति सत्तोति सम्मुति,

अर्थः—जिस प्रकार रथ के अलग २ हिस्सों पर रथ का अस्तित्व निर्भर है, उसी प्रकार इन पाँच स्कन्धों पर व्यक्ति का अस्तित्व निर्भर है।

भन्ते नागसेन! सचमुच यह अत्यन्त आश्चर्य जनक है! इस प्रकार के गूढ़ प्रश्न को आपने इतनी सरलता से हल कर डाला। यदि इस समय भगवान् यहाँ उपस्थित होते तो वे आपके उत्तर का समर्थन करते। भन्ते नागसेन, आपने बहुत ही अच्छा कहा!"

इस प्रकार यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि शरीर और मन से परे किसी नित्य—आत्मा को मानना केवल भ्रम मात्र है।

यदि एक व्यक्ति में शरीर और मन के परे दोनों के स्वामी तथा संचालक आत्मा का अस्तित्व मानना आवश्यक है तो फिर उसी कारण से रथ में भी एक रथ-आत्मा होना ही चाहिये जो कि रथ के भिन्न २ भागों का स्वामी हो। यदि मैं = आत्मा न तो अपना शरीर हूँ, न अपना ज्ञान हूँ, न अपनी भावनायें हूँ, न अपने कार्य हूँ, (क्योंकि मैं तो इन सबका स्वामी हूँ और मैं तथा मेरी वस्तुयें कभी एक नहीं हो सकतीं) तो फिर रथ का भी एक रथ-आत्मा होना ही चाहिये क्योंकि रथ और उसके भाग भी एक वस्तु नहीं हो सकते।

इस प्रकार तो किसी भी ऐसी वस्तु की कल्पना नहीं की जा सकती जिसमें आत्मा न हो। कुर्सी के भिन्न २ भागों का स्वामी कुर्सी-आत्मा और चौकी के भिन्न २ भागों का स्वामी चौकी-आत्मा। इसी प्रकार मेज़-आत्मा, कलम-आत्मा, किताब-आत्मा है। है इसी की भी कोई हद ?

जिन भिन्न २ भागों से किसी वस्तु का निर्माण हुआ है, उन भागों से पृथक् कोई एक और वस्तु उसमें नहीं हुआ करती। रथ के पहियों से पृथक् कोई "एक रथ" नहीं है। इसी प्रकार जिन पाँच स्कन्धों (= रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) का यह व्यक्ति बना हुआ है उनसे पृथक् कोई एक-मैं = आत्मा = पुरुष = जीव नहीं है।

अनित्यता

संसार निरन्तर परिवर्तन-शील है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो दो क्षण के लिये भी एक ही बनी रहे। अस्तित्व कहीं नहीं है, क्रिया ही क्रिया है; है कहीं नहीं है, होना ही होना है।

जिसकी उत्पत्ति है, उसका विनाश अवश्यम्भावी है। पानी में एक लहर उठती है, वह अपने नहीं रहती, लेकिन दूसरी लहर को पैदा कर जाती है, यह दूसरी लहर तीसरी लहर को, और यह क्रम जारी रहता है। एक लहर का उठना दूसरी लहर के मिटने पर; और एक और लहर का उठना इस दूसरी लहर के मिटने पर—यह क्रम जारी रहता है।

जिस क्षण कोई वस्तु अस्तित्व में आती है, उसी क्षण से वह विनाश की ओर मुँह फेर लेती है। सुन्दर नवीन गृह प्रतिदिन पुराना होता जाता है, एक दिन गिर पड़ता है; और कुछ समय बाद यह भी मालूम करना कठिन हो जाता है कि वह कहाँ बना हुआ था। हमारे हृदय की प्रत्येक धड़कन हमें मृत्यु के समीप ले जा रही है।

अनित्यता एक दार्शनिक सिद्धान्त नहीं है, यह एक वास्तविकता है, असलियत है, जिसको हम अपने प्रतिदिन के साधारण जीवन में बड़े ज़ोर के साथ अनुभव करते हैं। लेकिन

हमारा अज्ञान, हमारी आसक्ति हमें इस परम सत्य को देखने नहीं देती और हम समझे रहते हैं कि 'जैसा कल वैसा आज'।

मैं एक चीज की ओर इशारा करके पूछता हूँ 'क्या यह बहुत दिन चलेगी ?' इसका क्या मतलब है ? यही न कि क्या यह बहुत दिन तक मेरे स्वार्थ (मतलब) की पूर्ति करती रहेगी ? इससे अधिक और क्या ?

मेरे मित्र के पास लगभग तीस वर्ष से एक बाइसिकल है। वह एक-एक करके इसके हर एक पुर्जे को कभी न कभी बदल चुके हैं सारी साइकिल की कितनी बार मरम्मत हो चुकी है, और कितनी बार उस पर रोगन फिर चुका है। लेकिन फिर भी मेरे मित्र का कहना है कि यह उसकी वही साइकिल है, जिसे उसने तीस वर्ष पहले खरीदा था। इतने परिवर्तन होते हुए भी, इस साइकिल को वह 'यह वही साइकिल है' केवल इसलिये समझता है कि साइकल पर चढ़ने से उसका जो मत-लब (स्वार्थ) पूरा होता है, वह इतने दिनों तक बराबर होता रहा है।

यद्यपि अपने व्यवहार में हमें 'बहुत दिन चली' 'वही है' आदि शब्दों का प्रयोग करना ही पड़ता है; लेकिन वास्तविक रूप से देखा जाय तो हमारे ये व्यवहार हमारे घोर अज्ञान के परिचायक मात्र हैं।

जब तक हम अपनी आसक्ति (तृष्णा) का नाश नहीं कर देते, तब तक हमारी सक्कायदिट्ठी वस्तु-विशेष को 'वही है'

ऐसा समझने की अविद्या बनी रहेगी और हम मांसिक और भौतिक वस्तुओं (धर्मों) की अनित्यता को नहीं देख सकेंगे।

आचार्य्य बुद्धघोष ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ विशुद्धि-मार्ग में अनित्यता की क्या सुन्दर व्याख्या की है—

"यथार्थ रूप से देखा जाय, तो प्राणियों का जीवन-काल एक चित्त-क्षण मात्र है। जिस प्रकार रथ का पहिया जब चलता है, तब (पहिये का) एक ही भाग (पृथ्वी पर टेकते हुए) चलता है जब खड़ा होता है, तब एक ही भाग (पृथ्वी पर टेकते हुए) खड़ा होता है; उसी प्रकार प्राणियों का जीवन-काल एक ही चित्त-क्षण मात्र है। उस चित्त-क्षण के निरोध होने पर 'प्राणी मर गया, निरुद्ध हो गया' कहा जाता है।"

"बीते चित्त-क्षण की अवस्था में (प्राणी) जीता था, न जीता है, न जीएगा; भविष्य के चित्त-क्षण की अवस्था में (प्राणी) जीएगा, न जीता था, न जीता है; वर्तमान चित्त-क्षण की अवस्था में (प्राणी) जीता है, न जीता था, न जीएगा।"

काल

यदि यही वास्तविकता है, तो फिर अतीत, वर्तमान, भविष्यत् काल से हम क्या समझें? अतीत, वर्तमान तथा भविष्यत् काल की कल्पना हमको उसी चीज के सम्बन्ध में होती है, जिसे हम 'वही है' समझते हैं। पहले यह ऐसी थी, अब यह ऐसी है, भविष्य में ऐसी रहेगी; या मैं वहाँ था, अब मैं यहाँ आ गया हूँ और मैं वहाँ जाऊँगा। इसे स्पष्ट रूप से यों कहा जा सकता

है कि 'एक ही बनी रहनेवाली सत्ता' के पूर्व और पर का विचार ही काल की कल्पना का कारण है।

लेकिन हम देख चुके हैं कि यहाँ सब कुछ अनित्य ही अनित्य है और सत्य के प्रकाश में 'नित्य' नाम की वस्तु दिखाई नहीं देती। इसलिये अतीत, वर्तमान तथा भविष्यत् काल की कल्पना तभी तक है, जब तक सक्काय-दिट्ठी (=सत्काय-दृष्टि = वस्तु विशेष को 'वही है' समझने की अविद्या) का नाश नहीं हुआ।

जब अर्हत (=जीवन्मुक्त) अपनी अविद्या का मूलोच्छेद कर देता है। तभी उसे अनित्यता अपने नग्न रूप में दर्शन देती है—पूर्व और पर की कल्पनाओं से विरहित। भगवान् बुद्ध ने ऐसे अर्हत् को अकप्पियो कहा है अर्थात् कल्प (=काल = समय) के बन्धन से मुक्त।

दीर्घ-निकाय के ब्रह्मजाल-सूक्त (जंजाल सूक्त) में जहाँ भगवान् ने ६२ मिथ्या धारणाओं का वर्णन किया है, वहाँ उन्होंने कहा है कि यह सभी मिथ्या धारणाएँ पूर्वान्त-अपरान्त (पिछलेपन, अगलेपन) का परिणाम हैं।

मिलिन्द प्रश्न नामक ग्रन्थ में राजा मिलिन्द ने स्थविर नागसेन से पूछा है—"भन्ते! काल का क्या कारण है?" उत्तर मिला है—"राजा, काल का कारण है अविद्या।"

परिवर्तन

यदि बौद्ध-दर्शन में काल के लिये स्थान नहीं है, तो परिवर्तन को कैसे समझा जाय?

परिवर्तन होता है इस से उस में या क से ख में। हम एक नन्हे बच्चे को पिंगुरे में झूलते देखते हैं। क्या जरा जरा से हाथ और पैर हैं! लेकिन उस साल के बाद वही बच्चा लड़का हो गया है, भागता है, कूदता है, बातें बनाता है। हम कहते हैं कितना परिवर्तन!

यह परिवर्तन का विचार क्यों और कहाँ से आता है? हम बच्चे की जीवन-धारा में से, जो सतत बहती रही है, दो स्थलों पर अँगुली रखते हैं और उन दो स्थलों के बीच के प्रवाह को बिल्कुल भुलाकर, उन दो स्थलों (= अवस्थाओं) की परस्पर तुलना करते हैं। बच्चे के माता-पिता, जो बच्चे को प्रायः देखते रहते हैं, इस परिवर्तन का इस प्रकार सहसा अनुभव नहीं करते। स्वयं बच्चा, जिसे अपने व्यक्तित्व का सदा स्मरण रहता है, इस परिवर्तन का तनिक भी अनुभव नहीं करता। केवल उस समय जब वह अपने आप को "अपने" से पृथक् कर, अपनी जीवनधारा में से दो स्थलों को लेकर, उन दो स्थलों की अवस्था की पारस्परिक तुलना करने लगता है, तभी वह इस परिवर्तन का कुछ हद तक अनुभव करता है। जो अपने इस जीवन-प्रवाह के बिल्कुल साथ-साथ ले चलता है, उसके लिये तो कहीं तनिक भी परिवर्तन नहीं है।

यह कहना असम्भव है कि कहाँ क समाप्त हुआ और कहाँ ख का आरम्भ। यह भी कहना असम्भव है कि मिट्टी परिवर्तित होते होते ठीक किस क्षण में घड़ा बन गई। क से ख

में सीधा कोई परिवर्तन नहीं, मिट्टी से मिट्टी के घड़े की अवस्था में कोई सीधा परिवर्तन नहीं—एक लगातार स्रोत है, अनवरत चलन है, निरन्तर प्रवाह है। यही है अनित्यता का वास्तविक अर्थ।

कुछ दार्शनिकों ने बौद्ध-धर्म को क्षणिकवाद कहा है। लेकिन क्षणिकवाद कैसे? जब यह निश्चयपूर्वक कहा ही नहीं जा सकता कि कहाँ एक क्षण समाप्त होता है और कहाँ दूसरा आरम्भ, तो फिर अनेक क्षणों की बात ही क्या? यह तो केवल अपने दैनिक व्यवहार की सुविधा के लिये है।

अर्हत् जब इस सक्काय-दृष्टि को नष्ट कर डालता है, वह अनित्यता को उसके यथार्थ स्वरूप में देखता है। उसका (परिवर्तन = मृत्यु का) भय जाता रहता है। वह निर्वाण-प्राप्त होता है—लाभ-हानि, सुख-दुःख, प्रेम-घृणा सभी बन्धनों से मुक्त।

आत्म-शिक्षा

हम लोग प्रति क्षण एक चीज जानते और दूसरी चीज भूलते रहते हैं।

सड़क पर टहलते हुए हमारे सामने से होकर एक आदमी गुजरता है, और हम उसे ऐसा जान लेते हैं। किन्तु, जब हम आगे बढ़ जाते हैं तब धीरे धीरे उस आदमी की याद उतरती जाती है, और हम उसे बिलकुल भूल जाते हैं।

तब, कोई दूसरी चीज—एक गाड़ी या कोई घर—हमारे ख्याल के सामने आती है, और हम उसे भी उस रूप में जान लेते हैं। जब हम और भी आगे निकल जाते हैं तो ठीक ऊपर जैसा ही, धीरे-धीरे उसकी भी याद उतरती जाती है और ख्याल के सामने फिर कोई दूसरी चीज़ आती है।

इस प्रकार, हम लोग सदा एक चीज़ जानते और उसे भूल जाते हैं; दूसरी चीज़ जानने और भूलने का सिलसिला जारी रहता है।

यह जानने और भूलने का सिलसिला हमारे जन्म लेते ही शुरू होता है; और तब से बराबर बिना किसी रुकावट के चला आता है।

जब हमारा बाहर की चीज़ों का जानना बन्द हो जाता है—जैसे कि सो जाने पर—उस समय भी वास्तव में यह सिलसिला

वन्द नहीं रहता। उस समय भी पहले के संस्कार से तरह तरह के ख्याल उठते और डूबते रहते हैं, जिन्हें हम जागे की हालत जैसे ही जानते और भूलते रहते हैं।

किन्तु, हम सभी चीजों को एक ही तरह नहीं भूल जाते। जिस चीज़ को हम कुछ ध्यान के साथ अपने ख्याल में लाकर जानते हैं उसे हम बहुत जल्दी नहीं भूल जाते। उसकी याद हमारे मन में काफी देर तक रहती है। इसके विरुद्ध, जिस चीज़ को हम बिना कुछ ध्यान दिये ख्याल में लाकर जानते हैं, उसे आँखों के ओझल होते ही भूल जाते हैं।

एक उदाहरण

सड़क पर जाते हुए एक हाथी को हम अधिक ध्यान के साथ ख्याल में लाकर जानते हैं इसलिये उसकी याद मन में काफी देर तक जीती रहती है। किन्तु रास्ते में जाते एक मामूली आदमी को हम बिना कुछ ध्यान दिये ख्याल में लाकर जान लेते हैं; इसलिये आँखों से ओझल होते ही उस आदमी की याद बिलकुल उतर जाती है।

ख्याल से उतरी हुई बातें बिलकुल गायब नहीं हो जाती

जो भी, हम हर एक चीज़ को जल्द या देर से भूल ही जाते हैं, तो भी वे ख्याल से उतरकर हमारे संस्कार-मन में मौजूद अवश्य रहती हैं। वे बिलकुल खो नहीं जातीं। छोटी से छोटी भी भूली बातें हमारे संस्कार-मन में पड़ी हैं। हम लोगों का संस्कार-मन अपनी भूली हुई बातों का एक बड़ा भारी खजाना है।

पहले गुज़र गई जिस बात को हम याद करना चाहते हैं अपने संस्कार मन के विचित्र खजाने से झट निकाल लेते हैं और अपने ख्याल में ले आते हैं।

इस तरह, हमारे मन की दो अवस्थायें हैं (१) मौजूदा ख्याल की अवस्था जिसमें हम किसी चीज़ को जानते रहते हैं। (२) संस्कार-मन की अवस्था जिसमें बिलकुल आरम्भ से भूली हुई सभी बातें जमा हैं।

मनोविज्ञान में पहली अवस्था को concious या जागता ख्याल कहते हैं और दूसरी को Subconcious या सोता ख्याल = संस्कार-मन कहते हैं। लोग साधारणतः समझते हैं कि जो बात हमारे वर्तमान के ख्याल में है वही जीती जागती है; और जो बात याद से उतर कर सोते ख्याल में डूब गई है वह मरी निकम्मी पड़ी है। ऐसा समझना भारी भूल है। सोते ख्याल में पड़ी हुई छोटी से छोटी बात भी यथार्थ में सदा जीवित रहती है और ख्याल के सामने आने को अत्यन्त सचेष्ट रहती हैं।

जर्मनी का प्रसिद्ध दार्शनिक बर्गसन कहता है "जन्मकाल से हमने जो अनुभव किये हैं, जाना है, या जिसकी इच्छा की है, अभी हमारे वर्तमान जीवन में व्यक्त होने के लिये प्रयत्नशील हैं; और वे यथार्थतः हमारे वर्तमान ख्याल पर अपना अधिकार कर लेते हैं।"

भगवान् बुद्ध ने भी यही बात कही है कि, "हमारा व्यक्तित्व हमारे पूर्व के कर्म, विचार तथा अनुभव के परिणाम स्वरूप ही हैं।"

एक चोर का व्यक्तित्व एक सन्त के व्यक्तित्व से भिन्न इसी लिये है क्योंकि उन्होंने पूर्व में भिन्न भिन्न कर्म तथा विचार किये हैं। पूर्व की गुजरी हुई बातें कुछ खो नहीं जातीं किन्तु वर्तमान में भी अत्यन्त जीवित सबल और सचेष्ट रहती हैं। हमारे पूर्व कर्म और विचार हमारा वैसा ही अनुसरण करते हैं "जैसे चक्के बैल के पैरों का, या छाया अपने पदार्थ का।" हमारा जीवन या व्यक्तित्व ठीक वैसा ही है जैसा हमने अपने मन को स्वयं चित्रित किया है।

हमारे इस मन के परे कोई जीव या आत्मा नहीं है।

भगवान् बुद्ध ने कहा है "सभी धर्म मन ही पर होनेवाले हैं, मन ही उनका मूल आधार है, मन ही के वे रूप हैं"।

कोई मनुष्य शुद्ध या अशुद्ध तभी हो सकता है, जब उसके संस्कार शुद्ध या अशुद्ध कर्म और विचार के हों।

तब, यदि हम अपने को शुद्ध बना अपना जीवन उच्च एवं आदर्श बनाना चाहें तो अपने संस्कार-मन को हमें अधिक से अधिक निर्दोष बनाना होगा। हमारे वर्तमान ख्याल ही हमारे संस्कार-मन का निर्माण करते हैं। भगवान् बुद्ध ने कहा है—

कम्मं विज्जा च धम्मो च, सीलं जीवितमुत्तमं।
एतेन मच्चा सुज्झन्ति, न गोत्तेन धनेन वा॥

अर्थ—कर्म्म, विद्या, धर्म, शील और उत्तम जीवन; इन्हीं से मनुष्य शुद्ध होते हैं—गोत्र या धन से नहीं।

—

दो शब्द

बुद्ध धर्म के सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थों—सूत्रपिटक, विनय पिटक तथा अभिधर्म पिटक से हिन्दी के विज्ञ पाठक सुपरिचित होंगे। इनमें से सूत्र पिटक के मज्झिम निकाय दीघ निकाय तथा विनय पिटक के हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं। अभिधर्म पिटक के अन्तर्गत सात मुख्य ग्रन्थ हैं:—(१) धम्म सङ्गिनी (२) विभङ्ग (३) धातुकथा (४) पुग्गलपञ्ञत्ति (५) कथा-वस्थु (६) यमक तथा (७) पट्ठान। ये सातों बौद्ध धर्म के प्रधान दार्शनिक ग्रन्थ हैं। बुद्धघोष कृत "विसुद्धि मग्गो" तथा मिलिन्द पञ्हो की गणना यद्यपि अभिधर्म के पिटक के अन्तर्गत नहीं है किन्तु अभिधर्म सम्बन्धी बातों के लिए ये ग्रन्थ भी प्रामाणिक हैं। इनमें से 'मिलिन्द पञ्हो' का भी सुन्दर हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है और शीघ्र ही 'विसुद्धि मग्गो' का भी अनुवाद हिन्दी पाठकों के सम्मुख आने वाला है।

प्रस्तुत पुस्तक "अभिधम्मत्थ संग हो" का हिन्दी अनुवाद यहाँ उपस्थित किया जा रहा है। "अभिधम्मत्थ संगह" जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, अभि धर्म पिटक के ऊपर के मुख्य सात ग्रन्थों का संग्रह मात्र है। इसमें नव परिच्छेद हैं जिनके

क्रमशः नाम हैं (१) चित्त (२) चैतसिक (३) पकिएणक (४) वीथि (५) बीथिमुक्त (६) रूप (७) समुच्चय (८) पच्चय (९) कम्मट्ठान। इनमें से आरम्भ के केवल चार परिच्छेदों का सारांश तथा आरम्भ से पाँच परिच्छेदों तक के मूल पालि एवं हिन्दी अनुवाद दिए गए हैं। ग्रन्थ के कलेवर वृद्धि तथा अर्थाभाव के कारण ही ऐसा करना पड़ा है। यदि हिन्दी पाठकों ने ग्राहक बनकर आर्थिक सहायता की, तो इस ग्रन्थ का शेष अंश भी प्रकाशित कर दिया जायगा।

इस ग्रन्थ के अनुवाद में अनेक महानुभावों की शुभकामनाओं ने मुझे उत्साहित किया है जिनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशन आवश्यक है। इसके सर्व प्रथम पात्र हैं, लखनऊ के महास्थविर बोधानन्दजी। वास्तव में इस ग्रन्थ के अनुवाद में मुख्य रूप से आप ही प्रेरक थे। इसके अतिरिक्त मैं त्रिपिटकाचार्य श्री राहुल सांकृत्यायन तथा भदन्त आनन्द कौसल्यायन का भी आभारी हूँ। भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० ने इस ग्रन्थ के प्रूफ संशोधन में विशेष रूप से सहायता की है।

अन्त में, मैं अनुवाद के संबन्ध में भी दो शब्द कह देना चाहता हूँ। हिन्दी मेरी मातृभाषा नहीं है; मैं बर्मा-निवासी हूँ। अतएव इस ग्रन्थ में भाषा तथा व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियों का रह जाना सर्वथा स्वाभाविक है। मैंने, भरसक, मूलभावों को सीधे सादे बोलचाल के शब्दों द्वारा उपस्थित करने का उद्योग किया है। मैं अपने इस प्रयत्न में कहाँ तक सफल हो सका हूँ,

इसका निर्णायक मैं स्वयं नहीं हो सकता। हाँ, अपनी इस असफल कृति तथा त्रुटियों के द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रेमी सज्जनों का ध्यान अवश्य आकर्षित करना चाहता हूँ। यदि मेरी असफलता कतिपय योग्य विद्वानों को इस पालि से अनुवाद कार्य की ओर खींच सकी, तो मैं इसी को अपनी सफलता तथा अहोभाग्य समझूँगा।

२१३, सराय गोवर्धन
चेतगंज, बनारस

भिक्खु वरसम्बोधि

भिक्खु वरसम्बोधि

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

———

चित्त परिच्छेद

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
जिह्वाविञ्ञान॑	जिह्वाविञ्ञान॑	३
सोमनत्स	सोमनस्स	४
सुखेग्गता	सुखेकग्गता	६
ततीयञ्झान	ततीयज्झान	७
पञ्चमञ्झान	पञ्चमज्झान	७
पुञ्ञ	पुञ्ञ	७
पन्ष्टह	पन्द्रह	७
विञ्ञनञ्ञायतक्रिय	विञ्ञनञ्ञायतन-किय	८
कामोरूपे पन्नरसीरयो	कामे रूपेपन्नरसीरये	१०
रूप्पो	रूप्पे	१०
चित्तं ञ्चेति	चित्तञ्चेति	१०
गदहता	गव्हता	११
आठ महाकुशल, आठ महाविपाक औंर—१२ में जोड़ लो		१२
५० शोभन	५९ शोभन	२२
अप्पमञ्ञा	अप्पमञ्ञा	३३
दञ्चद्वार	पञ्चद्वार	४६
चतुपञ्ञस	चतुपञ्ञास	५१
धट्ठा	छट्ठा	५३
विञ्ञाना	विञ्ञाना	५४
अभिञ्ञाना, लब्ध	अभिञ्ञानामलब्ध	५५
कार्य वस्तव्य	कायववस्तव्य	५६

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
ससम्मार	ससम्भार	५६
पञ्चद्वारावनञ्ज	पञ्चद्वारावज्जन	५७
हृदवं	हृदयं	५७
द्वेचत्रालीस	द्वेचत्तालीस	५८
बेयालीस	बयालीस	५८
छद्वारानि छआरम्मणानि जोड़ लो		५९
स्यान	स्थान	६०
मविभूतूञ्चेति	मविभूतञ्चेति	६०
जवनाति	जवति	६१
पातीव	पातोव	६२
सनः	मनः	६२
वोट्ठब्बनुप्पादाव	वोट्ठब्बनुप्पादाच	६३
चतुत्रं	चतुन्नं	६३
चतुद्दस	चतुद्दस	६३
चतुपञ्जास	चतुपञ्ञास	६३
तदारभणुप्पादो	तदारमणुप्पादो	६४
चत्तालस	चत्तालीस	६४
तत्थ हिञान	तत्थ हिं ञान	६४
जवानमहन्नं	जवनान-मठन्नं	६४
गोत्म भू	गोत्रभू	६४
चतुक्खत्तं	चतुक्त्तुं	६४
यथारह	यथारहं	६५
यथाभिनीहाखसने	यथाभिनीहारसेन	६५
सोभनस्स	सोमनस्स	६५
हट्ठिमञ्ज	हेट्ठिमञ्च	६५

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
धम्नेस्वेव	धम्मेस्वेव	६८
याता तोन	या तीन	६९
फलं वा यथारह	फलं वा	७०
द्विक हेतुक	द्विहेतुक	७०
वथिमुत्त	वीथिमुत्त	७४
चपुष्क	चतुष्क	७४
भूच्चिव	भूमिच्चेव	७५
ध्यानलूक	ध्यानलोक	७५
क्रो भो	को भी	७६
नब्बदेहजार	नब्बेहज़ार	७८
नौ सौ करोड़ इक्कीस	नौ सौ इक्कीस	७९
विपाक्चित्त	विपाकचित्त	७९
उपइदकप्पो	उपड्ढकप्पो	८०
महाब्रह्मानो	महाब्रह्मानं	८०
द्वेकत्पानि	द्वेकप्पानि	८०
युभकिण्णानं	सुभकिण्णानं	८०
विसयञ्चेक क जातियं	विसयञ्चेक जातियं	८२
अदिन्नादानं	अदिन्नादानं	८३
कायविञ्ञत्तिसंखातं	कायविञ्ञत्तिसंखाते	८३
वाकँकर्म	वाक्कर्म	८५
जनद्वारोत्पन्न	मनःद्वारोत्पन्न	८५
अत्पनापत्तं	अप्पनापत्तं	८५
अकुशलकर्म	अकुशलकर्म	८५
आक्राश	आकाश	८६
तृहेतुक	तिहेतुक	८६

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
द्रिहेतुक	द्विहेतुक	८७
दसट्ठिच	दसट्ठच	८७
असंसारिक	असंखारिक	८७
मोखापि	मोरवापि	८७
पच्चुपठासि	पच्चुपठाति	९०
पच्चसन्न-मरणास्स	पच्चा-सन्न-मरणास्स	९०
उपजामानमेव भवन्तरे	उपज्जमानमेवपतिट्ठाति भव-न्तरे	९१
कर्तृ निमित्त	कर्म निमित्त	९२
चाफुहासिनी	चारुहासिनी	
सङ्गहो नाम	संगहविभागो नाम	

चित्तपरिच्छेद का सारांस

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
पुब्बन्तापरन्तो	पुब्बन्तापरन्ते	१३
गोत्रमू-तक	गोत्रभू-तक	
दौर्मनस्य न होनेवाला "४"	दौर्मनस्य न होनेवाला "६"	१६
दोनों न होनेवाला "५"	दोनों न वोनेवाला "६"	१६
गब्यं	गब्भं	१९
स्वाभाविक	स्वभाविक	२०
ससम्मार	ससम्भार	२१
ससम्मार	ससम्भार	२२
प्राकृति	आकृति	२२
कुत्सित के शादिओं	कुत्सित केशादिओं	२२
बलतरं	बलवतरं	२३
पहरकालेकूरस्स	पहरकालेकूटस्स	२३
असमाह	असमान	२३
सन्तरण	सन्तीरण	२४
अनन्करणच्चय	अनन्तरपच्चय	२४
इम में	इसमें	२५
तीन चार	तीन वार	२५
मनोद्वार ही तो	मनोद्वार हो, तो	२५
उप्पादितीति	उप्पादेतीति	२५
स्मित "३"	सित "३"	२५
कल्याण प्तयग्जन	कल्याण पृथग्जल	२५

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
सब्बञ्जुतञ्ञानानं	सब्बञ्ञुतञ्ञानानं	२६
पृथुज्जना	पुथुज्जना	२६
वह '४' पञ्चद्वार	वह '५' पञ्चद्वार	२६
सुहु भवनं	सुट्ठु भवनं	२७
आठ का भावचर	आठ कामावचर	३२
पुञ्ज	पुञ्ञ	३२
कमेनपुञ्जवत्थुहि	कमेन पुञ्ञवत्थुहि	३२
कामावचर पुञ्जानि	कामावचर पुञ्ञानि	३२
पुञ्जतादीनि	पुञ्ञतादिनी	३३
उपसभातुस्मृति	उपसमानुस्मृति	३४
काल,, सौ देश,,	काल,, देश,,	३४
होने के काँपता	होने से काँपता	३६
भल	फल	४०
पञ्चङ्मिक	पञ्चङ्गिक	४३
विहेतुक	तिहेतुक	४३
किलसान्तराय	किलेसान्तराय	४३
विहेतुक	तिहेतुक	४३
आणावितक्कमान्तरय	आणावितक्कमन्तराय	४४
अपना और ध्यान	अप्पना और ध्यान	४४
अवश्य अपना है	अवश्य अप्पना है	४४
अपना कहा जाता है	अप्पना कहा जाता है	४४
युतुपपातज्ञान	चुतुपपातज्ञान	४५
नौ क्रमिणों	नौ कसिणों	४९
चार उपाय लोक	चार अपाय लोक	५०
समयानिकार्हन्त	समथयानिकार्हन्त	५८

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
चरमागाँ	चार मार्गों	५९
१ वितक पीति	१ वितक्क विचार पीति	६१
अतुक १९	अहेतुक १८	६४
अहेतुक १९	अहेतुक १८	६४
तिहेतुक २३	तिहेतुक ४७	६४
तु:ख	दु:ख	६५
सुखसहगत ५५	सुखसहगत ६३	६५
लोकंकिय कुशल १७ } २७	लोकियकुशल, १७ } ३७	६६
लोकुत्तर कुशल २० } २७	लोकोत्तरकुशल, २० } ३७	६६
कुशल २७	कुशल ३७	६८

—

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

अभिधम्मत्थसङ्गहो

१–सम्मासम्बुद्धमतुलं । स-सद्धम्म-गणुत्तमं ।
अभिवादिय भासिस्सं । अभिधम्मत्थसङ्गहं ॥

मैं सद्धर्म; तथा श्रेष्ट संघके साथ उन अतुल सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् को प्रणाम कर, अभिधर्मार्थ-संग्रह नामक ग्रन्थको कहूँगा ।

२–तत्थ वुत्ताभिधम्मत्था चतुधा परमत्थतो ।
चित्तं, चेतसिकं, रूपं, निब्बानमिति सब्बथा ॥

इस ग्रन्थ में परमार्थ की दृष्टि से अभिधर्म के चार विषय बताये गये हैं:—(१) (किसी चीजको जानने वाला) चित्त; (२) (चित्त से संयुक्त रहने वाला) चैतसिक; (३) (विकार स्वभाव वाला) रूप और (४) तृष्णा से विमुक्त) निर्वाण ।

३–तत्थ चित्तं ताव चतुब्बिधं होति कामावचरं, रूपावचरं, अरूपावचरं, लोकुत्तर, ञ्चेति ॥

उस चित्तके चार भेद होते हैं:—(१) कामा वचर; (२) रूपावचर; (३) अरूपा वचर; (४) लोकोत्तर ।

४–तत्थ कतमं कामावचरं ? सोमनस्ससहगतं दिट्ठिगत-सम्प युत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकं; सोमनस्ससहगतं दिट्ठिगतविप्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकं; सोमनस्ससहगतं दिट्ठिगत सम्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखा-

रिकमेकं, सोमनस्ससहगतं दिट्ठिगतविप्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखरिक-मेकं; उपेक्खासहगतं दिट्ठिगतसम्पयुत्तं असंखारिकमेकं, ससंखारिक-मेकं; उपेक्खासहगतं दिट्ठिगतविप्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकन्ति, इमानि अट्ठपि लोभसहगतचित्तानि नाम ॥

उनमें कामावचर चित्त कौन हैं ? आठ लोभके साथ होने वाले चित्तः—(१) सौमनस्य वेदना के साथ होनेवाले, मिथ्या दृष्टि से युक्त, असांस्कारिक; (२) सौमनस्य० ससांस्कारिक; (३) सौमनस्य वेदना के साथ होनेवाले, मिथ्या-दृष्टि से मुक्त, असांस्कारिक; (४) सौमनस्य० ससांस्कारिक; (५) उपेक्षा वेदना के साथ होनेवाले, मिथ्या दृष्टि से युक्त असांस्कारिक; (६) उपेक्षा० ससांस्कारिक; (७) उपेक्षा वेदना के साथ होनेवाले, मिथ्या-दृष्टि से मुक्त, असांस्कारिक; (८) उपेक्षा० ससांस्कारिक।

५—दोमनस्ससहगतं पतिघसम्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखा-रिक-मेकन्ति, इमानि द्वेपि पतिघसम्पयुत्तचित्तानि नाम ॥

दो प्रतिघ युक्त चित्तः—(१) दौर्मनस्य वेदना के साथ होनेवाले प्रतिघ-युक्त, असांस्कारिक, (२) दौर्मनस्य० ससांस्कारिक।

६—उपेक्खासहगतं विचिकिच्छासम्पयुत्तमेकं, उपेक्खासहगतं उद्धच्चसम्पयुत्त-मेकन्ति,इमानि द्वेपि मोमूहचित्तानि नाम ॥

दो मोह-युक्त चित्तः—(१) उपेक्षा वेदना के साथ होनेवाले, सन्देह युक्त; (२) उपेक्षा वेदना के साथ होनेवाले, उद्धतपना से युक्त।

७—इच्चेवं सब्बथापि द्वादसा.कुसल-चित्तानि समत्तानि।

इस प्रकार सभी १२ अकुशल चित्त हुए।

८—अट्ठधा लोभमूलानि। दोसमूलानि च द्विधा।

मोहमूलानि च द्वेति। द्वादसा.कुसला सियुं॥

आठ प्रकार के लोभ-मूलक, दो प्रकार के द्वेष-मूलक, और दो प्रकार के मोह-मूलक; यह बारह अकुशल चित्त हुए।

९—उपेक्खा-सहगतं चक्खुविञ्ञानं, तथा सोतविञ्ञानं, घानविञ्ञानं, जिह्वाविञ्ञानं, दुक्खसहगतं कायविञ्ञानं, उपेक्खासहगतं सम्पतिच्छनचित्तं, उपेक्खासहगतं सन्तीरणचित्त ञ्चेति, इमानि सत्तपि अकुसलविपाकचित्तानि नाम ॥

(१) उपेक्षा वेदना के साथ होनेवाले चक्षु-विज्ञान, तथा (२) श्रोत्-विज्ञान, (३) घ्राण-विज्ञान, (४) जिह्वा-विज्ञान, (५) दुःख वेदना के साथ होनेवाले, काय-विज्ञान, (६) उपेक्षा वेदना के साथ होनेवाले, विषयों की ओर फिर कर उन्हें ग्रहण करनेवाले "सम्प्रत्तिच्छन्न" चित्त, और (७) उपेक्षा वेदना के साथ होने वाले, विषयों को ग्रहण कर उनपर परामर्श करनेवाले "संतीर्ण" चित्त—यह सात अकुशल-विचारक चित्त कहे जाते हैं।

१०—उपेक्खासहगतं कुसलविपाकं चक्खुविञ्ञानं, तथा सोत-विञ्ञानं, घानविञ्ञानं, जिह्वाविञ्ञानं, सुखसहगतं कायविञ्ञानं, उपेक्खा-सहगतं सम्पतिच्छनचित्तं, सोमनस्स-सहगतं सन्तीरणचित्तं, उपेक्खा-सहगतं सन्तीरणचित्त ञ्चेति, इमानि अट्ठपि कुसलविपाका-हेतुकचित्तानि नाम ॥

(१) उपेक्षा वेदना के साथ होनेवाले, कुशल फल वाले चक्षुविज्ञान, तथा (२) श्रोत्त-विज्ञान, (३) घ्राण-विज्ञान, (४) जिह्वा-विज्ञान, (५) सुखके साथ होनेवाले काय-विज्ञान, (६) उपेक्षा के साथ होनेवाले 'सम्प्रतिच्छन्न', (७) सौमनस्य के साथ होनेवाले "सन्तीर्ण-चित्त", और (८) उपेक्षा के साथ होनेवाले "सन्तीर्ण-चित्त"—यह आठ कुशल-फल वाले अहेतुक चित्त हैं।

११–उपेक्खासहगतं पञ्चद्वारावज्जनचित्तं, तथा मनोद्वारावज्जन चित्तं, सोमनस्ससहगतं हसितुप्पादचित्तञ्चेति, इमानि तानिपि अहेतुकक्रियचित्तानि नाम ॥

उपेक्षा वेदना के साथ होनेवाले, पांच इन्द्रियों के विषय वाले "पञ्चद्वारावर्जन चित्त", तथा (२) "मनोद्वारावर्जन चित्त, और (३) सौमनस्य वेदना के साथ होनेवाले, खुशी करनेवाले चित्त—यह तीन अहेतुक-क्रिय-चित्त कहे जाते हैं।

१२–इच्चेवं सब्बथापि अट्ठारसा-हेतुकचित्तानि समत्तानि ॥

इस तरह, यह १८ अहेतुक-चित्त हुए।

१३–सत्ता-कुसलपाकानि। पुञ्ञपाकानि अट्ठधा।
क्रियचित्तानि तीनिति। अट्ठारस अहेतुका ॥

अकुश विपाक चित्त सात हैं। कुशल विपाक चित्त आठ हैं। क्रिय-चित्त तीन हैं। इस तरह अहेतुक चित्त अठारह ही हैं।

१४–पापा-हेतुक-मुत्तानि। सोभनानीति वुच्चरे।
एकून-सट्ठि चित्तानि। अथे-क-नवुतिपि वा ॥

अकुशल-अहेतुक चित्तों के अलावा संक्षेप से ५९, विस्तार से ९१ चित्त "शोभन" कहे जाते हैं। बारह अकुशल चित्त, अठारह अहेतुक चित्त-यह तीस 'अशोभन चित्त' कहे जाते हैं।

अहेतुक चित्त समाप्त।

१५–सोमनस्स-सहगतं ञान-सम्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकं, सोमनस्स-सहगतं ञान-विप्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकं, उपेक्खा-सहगतं ञान-सम्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकं, उपेक्खा-सहगतं ञान-

विप्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकन्ति, इमानि अट्ठपि कामावचरकुसलचित्तानि नाम ॥

(१) सौमनस्य वेदना के साथ होनेवाले, ज्ञान से युक्त, असांस्कारिक; (२) ससांस्कारिक; (३) सौमनस्य वेदना के साथ होनेवाले, ज्ञानके विना, असांस्कारिक; (४) ससांस्कारिक; (५) उपेक्षा वेदना के साथ होनेवाले, ज्ञान से युक्त, असांस्कारिक; (६) ससांस्कारिक; (७) उपेक्षा वेदना के साथ होनेवाले, ज्ञान के विना, असांस्कारिक और (८) ससांस्कारिक—यह आठ कामावचर कुशल चित्त हैं।

१६—सोमनस्स-सहगतं ञान-सम्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकं, सोमनस्स-सहगतं ञान-विप्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकं, उपेक्खा-सहगतं ञानसम्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकं, उपेक्खा-सहगतं ञानविप्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकन्ति, इमानि अट्ठपि सहेतुक कामावचरविपाकचित्तानि नाम ॥

सौमनस्य०—यह आठ भी 'सहेतुक कामावचर विपाक चित्त' हैं।

१७—सोमनस्स-सहगतं ञानसम्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकं, सोमनस्स-सहगतं ञान-विप्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकं, उपेक्खा-सहगतं ञान-सम्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेकं, उपेक्खा-सहगतं ञान-विप्पयुत्तं असंखारिक-मेकं, ससंखारिक-मेक,न्ति इमानि अट्ठपि सहेतुककामावचरक्रियचित्तानि नाम ॥

सौमनस्य०—यह आठ भी 'सहेतुक कामावचर क्रिय चित्त' हैं।

१८—इच्चेवं सब्बथापि चतु-वीसति सहेतुक-कामावचरकुसल-विपाक-क्रियचित्तानि समत्तानि ।।

इस तरह, चौबीस, सहेतुक कामावचर कुशल और सहेतुक कामावचर विपाक, तथा सहेतुक कामावचर क्रिय चित्त समाप्त हुए।

१९—वेदना-ञान-सङ्खार-भेदेन चतु-वीसति ।
सहेतुकामावचर पुञ्ञ-पाक-क्रिया मता ।।

सहेतुक-कामावचर, कुशल-विपाक क्रिय-चित्त वेदना, ज्ञान तथा संस्कार के भेद से २४ प्रकार के होते हैं।

२०—कामे ते-वीसपाकानि । पुञ्ञा-पुञ्ञानि वीसति ।
एकादस क्रिया चेति । चतु-प्पञ्ञास सब्बथा ।।

काम-लोक में होनेवाले विपाक-चित्त २३ हैं; कुशल और अकुशल २० हैं; क्रिय-चित्त ११ हैं; सभी मिला कर ५४ हुए।

२१—वितक्कविचारपीतिसुखे-कग्गतासहितं पथमज्झान-कुसल चित्तं, विचारपीति-सुखे-कग्गतासहितं दुतीयज्झान-कुसल चित्तं, पीतिसुखे-कग्गता-सहितं ततीयज्झान-कुसलचित्तं, सुखे-ग्गता-सहितं चतुत्थज्झान-कुसलचित्तं, उपेक्खे-कग्गता-सहितं-पञ्चमज्झान-कुसलचित्त ञ्चेति, इमानि पञ्चपि रूपावचरकुसलचित्तानि नाम ।।

(१) वितर्क, विचार, प्रीति, सुख, एकाग्रता वाले प्रथम ध्यान का कुशल चित्त; (२) विचार, प्रीति, सुख, एकाग्रता वाले द्वितीय ध्यान का कुशल चित्त; (३) प्रीति सुख, एकाग्रता वाले तृतीय ध्यान का कुशल चित्त; (४) सुख, एकाग्रता वाले चतुर्थ ध्यान का कुशल चित्त; (५) उपेक्षा, एकाग्रता वाले पञ्चम ध्यान का कुशल चित्त;—यह पांच 'रूपावचर कुशल चित्त' कहे जाते हैं।

२२—वितक्कविचारपीतिसुखे-कग्गता-सहितं पथमज्झान-विपाक चित्तं, विचारपीति-सुखे-कग्गता-सहितं दुतीयज्झान-विपाकचित्तं, पीतिसुखे-कग्गता-सहितं ततीयज्झान-विपाक चित्तं, सुखे-कग्गता-सहितं चतुत्थज्झान-विपाकचित्तं, उपेक्खे-कग्गता-सहितं पञ्चमज्झान-विपाकचित्त ञ्चेति, इमानि पञ्चपि रूपावचरविपाकचित्तानि नाम ॥

०—प्रथम-ध्यान-विपाक चित्त;०:—यह पांच 'रूपावचर विपाक चित्त' कहे जाते हैं।

२३—वितक्कविचारपीतिसुखे-कग्गता-सहितं पथमज्झान-क्रिय चित्तं, विचारपीति-सुखे-कग्गता-सहितं दुतीयज्झान-क्रिय चित्तं, पीतिसुखे-कग्गता-सहितं ततीयज्झान-क्रियचित्तं, सुखे-कग्गता सहितं चतुत्थज्झान-क्रियचित्तं, उपेक्खे-कग्गता सहितं पञ्चमज्झान-क्रियचित्त ञ्चेति, इमानि पञ्चपि रूपावचरक्रियचित्तानि नाम ॥

०—यह पांच 'रूपावचर क्रिय चित्त' कहे जाते हैं।

२४—इच्चेवं सब्बथापि पन्नरस रूपावचर-कुशल, विपाक, क्रिय-चित्तानि समत्तानि।

इस तरह, कुशल, विपाक और क्रिय के भेद से १५ रूपावचर-चित्त हुए।

२५—पञ्चधा झान-भेदेन। रूपावचर-मानसं। पुञ्ञ-पाक-क्रिया भेदा। तं पञ्चदसधा भवे ॥

रूपावचर चित्त ध्यान के अङ्गों के भेद से पांच प्रकार के हैं। यह कुशल, विपाक और क्रिय के भेद से पन्द्रह होते हैं।

रूप चित्त समास रूपावचर शोभन चित्त समास

२६—आकासानञ्चायतन-कुसलचित्तं, विञ्ञानञ्चायतन-कुसल चित्तं,आकिञ्चञ्ञायतन-कुसलचित्तं, नेवसञ्ञानासञ्ञाय तन कुसलचित्त ञ्चेति, इमानि चत्तारिपि अरूपावचरकुसल चित्तानि नाम ॥

(१) आकाशानन्त्यायतन कुशल चित्त (२) विज्ञानान्त्यायतन कुशल चित्त, (३) आकिञ्चन्यायतन-कुशल चित्त, और (४) नैव संज्ञा नासंज्ञायतन-कुशल चित्त—यह चार "अरूपावचर कुशल-चित्त" कहे जाते हैं।

२७—आकासानञ्चायतन-विपाकचित्तं,विञ्ञानञ्चायतन-विपाक-चित्तं,आकिञ्चञ्ञायतन-विपाकचित्तं, नेवसञ्ञानासञ्ञा-यतन-विपाकचित्त ञ्चेति, इमानि चत्तारिपि अरूपावचर विपाकचित्तानि नाम ॥

०—यह चार "अरूपावचर विपाक-चित्त" कहे जाते हैं।

२८—आकासानञ्चायतन-क्रियचित्तं, विञ्ञानञ्चायत-क्रियचित्तं, आकिञ्चञ्ञायतन-क्रियचित्तं, नेवसञ्ञाना सञ्ञायतन-क्रियचित्त ञ्चेति, इमानि चत्तारिपि अरूपा वचरक्रिय चित्तानि नाम ॥

०—यह चार "अरूपावचर क्रिय-चित्त" कहे जाते हैं।

२९—इच्चेवं सब्बथापि द्वादस अरूपावचरकुसल, विपाक, क्रिय चित्तानि समत्तानि ॥

इस प्रकार, कुशल, विपाक और क्रियके भेद से १२ अरूपावचर चित्त समाप्त हुए।

३०—आलम्बन-प्पभेदेन। चतुधा-रुप्प-मानसं। पुञ्ञ,पाक, क्रिया, भेदा। पुन द्वादसधा ठित ॥

अरूप चित्त आकाशादि गोचरों से चार हैं; फिर, कुशल, विपाक और क्रियके भेद से बारह हैं।

अरूप चित्त समास, लोकीय शोमन चित्त समास

३१—सोतापत्तिमग्ग-चित्तं,सकदागामिमग्ग-चित्तं,अनागामिमग्ग-चित्तं, अरहत्तमग्ग-चित्त, ञ्चेति इमानि चत्तारिपिलोकुत्तर कुसल चित्तानि नाम ॥

(१) श्रोत-आपत्ति मार्ग-चित्त, (२) सकृदागामि-मार्ग-चित्त, (३) अनागामि-मार्ग-चित्त और (४) अर्हत्-मार्ग-चित्त—यह चार "लोकोत्तर कुशल चित्त" कहे जाते हैं।

३२—सोतापत्तिफल-चित्तं,सकदागामिफल-चित्तं, अनागामिफल-चित्तं, अरहत्तफल-चित्त-ञ्चेति, इमानि चत्तारिपि लोकुत्तर विपाकचित्तानि नाम ॥

(१) श्रोत-आपत्ति-फल चित्त, (२) सकृदागामि-फल-चित्त,(३) अनागामि-फल-चित्त, और (४) अर्हत्-फल-चित्त—यह चार "लोकोत्तर विपाक चित्त" कहे जाते हैं।

३३—इच्चेवं सब्बथापि अट्ठ लोकुत्तर कुसल, विपाक, चित्तानि समत्तानि ॥

इस प्रकार, लोकोत्तर चित्त, कुशल और विपाक के भेदसे ८ प्रकार के हुए।

३४—चतुमग्ग-प्पभेदेन । चतुधा कुसलं तथा । पाकं तस्स फल-त्ताति । अट्ठधा-नुत्तरं मतं ॥

लोकोत्तर कुशल चित्त, चार मार्गों के भेद से चार हैं। इसी तरह, लोकोत्तर विपाक चित्त भी उन मार्गों के फल होने से चार ही हैं। अतः लोकोत्तर चित्त कुल आठ हुए।

संक्षेप लोकोत्तर चित्त समाप्त

३५—द्वादसाकुसलानेवं । कुसलानेकवीसति । छत्तिंसेव विपाकानि । क्रियचित्तानि वीसति ॥

इस प्रकार, अकुशल चित्त बारह हैं; कुशल चित्त इक्कीस हैं; विपाक चित्त छत्तीस हैं; क्रिय-चित्त बीस हैं ।

३६—चतु-प्पञ्ञासधा कामो रूपे पन्नरसी.रयोचित्तानि द्वादसा.रूप्पो अट्ठधा.नुत्तरे तथा ।

काम-लोक में चौवन, रूप-लोक में पन्द्रह, अरूप-लोक में बारह, और लोकोत्तर आठ चित्त हुए ।

३७—इत्थ.मेकून-नवुति-प्पभेदं पन मानसं । एक-वीस-सतं वा.थ विभजन्ति विचक्खणा ।

इस प्रकार, पण्डित लोग संक्षेप से नवासी प्रकार के चित्तको एक सौ इक्कीस विभाग में रखते हैं ।

३८—कथ.मेकून-नवुति-विधं चित्तं एक-वीस-सतं होति ? वितक्कविचारपीतिसुखेकग्गता-सहितं पथमज्झान-सोतापत्तिमग्गचित्तं, विचारपीतिसुखेकग्गता-सहितं दुतीय-ज्झान-सोतापत्तिमग्गचित्तं, पीतिसुखेकग्गता-सहितं ततीयज्झान-सोतापत्तिमग्ग-चित्तं, सुखेकग्गता-सहितं चतुत्थज्झान-सोतापत्तिमग्गचित्तं, उपेक्खे.कग्गता-सहितं पञ्चमज्झान-सोतापत्तिमग्ग-चित्तं च्वेति, इमानि पञ्चपि सोतापत्तिमग्ग-चित्तानि नाम ॥

कैसे नवासी चित्त एकसौ इक्कीस होता है ? (१) वितर्क, विचार, प्रीति, सुख, एकाग्रता के साथ होने वाले प्रथम ध्यान, श्रोत-आपत्ति मार्ग-चित्त; विचार, प्रीति, सुख, एकाग्रता वाले द्वितीय ध्यान श्रोत-आपत्ति मार्ग चित्त; (२) प्रीति, सुख, एकाग्रता के साथ होने वाले

तृतीय ध्यान श्रोत-आपत्ति मार्ग चित्त; (४) सुख, एकाग्रताके साथ होने वाले चतुर्थ ध्यान श्रोत-आपत्ति मार्ग चित्त; (५) उपेक्षा, एकाग्रताके साथ होने वाले पञ्चम ध्यान श्रोत-आपत्ति मार्ग चित्तः—यह पांच श्रोत-आपत्ति मार्ग चित्त हैं।

३९—तथा सकदागामिमग्ग,अनागामिमग्ग,अरहत्तमग्गचित्तञ्चेति
समवीसति मग्गचित्तानि ॥

वैसे ही, सकृदागामि मार्ग, आनागामि-मार्ग अर्हत्-मार्ग में भी पांच २ हुए। सब मिला कर बीस मार्ग-चित्त हुए।

४०—तथा फलचित्तानि चेति सम-चत्तालीस लोकुत्तरचित्तानि
भवन्तीति ॥

फल-चित्त भी मार्ग चित्त की भांति बीस होते हैं। इस तरह लोकोत्तर चित्त चालीस हुए।

४१—झानङ्ग-योग-भेदेन कत्वे-केकं तु पञ्चधा।वुच्चतानुत्तरं चित्तं।
चत्तालीस-विधन्ति च ॥

ध्यानाङ्ग के भेद से एक २ पांच प्रकार के हुए। इस लिए, सभी मिलाकर लोकोत्तर चालीस चित्त हुए।

४२—यथा च रूपावचरं।गदहता-नुत्तरं तथा।पथमा-दि-झान
भेदे आरूपञ्चापि पञ्चमे ॥

एकादसविधं तस्मा, पथमादिकमीरितं।

झानमेकेकमन्ते तु। तेवीसतिविधं भवे।

जैसे रूपावचर चित्त, वैसेही लोकोत्तर चित्तको प्रथमादि ध्यानाङ्ग भेद से लिया गया है। इसी तरह, अरूप चित्तको भी पञ्चम ध्यान तक लीजिए। अतएव, प्रथम ध्यानादि चित्त ग्यारह २ होते हैं। अन्तिम पञ्चम ध्यान चित्त तेईस होते हैं।

४३—सत्तत्तिंस-विधं पुञ्ञं। द्विपञ्ञास-विधं तथा। पाक.मिच्चाहु चित्तानि। एक-वीस-सतं बुधा ।।

इति अभिधम्मत्थसङ्गहे चित्तसङ्गहविभागो नाम पथमो परिच्छेदो ।

पण्डित लोगों ने पुण्य-चित्त (= कुशल चित्त) को सैतीस, और विपाक चित्त को बावन बतलाया हैं। इस लिए, एक सौ इक्कीस हुए ।

अभिधर्मार्थ संग्रह ग्रन्थ में

चित्त-संग्रह प्रथम-भाग समाप्त

चित्त परिच्छेद की सरल व्याख्या

अभिधर्मार्थ = परमार्थ सत्य चार ही हैं; (१) चित्त, (२) चैतसिक, (३) रूप, और (४) निर्वाण।

चित्त चार प्रकार के होते हैं:—(१) कामावचर, (२) रूपावचर, (३) अरूपावचर, और (४) लोकोत्तर।

१. कामावचर चित्त ५४ प्रकार के होते हैं। बारह अकुशल चित्तः— आठ लोभ-मूलक, दो द्वेष-मूलक, और दो मोह-मूलक। अठारह अहेतुक चित्तः—सात अकुशल-विपाक, आठ कुशल-विपाक, तीन अहेतुक क्रिय-चित्त। चौबीस सहेतुक चित्तः—आठ कामावचर महाक्रिय।

इनमें बारह अकुशल, आठ कुशल, तेइस विपाक और ग्यारह क्रियचित्त हुए।

इनका सार निम्न लिखित गाथा में दिया गया है:—

"कामे तेवीस पाकानि,
पुञ्ञापुञ्ञानि वीसति।
एकादस क्रिया चेति,
चतुपञ्ञास सब्बथा॥"

रूपावचर पन्द्रह प्रकार के होते हैं।

अरूपावचर बारह प्रकार के होते हैं। रूपावचर और अरूपावचर दोनों को महग्गत चित्त कहते हैं।

लोकोत्तर चित्त आठ प्रकार के होते हैं।

सभी मिला कर (५४ कामावचर + २७ महग्गत + ८ लोकोत्तर) ८९ चित्त हुए।

इन ८९ चित्तों में जो बारहर अकुशल और अठारह अहेतुक चित्त हैं उन तीस चित्तों को "अशोभन" के नाम से पुकारते हैं। बाकी जो उनसठ चित्त हैं। जिनको आगे चलकर विस्तार से नब्बे प्रकार का बताया जायगा। उन्हें 'शोभन' के नाम से पुकारते हैं।

तीस अशोभन चित्त निम्न कोष्ठक से स्पष्ट होंगे।

१.	सौमनस्य के साथ	मिथ्या दृष्टि वाला	असांस्कारिक	एक चित्र	प्रथम असांस्कारिक
२.	,,	,,	ससांस्कारिक	,,	प्रथम ससांस्कारिक
३.	,,	मिथ्या दृष्टि के बिना	असांस्कारिक	,,	द्वितीय असांस्कारिक
४.	,,	,,	ससांस्कारिक	,,	द्वितीय ससांस्कारिक
५.	उपेक्षा के साथ	मिथ्या दृष्टि वाला	असांस्कारिक	,,	तृतीय असांस्कारिक
६.	,,	,,	ससांस्कारिक	,,	तृतीय ससांस्कारिक
७.	,,	मिथ्या दृष्टि के बिना	असांस्कारिक	,,	चतुर्थ असांस्कारिक
८.	,,	,,	ससांस्कारिक	,,	चतुर्थ ससांस्कारिक
९.	,,	प्रतिघ-युक्त	असांस्कारिक	,,	पञ्चम असांस्कारिक
१०.	दौर्मनस्य के साथ	,,	ससांस्कारिक	,,	पञ्चम ससांस्कारिक
११.	,,	विचिकित्सा से युक्त	असांस्कारिक	,,	,,
१२.	उपेक्षा के साथ	उद्धतपना से युक्त	ससांस्कारिक	,,	,,

ऊपर बताए गए बारह चित्तों में सौमनस्य, दौर्मनस्य, उपेक्षा, सांस्कारिक, असांस्कारिक इत्यादि को अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्न प्रश्नोत्तर दिया जाता है:—

प्र०—बारह अकुशल चित्तों में सौमनस्य के साथ कितने हैं ?

उ०—चार ।

प्र०—उपेक्षा के साथ कितने हैं ?

उ०—छः ।

प्र०—मिथ्या दृष्टि के साथ वाले चित्त कितने हैं ?

उ०—आठ ।

प्र०—मिथ्या दृष्टि के बिना चित्त कितने हैं ?

उ०—चार ।

प्र०—असांस्कारिक चित्त कितने हैं ?

उ०—पांच ।

प्र०—ससांस्कारिक चित्त कितने हैं ?

उ०—पांच ।

अठारह अहेतुक चित्त निम्न कोष्टकों से स्पष्ट होंगे।

(क) सात अकुशल विपाक चित्त। (ख) आठ कुशल विपाक अहेतुक चित्त।

	(क)			(ख)		
१.	उपेक्षा के साथ	चक्षु-विज्ञान	१.	उपेक्षा के साथ कुशल-विपाक	चक्षु-विज्ञान	द्विक
२.	,,	श्रोत-विज्ञान	२.	,,	श्रोत-विज्ञान	,,
३.	,,	घ्राण-विज्ञान	३.	,,	घ्राण-विज्ञान	,,
४.	,,	जिह्वा-विज्ञान	४.	,,	जिह्वा-विज्ञान	,,
५.	दुःख के साथ	काय-विज्ञान	५.	सुख के साथ ,,	काय-विज्ञान	,,
६.	उपेक्षा ,,	सम्प्रतिच्छन्न	६.	उपेक्षा के साथ ,,	सम्प्रतिच्छन	,,
७.	उपेक्षा ,,	संतीर्ण	७.	सौमनस्य के साथ	संतीर्ण	त्रिक
			८.	उपेक्षा के साथ	,,	

(ग) तीन अहेतुक क्रिय चित्त

१.	उपेक्षा के साथ	पञ्चद्वारावर्जन चित्त
२.	,,	मनोद्वारावर्जन चित्त
३.	सौमनस्य के साथ	हास्य उत्पन्न करने वाला चित्त

अहेतुक चित्त समाप्त

अशोभन चित्त समाप्त

शोभन चित्त

आठ कामावचर कुशल चित्त निम्न कोष्टक से स्पष्ट होंगे।

१.	सौमनस्य के साथ	ज्ञानसम्प्रयुक्त	असांस्कारिक	एक चित्त	पहले दो द्विक
२.	,,	,,	ससांस्कारिक	,,	
३.	,,	ज्ञानविप्रयुक्त	असांस्कारिक	,,	दूसरे दो द्विक
४.	,,	,,	ससांस्कारिक	,,	
५.	उपेक्षा के साथ	ज्ञानसम्प्रयुक्त	असांस्कारिक	,,	तीसरे दो द्विक
६.	,,	,,	ससांस्कारिक	,,	
७.	,,	ज्ञानविप्रयुक्त	असांस्कारिक	,,	चौथे दो द्विक
८.	,,	,,	ससांस्कारिक	,,	

सहेतुक कामावचर विपाक और सहेतुक कामावचर क्रिय चित्त भी कुशल चित्त के समान ही 'पहले दो द्विक' इत्यादिक होते हैं। फिर, अकुशल चित्त में जैसे सौमनस्य, उपेक्षा आदि को पृथक् २ दिखाया गया है, वैसे ही इसमें भी सौमनस्य बारह, और उपेक्षा बारह, कुल चौबीस चित्त हैं। ४ कुशल + ४ विपाक + ४ क्रिय = १२ सौमस्य चित्त वैसेही ४ कुशल + ४ विपाक ४ क्रिय = १२ उपेक्षा चित्त। इन तीन चित्तों को महाकुशल, महाविपाक, तथा महाक्रिय नाम से भी पुकारते हैं।

कामावचर चित्त समाप्त

रूपावचर चित्त

पांच रूपावचर कुशल चित्त

१ वितर्क	विचार	प्रीति	सुख	एकाग्रता	सहित प्रथम ध्यान कुशल चित्त
२	विचार	प्रीति	सुख	एकाग्रता	सहित द्वितीय ध्यान कुशल चित्त
३		प्रीति	सुख	एकाग्रता	सहित तृतीय ध्यान कुशल चित्त
४			सुख	एकाग्रता	सहित चतुर्थ ध्यान कुशल चित्त
५			उपेक्षा	एकाग्रता	सहित पञ्चम ध्यान कुशल चित्त

पाँच रूपावचर विपाक चित्तः—

१	वितर्क	विचार	प्रीति	सुख	एकाग्रता	सहित पाँच ध्यानाङ्गवाला प्रथम विपाक चित्त
२		विचार	प्रीति	सुख	एकाग्रता	सहित चार ध्यानाङ्गवाला द्वितीय विपाक चित्त
३			प्रीति	सुख	एकाग्रता	सहित तीन ध्यानाङ्गवाला तृतीय विपाक चित्त
४				सुख	एकाग्रता	सहित दो ध्यानाङ्गवाला चतुर्थ विपाक चित्त
५				उपेक्षा	एकाग्रता	सहित दो ध्यानाङ्गवाला पञ्चम विपाक चित्त

पाँच रूपावचर क्रिय चित्तः—

१ वितर्क	विचार	प्रीति	सुख	एकाग्रता	सहित प्रथम ध्यान क्रिय चित्त
२	विचार	प्रीति	सुख	एकाग्रता	सहित द्वितीय ध्यान क्रिय चित्त
३		प्रीति	सुख	एकाग्रता	सहित तृतीय ध्यान क्रिय चित्त
४			सुख	एकाग्रता	सहित चतुर्थ ध्यान क्रिय चित्त
५			उपेक्षा	एकाग्रता	सहित पञ्चम ध्यान क्रिय चित्त

रूपावचर चित्त ध्यानाङ्ग के भेद से पाँच हैं; जो कुशल विपाक और क्रिय के भेद से पन्द्रह हो जाते हैं। इसी प्रकार लोकोत्तर चित्त ध्यानाङ्गों के भेद से बीस मार्ग–चित्त और बीस फल–चित्त, कुल चालीस चित्त विस्तार से हुए। रूपावचर चित्त समाप्त

—०—

अरूपावचर चित्त

चार अरूपावचर कुशल चित्तः—

१.	आकाशानन्त्यायतन कुशल चित्त
२.	विज्ञानानन्त्यायतन कुशल चित्त
३.	आकिंचन्यायतन कुशल चित्त
४.	नैवसंज्ञानासंज्ञायतन कुशलचित्त

अरूपावचर विपाक और क्रिय चित्त भी इसी तरह होते हैं।

—०—

लोकोत्तर चित्त

संक्षेप

(क) लेकोत्तर कुशल चित्त चार हैं :—

१. श्रोत—आपत्ति—मार्ग चित्त

२. सकृदागामि—मार्ग चित्त

३. अनागामि—मार्ग चित्त

४. अर्हत्—मार्ग चित्त

(ख) लोकोत्तर विपाक चित्त चार हैं :—

१. श्रोत—आपत्ति—फल चित्त

२. सकृदागामि—फल चित्त

३. अनागामि—फल चित्त

४. अर्हत्—फल चित्त

ऊपर में संक्षेप से नवासी चित्त बताए गए
:—१२ अकुशल + १८ अहेतुक = ३० अशोभन चित्त
२४ कामावचर + १५ रूपावचर +
१२ अरूपावचर + ८ लोकोत्तर = ५९ शोभन चित्त

विस्तार से विभाग करने पर यही 'एकसौ इक्कीस' चित्त होते हैं:—

पाँच श्रोत आपत्ति—मार्ग युक्त =—चित्त

१. ० प्रथम ध्यान श्रोत—आपत्ति मार्ग चित्त
२. ० द्वितीय ध्यान ,,
३. ० तृतीय ध्यान ,,
४. ० चतुर्थ ध्यान ,,
५. ० पञ्चम ध्यान ,,

इसी प्रकार, पाँच ध्यानों के साथ सकृदागामि अनागामी और अर्हत् मार्ग के पाँच पाँच चित्त हुए। कुल मिला कर २० चित्त हुए।

इसी प्रकार, श्रोत-अपत्ति, सकृदागामी, अनागामी, और अर्हत् फल के भी पाँच पाँच चित्त हो कर २० चित्त होंगे।

२० मार्ग चित्त और २० फल चित्त मिला कर ४० चित्त हुए।

तीस अशोभन चित्त, एकावन शोभन चित्त, इन एकासी चित्तों में यह चालीस मिला देने से १२१ चित्त हुए।

—०—

चित्त काण्ड समाप्त

चेतसिक कण्डो

४४—एकु-प्पाद-निरोधा च। एका-लम्बनवत्थुका। चेतो-युत्ता द्वि-पञ्ञासा धम्मा चेतसिका मता।

एक साथ उत्पन्न और निरुद्ध होने वाले, एक ही विषय (आलम्बन) और इन्द्रिय (वस्तु) वाले ५२ चित्त के धर्म को "चैतसिक" कहते हैं।

४५—कथं ? फस्सो, वेदना, सञ्ञा, चेतना, एकग्गता, जीवितिन्द्रियं, मनसिकारो, चेति सत्ति.मे चेतसिका सब्बचित्त साधारणा नाम।

+कैसे ? (१) स्पर्श, (२) वेदना, (३) संज्ञा, (४) चेतना, (५) एकाग्रता, (६) जीवितेन्द्रिय, (७) मनसिकार—यह सात चैतसिक सभी चित्त में साधारण रूप से रहते हैं।

४६—वितक्को,विचारो, अधिमोक्खो, वीरियं, पीति, छन्दो, चेति छयिमे चेतसिका पकिण्णका नाम।

×(१) वितर्क, (२) विचार, (३) अधिमोक्ष, (४) वीर्य, (५) प्रीति (६) छन्द—यह छः प्रकीर्ण (जब कभी होने वाले) चैतसिक हैं।

+ विषयों के स्पर्श करने वाले चैतसिक को स्पर्श; विषयों के स्वाद भोगने वाले को वेदना; विषयों के स्वभाव को ग्रहण करने वाले को संज्ञा; प्राप्तधर्मों को विषयों में प्रेरणा करने वाले को चेतना; विषय में स्थिर करने वाले को एकाग्रता; प्राप्तधर्मों के प्राण होकर उनकी रक्षा करने वाले को मनस्कार कहते हैं।

× विषय में चिन्तन करने वाले को वितर्क; विषयों पर बार २ सोचने वाले को विचार; विषयों में प्रवेश कर निश्चय करने वाले को अधिमोक्ष; उत्पन्न धर्मों में उत्साह करने वाले को वीर्य; विषयों में आनन्द करने वाले को प्रीति ; विषयों को करना चाहने वाले को छन्द कहते हैं।

४७—एव-मेते तेरस चेतसिका अञ्ञसमानाति वेदितब्बा।

*इस तरह यह तेरह चैतसिक अन्य—समान कहे जाते हैं।

४८—मोहो, अहिरीकं, अनोत्तप्पं, उद्धचं, लोभो, दिट्ठि, मानो, दोसो, इस्सा, मच्छरियं, कुकुचं, थिनं, मिद्धं, विचिकिच्छा, चेति चुद्दसि-मे चेतसिका अकुसला नाम।

इन्द्रियों के गोचर करने वाले को मोह चैतसिक; दुश्चरित्रों से लज्जा न करने वाले को अह्री; कुकर्मों से त्रास न करने वाले को अनत्रपा; जहाँ तहाँ विषय में स्थिर न करने वाले को औद्धत्य; इच्छा करने वाले को लोभ; विपरीत देखने वाले को दृष्टि; अहंकार करने वाले को मान; दूषण करने वाले को द्वेष; दूसरे को देखकर जलने को ईर्षा; स्वविभव में कृपणता करने वाले को मात्सर्य; पश्चात्ताप करने वाले को कौकृत्य; मन को भारी करने वाले को स्त्यान; चैतसिकों को भारी करने वाले को मृद्ध; तथा विषयों को निर्णय न करने वाले को विचिकित्सा; कहते हैं। इस तरह, यह चौदह चैतसिक अकुशल चित्तों के संयोग से होते हैं।

४९—सद्धा, सति, हिरी, ओत्तप्पं, अलोभो, अदोसो, तत्र मज्झत्तता, कायप्पस्सद्धि, चित्तप्पस्सद्धि, कायलहुता, चित्तलहुता, कायमुदुता, चित्तमुदुता, कायकम्मञ्ञता, चित्तकम्मञ्ञता, कायपागुञ्ञता, चित्तपागुञ्ञता, कायुजुकता, चित्तुजुकता, चेति एकून-वीसति-मे चेतसिका सोभनसाधारणा नाम।

---

* अशोभन और शोभन दो प्रकार के चित्त होते हैं। जब कोई चैतसिक शोभन चित्त से युक्त होता है तब अशोभन से अन्य और जब अशोभन से मुक्त होता है तब शोभन से अन्य होता है। अतः उसे अन्यसमान कहते हैं।

अच्छे विषयों को पसन्द करने वालों को श्रद्धा; अच्छे गोचरों को स्मरण करने वाले को स्मृति; पापों से लज्जा करने को ह्री; उनसे भय करने को अपत्रपा; इच्छा-रहित होने को अलोभ; दूषण न करने को अद्वेष; जहाँ तहाँ विषय में उपेक्षा करने को तत्मध्यस्थता; चैतसिकों के शान्त होने को कायप्रश्रब्धि; चित्तों के शान्त होने को चित्तप्रश्रब्धि; चैतसिकों के लघुत्व को कायलघुता; चित्तों के लघुत्व को चित्तलघुता; चैतसिकों के नम्रत्व को कायमृदुता; चित्तों के नम्रत्व को चित्तमृदुता; चैतसिकों के काम में योग्यता को कायकर्मण्यता; चित्तों के काम में योग्यता को चित्तकर्मण्यता; चैतसिकों के समर्थभाव को कायप्रागुण्य; चित्तों के समर्थ भाव को चित्तप्रागुण्य; चैतसिकों की ऋजुता को काय—ऋजुता; चित्तों की ऋजुता को चित्तऋजुकता कहते हैं। यह उन्नीस चैतसिक शोभन चित्तों के साथ मिलने वाले होते हैं। अथवा "शोभन-चित्त-साधारण" हैं।

५०—सम्मावचा, सम्माकम्मन्तो सम्माआजीवो, चेति तिस्सो, विरतियो नाम।

मृषावाद, पैशुन्य, पारुष्य, प्रलापवचन, इन चार वचन के दुश्चरितों से विरत रहने वाले को सम्यग्वाक्; प्राणातिपात, अदत्तादान, काम-मिथ्याचार, इन तीन काया के दुश्चरितों से विमुख रहने को सम्यक्-कर्मान्त, कहते हैं। इन दोनों दुश्चरितों से विरत रहने को सम्यगाजिव कहते हैं। इन तीनों को विरति कहते हैं।

५१—करुणा, मुदिता, अप्पमञ्ञायो नामाति सब्बथापि पञ्ञिन्द्रियेन सद्धिं पञ्चवीसति.मे चेतसिका सोभनाति वेदितब्बाति।

दुःखितों पर दया करने को करुणा; सुखितों को देखकर प्रमोद करने को मुदिता कहते हैं; इन दोनों को अप्रमाण कहते हैं। यह सब प्रकार से भी प्रज्ञेन्द्रिय (अमोह) के साथ पचीस चैतसिकों को शोभन चैतसिक कहते हैं। इस तरह ५२ बावन चैतसिक होते हैं।

५२–एत्तावता च.........
तेरस-ञ्ञासमाना च चुद्दसा कुसला तथा। सोभना पञ्च-वीसाति।
द्वि-पञ्ञास पवुच्चरे।

चैतसिकों को विस्तार से पृथक् पृथक् गिनकर बतलाया जा चुका है। 'अन्य-समान' नाम से तेरह चैतसिक; 'अकुशल' नाम से चौदह चैतसिक; और 'शोभन' नाम से पचीस चैतसिक;—यह ५२ चैतसिक हुए।

५३–तेसं चित्ता-विप्पयुत्तानं। यथा-योग-मितो परं। चित्तु-प्पादेसु पच्चेकं। सम्पयोगो पवुच्चति।

इसके बाद, चित्त में नित्य संयोग करने वाले उन चैतसिकों के चित्तों को एकएक कर कहा जायगा।

५४–सत्त सब्बत्थ युज्जन्ति। यथा-योगं पकिण्णका। चुद्दसा-कुसलेस्वे-व। सोभनेस्वे-वसोभना।

स्पर्शादि सात चैतसिक सब चित्त (संक्षेप से नवासी) विस्तार से १२१ चित्तों में युक्त होते हैं। वितर्कादि छः प्रकीर्ण चैतसिक सब चित्तों में यथा योग्य युक्त होते हैं। मोहादि चौदह चैतसिक अकुशल चित्तों में ही यथानुरूप युक्त होते हैं।

५५–कथं? सब्बचित्तसाधारणा ताव सत्ति. मे चेतसिका सब्बेसुपि एकून-नवुतिया चित्तुप्पादेसु लब्भन्ति।

॥ सम्प्रयोगुद्देश समाप्त ॥

कैसे युक्त होते हैं? प्रथमोत्पन्न 'सर्व चित्त-साधारण' नाम वाले–स्पर्शादि सात चैतासिक सब चित्तों (संक्षेप नवासी-८९ विस्तार १२१) में मिल जाते हैं।

५६—पकिण्णकेसु पन वितक्को ताव द्विपञ्चविञ्ञाणवज्जितकामावचर चित्तेसु चेव एकादससु पठमज्झानचित्तेसु चेति पञ्चपञ्ञासाय चित्तेसु उप्पज्जति ।

प्रकीर्ण चैतसिकों में से पहला वितर्क चैतसिक चक्षुविज्ञानादि दश चित्तों को छोड़ कर ४४ कामावचार चित्त और एग्यारह प्रकार के प्रथम ध्यान चित्त, (इस प्रकार पँचपन ५५ चित्तों) में होते हैं ।

५७—विचारो पन तेसु चेव एकादससु दुतीयज्झानचित्तेसु चाति छ-स्सट्ठिया चित्तेसु ।

'विचार' उन ५५ चित्त और ११ प्रकार के द्वितीय-ध्यान के चित्त, कुल ६६ चित्त में होता है ।

५८—अधिमोक्खो द्विपञ्चविञ्ञाणविचिकिच्छासहगतवज्जित चित्तेसु ।

'अधिमोक्ष' चक्षुविज्ञानादि दश चित्त और विचिकित्सा सहगत चित्त से वर्जित अठहत्तर चित्तों में होता है ।

५९—वीरियं पञ्चद्वारावज्जन-द्विपञ्चविञ्ञाण-सम्पटिच्छन-सन्तीरण-वज्जित-चित्तेसु ।

'वि्रयं' पञ्च द्वारा वर्ज्जन चित्त, चक्षुविज्ञानादि दश चित्त, दो संप्रतिच्छन्न चित्त और तीन सन्तीर्ण चित्त को छोड़ तिहत्तर चित्तों में होता हैं ।

६०—पीति दोमनस्सुपेक्खासहगत-कायविञ्ञाण-चतुत्थज्झान-वज्जित-चित्तेसु ।

'प्रीति' दो दौर्मनस्य चित्त, पँचपन उपेक्षा सहगत चित्त, दो काय विज्ञान चित्त और ग्यारह चतुर्थ ध्यान के चित्त से वर्जित इकावन ५१ चित्तों में होता है ।

६१—छन्दो अहेतुक-मोमूह-वज्जित-चित्तेसुति ।

'छन्द' अट्ठारह अहेतुक चित्त और दो मोमूह चित्त से वर्जित उनहत्तर चित्तों में होता है ।

६२—ते पन चित्तुप्पादा यथाक्कमं ।—छसट्ठि पञ्चपञ्ञास। एका दस च सोलस ।

सत्तती वीसती चेव । पकिण्णकविवज्जिता । पञ्चपञ्ञासछसट्ठि।

ट्ठसत्तति तिसत्तति एकपञ्ञास-चे.कून । सत्ततीसपकिण्णका ।

प्रकीर्ण के अलावे चित्तों को क्रमशः छियासठ, पचँपन, ग्यारह, सोलह सत्तर और बीस समझना चाहिये । प्रकीर्ण चैतसिकों के साथ उत्पन्न चित्तों को भी क्रमशः पचँपन, छियासठ, अठहत्तर, तिहत्तर, एकावन, उनहत्तर समझना चाहिये ।

॥ अन्यसमान सम्प्रयोग नय समाप्त ॥

६३—अकुसलेसु पन, मोहो, अहिरीक, अनोत्तप्प, उद्धच्चाति चत्तारो-मे चेतसिका सब्बाकुसलसाधारणा नाम सब्बेसुपि द्वादसस्वाकुसलेसु लब्भन्ति ।

चौदह चैतसिकों में से मोह, अह्री; अनपत्रपा; औद्धत्य, यह चार चैतसिक सभी अकुशलों में साधारण हैं ।

६४—लोभो, अट्ठसु लोभसहगतचित्तेस्वेव लब्भति ।

'लोभ' चैतसिक, आठ लोभमूलक चित्तों में ही प्राप्त है ।

६५—दिट्ठि, चतूसु दिट्ठिगतसम्पयुत्तचित्तेसु।

'दृष्टि' चैतसिक, चार दृष्टिसम्प्रयुक्त चित्तों में प्राप्त हैं ।

६६—मानो, चतूसु दिट्ठिगतविप्पयुत्तेसु ।

'मान' चैतसिक, चार दृष्टि विप्रयुक्त चित्तों में प्राप्त है ।

६७—दोसो, इस्सा, मच्छरियं, कुक्कुच्चञ्चाति द्वीसु पतिघसम्पयुत्त चित्तेसु ।

द्वेष, ईर्ष्या, मात्सर्य्य, कौकृत्य :—यह चार चैतसिक दो प्रतिघ सम्प्रयुक्त चित्तों में प्राप्त हैं ।

६८—थिनमिद्धं, पञ्चसु ससङ्खारिकचित्तेसु ।

स्त्यान और मृद्ध पाँच ससंस्कारिक चित्तों में प्राप्त हैं ।

६९—विचिकिच्छा, विचिकिच्छासहगतचित्तेस्वेवाति ।

विचिकित्सा चैतसिक विचिकित्सासहगत चित्त—में ही प्राप्त है । इस तरह, चौदह प्रकार के अकुशल बारह अकुशल चित्तों में यथायोग्य युक्त होते हैं । सम्प्रयोगुद्देश समाप्त ।

७०—सब्बापुञ्ञेसु-चत्तारो लोभमूले तयो गता । दोसमूलेसु चत्तारो। ससङ्खारे द्वयं तथा। विचिकिच्छा विचिकिच्छाचित्ते चाति चतुद्दस। द्वादसाकुसलेस्वेव। सम्पयुञ्जन्ति पञ्चधा।।

मोह, अह्री, अनपत्रपा, :औद्धत्यः—यह चार बारह अकुशल चित्तों-में होते हैं । लोभ, दृष्टि, मान, :—यह तीन आठ लोभमूलक चित्तों में होते हैं । द्वेष, ईर्ष्या, मात्सर्य्य, कौकृत्यः—यह चार द्वेषमूलक चित्तों में होते हैं । स्त्यान, मृद्ध, :—यह दो पाँच ससंस्कारिक चित्तों-में होते हैं । विचिकित्सा चैतसिक, विचिकित्सासहगत चित्त में ही होता है । इस तरह चौदह अकुसल चैतसिक, बारह अकुशल चित्तों में हीं पाँच प्रकार से युक्त होते हैं ।

७१—सोभनेसु पन सोभनसाधारणा ताव एकून-वीसति-मे चेतसिका सब्बेसुपि एकून.सट्ठिया सोभनचित्तेसु संविज्जन्ति ।

पचीस प्रकार के शोभन चैतसिकों में से प्रथमोत्पन्न उन्नीस प्रकार के शोभन साधारण चैतसिक, सब उनसठ चित्तों में होते हैं ।

७२—विरतियो पन तिस्सोपि लोकुत्तरचित्तेसु सब्बथापि नियता एकतोव लब्भन्ति। लोकियेसु पन कामावचरकुसले स्वे-व कदाचि सन्दिस्सन्ति विसुं विसुं।

सम्यग्वाक् सम्यक्कर्मान्त, सम्यगाजीवः—यह तीन प्रकार के 'विरति चैतसिक' लोकोत्तर चित्तों में नित्य एक साथ सब प्रकार से प्राप्त हैं। लौकिय चित्तों में से आठ कामावचर कुशल चित्तों में ही कदाचित पृथक् पृथक् एक अंश ने देख पड़ते है। कभी होता है तो एक एक कर के होता है। तीनो एक साथ नहीं होते। जिस समय सम्यक्–कर्मान्त हो उस समय अन्य नहीं होते।

७३—अप्पमञ्ञायो पन द्वादससु पञ्चमज्झानवज्जितमहग्गतचित्तेसु चेव कामावचरकुसलेसु च सहेतुककामावचरक्रियचित्तेसु चाति अट्ठवीसतिया-चित्तेस्वे-व कदाचि नाना हुत्वा जायन्ति। उपेक्खासहगतेसु पनेत्थ करुणामुदिता न सन्तीति केचि वदन्ति।

अप्रमाण चैतसिक, पञ्चम ध्यान से वर्जित बारह महग्गत चित्त, आठ कामावचर कुशल चित्त, तथा आठ सहेतुक कामावचर क्रियचित्त, :—इन अट्ठाइस चित्तों में ही पृथक् पृथक् होकर कभी होते हैं। उपेक्षा-सहगत कामावचर कुशल और सहेतुक कामावचर क्रिया चित्तों में करुणा और मुदिता यह दो नहीं होते।

७४—पञ्ञा पन द्वादससु ञानसम्पयुत्तकामावचर चित्तेसु चेव सब्बेसुपि पञ्चतिंसाय महग्गतलोकुत्तरचित्तेसु चाति सत्तचत्तालीसाय-चित्तेसु सम्पयोगं गच्छतीति।

प्रज्ञा = प्रज्ञेन्द्रिय, अमोह = चैतसिक बारह प्रकार के ज्ञान सम्प्रयुक्त-कामावचर चित्त और सब पैंतीस महग्गत और लोकोत्तर चित्तः—इन-

सैंतालीस चित्तों में सम्प्रयुक्त हैं। इस प्रकार के शोभन चैतसिक—शोभन चित्तों में ही यथा सम्भव संयुक्त होते हैं।

७५—एकूनवीसती धम्मा। जायन्ते-कून-सट्ठिसु। तयो सोलस-चित्तेसु। अट्ठवीसतियं द्वयं। पञ्ञापकासिता सत्ता चत्तालीस-विधेसुपि। सम्पयुत्ता चतुद्धेवं। सोभनेस्वे.व सोभना।

उन्नीस प्रकार के शोभन चैतसिक, उनसठ शोभन चित्तों में होते हैं। तीन प्रकार के विरति चैतसिक सोलह चित्तों में होते हैं। दो प्रकार के अप्रमाण अट्ठाइस चित्तों में होते हैं। प्रज्ञा चैतसिक सैंतालीस चित्तों में प्रकाशित किया जाता हैं। इस तरह, पचीस प्रकार के शोभन चैतसिक, उनसठ शोभन चित्तों में चार भेदों से संयुक्त होते हैं।

॥ सोलह प्रकार सम्प्रयोगनय समाप्त ॥

७६—इस्सामच्छेरकुक्कुच। विरतीकरुणादयो। नाना कदाचि मानो च। थिनमिद्धं तथा सह।

ईर्ष्या, मात्सर्य, कौकृत्य, तीन प्रकार की विरति करुणा और मुदिता चैतसिक पृथक् पृथक् होकर कभी कभी होते हैं। मान चैतसिक भी कदाचित् होता है। स्त्यान, मृद्ध भी कभी २ एक साथ होते हैं।

७७—यथा वुत्तानुसारेन। सेसानियतयोगिनो। सङ्गहञ्च पवक्खामि। तेसं दानि यथारहं।

ईर्ष्यादि ग्यारह चैतसिकों से अतिरिक्त इकतालिस चैतसिकों को बतलाये हुए सम्प्रयोग विधि के अनुसार नियत योगी जानिये। अब उन दोनों नियतानियत योगी चैतसिकों को संग्रह करने वाला—संग्रह विधि को भी यथोचित कहते हैं।

७८—छत्तिंसा.नुत्तरे धम्मा। पञ्चतिंस महग्गते। अट्ठतिंसापि लब्भन्ति। कामावचरसोभने। सत्तवीसति पुञ्ञम्हि। द्वादसा.हेतुकेति च। यथा-सम्भव-योगेन। पञ्चधा तत्थ सङ्गहो।

लोकोत्तर चित्तमें छत्तीस, महग्गत चित्तमें पैंतीस, कामावचर-शोभन चित्त में अड़तीस, अकुशल चित्त में सत्ताइस और अहेतुक- चित्त में बारह चैतसिक प्राप्त हैं। इस तरह, उस सग्रंह विधि में होने वाले चैतसिक सम्प्रयोग विधि के अनुसार पाँच प्रकार से संग्रह होते हैं।

७९—कथं? लोकुत्तरेसु ताव अट्ठसु पथमज्झानिकचित्तेसु अञ्ञसमाना तेरस चेतसिका अप्पमञ्ञावज्जिता तेवीसतिसोभन चेतसिका चेति छत्तिंस धम्मा सङ्गहं गच्छन्ति। तथा.दुतीयज्झानिकचित्तेसु वितक्कवज्जा ततीयज्झानिकचित्तेसु वितक्क विचारवज्जा। चतुत्थज्झाननिकचित्तेसु वितक्कविचारपीतिवज्जा पञ्चमज्झानिकचित्तेसुपि उपेक्खासहगता तेएव सङ्गय्हन्तीति सब्बत्थापि अट्ठसु लोकुत्तरचित्तेसु पञ्चकज्झान-वसेन पञ्चधाव घसङ्गहो होतीति।

कैसे? चालीस लोकोत्तर चित्तों में से प्रथम आठ, प्रथम ध्यानिक चित्तों में तेरह प्रकार के अन्य समान चैतसिक, अप्रमाण-वर्जित तेइस शोभन चैतसिक:—इस तरह छत्तीस चैत्तसिकों का संग्रह होता है। आठ द्वितीय ध्यानिक चित्तों में वितर्क वर्जित बारह अन्य समान चैतसिक प्रथम ध्यान के समान तेइस शोभन चैतसिक, ऐसे पैंतिस चैतसिकों०। आठ तृतीय ध्यानिक चित्तों में वितर्क विचार वर्जित ग्यारह अन्यसमान चैतसिक, प्रथम ध्यान के समान तेइस शोभन चैतसिकः—इस तरह, तेंतीस चैतसिकों०। आठ पञ्चम ध्यानिक चित्तों में भी उपेक्षा वेदनासहित चतुर्थ ध्यान के समान तैंतिस चैतसिकों का ही संग्रह होता है। इस

तरह, सब प्रकार से आठ लोकोत्तर चित्तों में पाँच·ध्यानों के भेद से पाँच प्रकार से संग्रह होता है। इस तरह, लोकोत्तर चित्त में छत्तीस चैतसिक प्राप्त हैं।

८०—छत्तिंस पञ्चत्तिंसा च। चतुत्तिंस यथाक्कमं। तेत्तिंस·द्वय.मिच्चेवं पञ्चधा नुत्तरे ठिता।

लोकोत्तर चित्त में संग्रह विधि, पहला छत्तीस, दूसरा पैंतीस, तीसरा चौंतीस, चौथा तैंतीस, पांचवाँ बत्तीसः—इस तरह, क्रमशः पाँच प्रकार से स्थित है।

८१—महग्गतेसु पन तीसु पथमज्झानिकचित्तेसु ताव अञ्ञसमाना तेरस चेतसिका विरतित्तयवज्जिताद्वावीसति सोभनचेतसिका चेति पञ्चत्तिंसधमा सङ्गहं गच्छन्ति। करुणा मुदिता पनेत्थ पच्चेकमेव योजेतब्बा। तथा दुतीयज्झानिक चित्तेसु वितक्कवज्जा ततीयज्झानिकचित्तेसु वितक्कविचारवज्जा। चतुत्थज्झानिक चित्तेसु वितक्क, विचार,पीतिवज्जा। पञ्चमज्झानिकचित्तेसु पन पन्नरससु, अप्पमञ्ञायो न लब्भन्तीति सब्बथापि सत्त वीसतिया महग्गत चित्तेसु पञ्चकज्झानवसेन पञ्चधावसङ्गहो होतीति।

महग्गत चित्तों में से पहला तीन प्रकार के प्रथम ध्यानिक चित्तों में तेरह अन्य समान चैतसिक, त्रिविधि विरति वर्जित बाइस शोभन चैतसिक—इस तरह, पैंतीस चैतसिक हैं। इनमें से करुणा और मुदिता प्रत्येक जोड़ लीजिये। इसके समान द्वितीय ध्यानिक चित्तों में वितर्क वर्जित चौंतिस चैतसिक, तृतीय ध्यानिक चित्तों में वितर्क विचार वर्जित तैंतीस चैतसिक, चतुर्थ ध्यानिक चित्तों में वितर्क विचार प्रीति वर्जित बत्तीस चैतसिक, पन्द्रह प्रकार के पञ्चम ध्यानिक चित्तों में अप्रमाण वर्जित तीस ही चैतसिक हैं।

:—इस तरह, सब प्रकार से सत्ताइस महग्गत चित्तों में पाँच ध्यानों के भेद से पाँच प्रकार का होता है :—इस तरह महग्गत चित्तों में पैंतीस चैतसिक हुए ।

८२—पञ्चत्तिंसचतुत्तिंस । तेत्तिंस च यथाकयं वात्तिंसचेवतिंस सेति । पञ्चधाव महग्गते ।

महग्गत चित्तों में क्रमशः पैंतीस, चौंतीस, तैंतीस, बत्तीस, तीस, इस तरह पाँच प्रकार से संग्रह होते हैं ।

८३—कामावचरसोभनेसु पन कुसलेसु ताव पथमद्वये अञ्ञसमाना तेरस चेतसिका पञ्चवीसति सोभनचेतसिका चेति अट्ठत्तिंस धम्मा सङ्गहं गच्छन्ति। अप्पमञ्ञाविरतियो पनेत्थ पञ्चपि पच्चेकमेव योजेतब्बा । तथा दुतीयद्वये ञानवज्जिता । ततीय द्वये ञानसम्पयुत्ता पीति-वज्जिता । चतुत्थद्वये ञान-पीति-वज्जिता तेएव सङ्गय्हन्ति। क्रियचित्तेसु पि विरतिवज्जिता । तथेव चतूसुपि दुकेसु चतुद्धाव सङ्गय्हन्ति। तथा विपाकेसु च अप्पमञ्ञा-विरति-वज्जिता तेएव सङ्गय्हन्तीति । सब्बथापि चतुवीसतिया कामावचरसोमनचित्तेसु दुक-वसेन द्वादसधा-व सङ्गहो होतीति ।

कामावचर शोभन चित्तों में से पहले आठ कुशल चित्तों में प्रथम सौमनस्य सहगत ज्ञान सम्प्रयुक्त असांस्कारिक और ससंस्कारिक दोनों में तेरह अन्य समान चैतसिक, तथा पचीस शोभन चैतसिकः—इस तरह अड़तीस चैतसिक संग्रहीत हैं। इन चैतसिकों में से दो अप्रमाण और तीन विरति इन पाँचों को जोड़ लें। इसके समान दूसरे दोनों में प्रज्ञा-वर्जित सैंतीस चैतसिक, तीसरे दोनों में प्रज्ञा जोड़ के प्रीति वर्जित तैंतीस चैतसिक, चौथे दोनों में प्रज्ञा और प्रीति-वर्जित छत्तीस चैतसिक संग्रहीत हैं । कामावचर क्रिया चित्त में भी बिना विरति कुशल चित्त के समान

चार जोड़ों में चार भागों से संग्रहीत हैं । कामावचर विपाक चित्त में भी अप्रमाण तथा विरति को छोड़ कर उन चैतसिकों को क्रिया चित्त के समान संग्रहीत हैं । इस तरह, सब प्रकार से चौबीस कामावचर चित्तों में दो दो करके बारह भागों में संग्रह हैं । इस तरह, कामावचर शोभन चित्तों में अड़तीस चैतसिक हुये ।

८४—अट्ठत्तिंस सत्तत्तिंसा, द्वयं छत्तिंसकं सुभे । पञ्चत्तिंस चतुत्तिंसा-
द्वयं तेत्तिंसकं क्रिये । तेत्तिंसपाके बात्तिंसाद्वये-कत्तिंसकं भवे ।
सहेतुकामावचर । पुञ्ञ-पाक-क्रिया-मने ।

सहेतुक, कामावचर, कुशल, विपाक और क्रिया चित्तों में से कामावचर कुशल चित्त में संग्रहित चैतसिक, क्रमशः चार जोड़ों के अनुसार अड़तीस, सैंतीस जोड़ा छत्तीस, क्रिया—चित्त में चार जोड़ों के अनुसार क्रमशः पैंतीस, चौंतीस, जोड़ा, तैंतीस, विपाक चित्त में चार जोड़ों के अनुसार क्रमशः सैंतीस, बत्तीस जोड़ा इकतीस चैतसिक हैं ।

८५—न विज्जन्ते.त्थ विरती । क्रियेसु च महग्गते । अनुत्तरे अप्पमञ्ञा ।
कामपाके द्वयं तथा । अनुत्तरे झान-धम्मा । अप्पमञ्ञा च
मज्झिमे । विरती ञानपीती च । परित्तेसु विसेसका ।

क्रिया चित्त और महग्गत्त चित्त में तीन विरति चैतसिक नहीं होते । कुल लोकोत्तर चित्त में करुणा और मुदिताः—ये दो चैतसिक नहीं होते । कामावचर विपाक चित्त में दो अप्रमाण तथा तीन विरतिः—ये पाँच नहीं होते । इस श्लोक से वर्जित चैतसिकों को संग्रह करना है । लोकोत्तर चित्त में वितर्कादि ध्यानाङ्ग चैतसिक (आदि शब्द से विचार, प्रीति, वेदना, को लेना चाहिये) संग्रह करने में विशेष कारक है । महग्गत चित्त में वितर्कादि और दो अप्रमाण, संग्रह करने में विशेष कारक है । कामावचर शोभन चित्त में विरति और प्रज्ञा, प्रीति तथा दो अप्रमाण संग्रह करने में विशेष कारक है । इस श्लोक से विशेष करके चैतसिकों को संग्रह क्रिया जाता है ।

८६—अकुसलेसु पन लोभमूलेसु ताव पथमे असङ्खारिके अञ्ञस माना तेरस चेतसिका अकुसलसाधारणा चत्तारो चाति सत्त-रस लोभदिट्ठिहि सद्धिं एकून-वीसति धम्मा सङ्गहं गच्छन्ति ।

बारह अकुशल चित्तों में से आठ लोभ—मूलक चित्त में प्रथम सौमनस्य सहगत, दृष्टिगत सम्प्रयुक्त असांस्कारिक चित्त में तेरह अन्य—समान और सर्वाकुशल साधारण नामक मोह, अह्री, अनपत्रपा, औद्धत्य ये चार इस प्रकार सत्तरह, लोभ दृष्टि चैतसिकों के साथ उन्नीस चैतसिक संग्रहीत है।

८७—तथा दुतीये असङ्खारिके लोभमानेन ।

प्रथम असांस्कारिक के समान सत्तरह में लोभ, मान को प्रवेश करके उन्नीस चैतसिक दूसरे सौमन्य सहगत दृष्टिगत विप्रयुक्त असांस्कारिक चित्त में सङ्गृह है।

८८—ततीये तथेव पीतिवज्जिता लोभदिट्ठिहि सह अट्ठारस ।

तीसरे उपेक्षा सहगत दृष्टिगत सम्प्रयुक्त असांस्कारिक चित्त में प्रीति वर्जित उसी तरह सोलह अन्य समान लोभ दृष्टि के साथ अट्ठारह चैतसिक संग्रह है।

८९—चतुत्थे तथेव लोभमानेन ।

चौथे उपेक्षा सहगत दृष्टिगत विप्रयुक्त असांस्कारिक चित्त में तीसरे के समान सोलह अन्य समान चैतसिक लोभ और दृष्टि के साथ अट्ठारह चैतसिक संग्रह हैं।

९०—पञ्चमे पन पतिघसम्पयुत्ते असङ्खारिके,दोसो,इस्सा,मच्छरियं कुक्कुच्चञ्चाति चतूहि सद्धिं पीतिवज्जिता ते एव वीसति धम्मा संगय्हन्ति । इस्सा, मच्छरिय, कुक्कुच्चानि पनेत्थ पच्चेकमेव योजेतब्बानि ।

पाँचवा प्रतिघ सम्प्रयुक्त असङ्खारिक चित्त में द्वेष, ईर्ष्या, मात्सर्य्य, कौकृत्यः—इस तरह चारों चैतसिकों के साथ प्रीति वर्जित उन्नीस चैत-

सिकों का ही संग्रह हैं। उनमें से ईर्ष्या, मात्सर्य्य, कौकृत्य, इन तीन चैतसिकों में से प्रत्येक को जोड़ लीजिये।

ईर्ष्या, मात्सर्य्य, कौकृत्य यह तीन एक साथ कभी नहीं हो सकते कारण आपस में विरुद्ध है। जब ईर्ष्या होती है तो बाकी दो नहीं होते हैं।

९१–ससङ्खारिकपञ्चकेपि तथेव थिन, मिद्धेन, विसेसेत्वा योजेतब्बा।

पाँच ससांस्कारिक चित्त में भी असांस्कारिक के समान उन्नीस, अट्ठारह, बीस, चैतसिकों के स्थान में स्त्यान मिद्ध से विशेष करके इक्कीस, बीस, बाईस चैतसिकों को जोड़िये। ससांस्कारिक भी असांस्कारिक से जोड़ा हुआ है। चित्तकाण्ड(१)भाग = लोभमूल, द्वेषमूल, दोनों मिलाकर पाँच असांस्कारिक तथा पाँच ससांस्कारिक होते हैं।

९२–छन्द, पीतिवज्जिता पन अञ्ञसमाना एकादस अकुसल साधारणा चत्तारो चाति पन्नरस धम्मा उद्धच्चसहगते सम्पयुज्जन्ति।

मोमूह चित्त में से औद्धत्य सहगत = औद्धत्य चित्त में छन्द प्रीति वर्जित ग्यारह अन्य समान चैतसिक मोहादि चार-सभी अकुशल साधारण चैतसिकः— इस तरह, पन्द्रह चैतसिक हुए।

९३–विचिकिच्छासहगतचित्ते अधिमोक्ख-विरहिता विचिकिच्छा सहगता तथेव पन्नरस धम्मा समुपलब्भन्तीति। सब्बथापि द्वादसस्वाकुसलचित्तुप्पादेसु पच्चेकं योजियमानापि गणन वसेन सत्तधाव सङ्गहिता भवन्तीति।

विचिकित्सा सहगत चित्त में अधिमोक्ष वर्जित विचिकित्सा चैतसिक

के साथ उद्धच्च = औद्धत्य—चित्त के समान पन्द्रह चैतसिक हुए। इस

तरह, सब प्रकार के बारह अकुशल चित्तों में पृथक् पृथक् जोड़ते हुए भी गिनने से सात होते हैं। इस प्रकार अकुशल चित्तों में सत्ताईस चैतसिक हुए।

९४—एकूनवीसा-ठारसावीसे-कवीसवीसति। द्वावीसपन्नरसेति। सत्तधा कुसले ठिता।

अकुशल।चित्त में संग्रह विधि उन्नीस अट्ठारह, वीस, इक्कीस, वीस, बाईस, पन्द्रह, इस प्रकार सात भेद स्थित हैं।

९५—साधारणा च चत्तारो। समाना च दसा.परे चुद्दसे.ते पवुच्चन्ति। सब्बा कुसलयोगिनो।

मोह, अह्री, अनपत्रपा, औद्धत्य इस चार प्रकार को सभी अकुशल साधारण नामक चैतसिक, अधिमोक्ष, प्रीति, छन्द, इन तीनों चैतसिकों के अतिरिक्त दस प्रकार के अन्य समान चैतसिक, इस प्रकार चौदह चैतसिकों को सर्वाकुशल योग चैतसिक कहते हैं।

९६—अहेतुकेसु पन हसनचित्ते ताव छन्दवज्जिता अञ्ञसमाना द्वादस धम्मा सङ्गहं गच्छन्ति।

अट्ठारह अहेतुक चित्तों में से प्रथम हसन चित्त (अहेतुक—क्रिया चित्त में तीसरा सौमनस्य सहगतं हसितु प्पादचित्तं—इस वाक्य से छन्दवर्जित बारह अन्य समान चैतसिकों का संग्रह होता है।

९७—तथा वोट्ठब्बने छन्द-पीतिवज्जिता।

हसनचित्त के समान वोठब्बन चित्त (मनो द्वारा वर्जन चित्तको ही वोठब्बन कहा जाता है) में छन्द, प्रीति, वर्जित ग्यारह अन्यसमान चैतसिकों का संग्रह होना है।

९८—सुखसन्तीरणे, छन्द, वीरियवज्जिता।

सुख सन्तीर्ण चित्त (सोमनस्स सन्तीरण को ही सुख सन्तीरण कहते

है। में छन्द, वीर्य वर्जित ग्यारह अन्यसमान चैतसिकों का संग्रह होता हैं।

९९—मनोधातुत्तिका-हेतुकपतिसन्धि-युगले छन्दपीतिवीरिय वज्जिता।

त्रिविधि मनोधातु, द्विविध अहेतुक प्रति सन्धि चित्त। (पञ्च द्वारा वर्ज्जन चित्त और दो सम्प्रतिच्छन चित्तों को मनोधातु और दो उपेक्षा सहगत सन्तीर्ण चित्तों को अहेतुक प्रति सन्धि कहते हैं) में छन्द, प्रीति, वीर्य वर्जित दस अन्य समान चैतसिकों का संग्रह होना है।

१००—द्विपञ्चविञ्ञाने पकिण्णक-वज्जिता तेयेव सङ्गय्हन्तीति सब्ब थापि अठारससु अहेतुकेसु गणनवसेन चतुधाव सङ्गहो होतीति।

दस विज्ञान चित्त में छैः प्रकीर्ण वर्जित उन स्पर्शादि० सात चैतसिकों का ही संग्रह है। इस तरह, सब प्रकार से अट्टारह अहेतुक चित्तों में गिनने से चतुर्विध सग्रंह है॥ ५६ में देख लेना॥

१०१—द्वादसे-कादसदसा सत्ता चाति चतुब्बिधो। ठारसस्वाहेतुकेसु चित्तुप्पादेसु सङ्गहो।

अट्ठारह अहेतुक चित्तों में बारह, ग्यारह, दसः सात ऐसा संग्रह चार हैं।

१०२—अहेतुकेसु सब्बत्थासत्तसेसा यथारहं। इति वित्थारतो वुत्तो तेत्तिंसविध सङ्गहो।

१०३—इत्थं चित्ता-वियुत्तानं। सम्पयोगञ्चसङ्गहं। ञत्वा भेदं यथा योगं चित्तेनसममुद्दिसे।

इति अभिधम्मत्थसङ्गहे चेतसिक सङ्गहविभागो

नाम दुतीयो परिच्छेदो॥

स्पर्शादि सर्व चित्त साधारण :नामक सात चैतसिक सब अहेतुक—चित्तों से युक्त हैं। वितर्क आदि बाकी पाँच पकिण्णक चैतसिक अहेतुक चित्तों में यथोचित युक्त हैं। इस प्रकार हमने विस्तार से तैंतीस भेद संग्रह बता दिया है।

बतलाई हुई विधि से सोलह विधसम्प्रयोग नय और तैंतीस विध संग्रह नय जानकर चित्तों में नित्य युक्त चैतसिकों का यथायोग्य चित्त से समान भेद को सोच विचार कर समझिये और पढ़िये।

इति अभिधर्मार्थ संग्रह ग्रन्थ में चैतसिकों का संग्रह करने का

दूसरा भाग समाप्त

पकिरणक सङ्गहो

१०४—सम्पयुत्ता यथायोगं। तेपञ्ञास सभावतो। चित्त-चेतसिका धम्मा। तेसं दानि यथा-रहं।

चित्त चैतसिक के जो ५३ स्वाभाविक धर्म यथा योग्य संयुक्त हैं, उन पर अब उचित प्रकाश डाला जायगा।

१०५—वेदनाहेतुतो किच्च-द्वारालम्बनवत्थुतो। चित्तुप्पाद-वसेने-व। सङ्गहो नाम नीयते।

चित्त के उत्पन्न होने के क्रम से, वेदना, हेतु, कृत्य, द्वार आलम्बन और वस्तुके भेद से उनका संग्रह किया जाता है।

१०६—तत्थ वेदनासङ्गहे ताव तिविधा वेदनाः—सुखं-दुखं-अदुक्ख-म सुखा-चेति। सुखं-दुखं-सोमनस्सं-दोमनस्सं-उपेक्खा-ति च भेदेन पन पञ्चधा होति।

उन छः प्रकार के प्रकीर्ण सग्रहों में (१) सुख, (२) दुःख, (३) न दुःख न सुख;—ऐसी वेदना तीन हैं। फिर (१) सुख (२) दुःख, (३) सौमनस्य, (४) दौर्मनस्य, (५) उपेक्षाः—इस तरह-इन्द्रिय भेद से वेदना पाँच हैं।

१०७—तत्थ सुखसहगतं कुसलविपाकं कायविञ्ञान-मेकमेव। तथा दुक्खसहगतं अकुसलविपाकं।

उन पाँच वेदनाओं में से सुख वेदना के साथ होने वाला चित्त कुशल विपाक कायविज्ञान एक ही है। इसके समान दुःख वेदना के साथ होने वाला चित्त भी अकुशल विपाक कायविज्ञान एक ही है।

१०८—सोमनस्ससहगतचित्तानि पन लोभमूलानि चत्तारि द्वादस कामावचरसोभनानि, सुखसन्तीरणहसनानि च द्वेति अठारस कामावचरसोमनस्ससहगतचित्तानि चेव पथम, दुतीय,ततीय,चतुत्थ-ज्झानसङ्खातानि चतुचत्तालीस महग्गत लोकुत्तरचित्तानि चेति द्वासट्ठिविधानि भवन्ति।

सौमनस्य के साथ होने वाले चित्त ६२ प्रकार के हैं। उनमें ४ लोभ मूलक, १२ कामावचर शोभन, और २ सुख-सतीर्ण और हसन-चित्त, कुल १८ कामावचर सौमानस्य के साथ होने—वाले चित्त हुए। प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ ध्यान के चित्त—कुल ४४ होते हैं। अतः ऊपर के १८ + यह ४४ चित्त कुल मिला कर ६२ हुए।

१०९—दोमनस्ससहगतचित्तानि पन द्वे पतिघसम्पयुत्तचित्तानेव।

दौर्मनस्य वेदना के साथ होने वाले चित्त दो दौर्मनस्य सहगत चित्त ही हैं।

११०—सेसानि पन सब्बानिपि पञ्चपञ्ञास उपेक्खासहगतचित्तानेवाति।

शेष सब पँचपन चित्त उपेक्षा सहगत ही हैं। इस तरह, उन चित्त, चैतसिक परमार्थ स्वभावों को वेदना—वश संक्षेप से इकट्ठा कर लेने का तरीका चित्तों से ही उद्धृत किया जाता है।

१११—सुखदुक्खमुपेक्खा, ति। तिविधा तत्थ वेदना। सोमनस्सं, दोमस्समिति भेदेन पञ्चधा।

उस वेदना—संग्रह में वेदना, सुख, दुःख उपेक्षाः—इस तरह, तीन हैं। सौमनस्य और दौर्मनस्य दोनों के साथ इन्द्रिय भेद से पाँच है।

११२—सुखमेकत्थ दुक्खञ्च। दोमनस्सं द्वये ठितं। द्वासट्ठिसु सोमनस्सं। पञ्चपञ्ञासके-तरा।

सुख और दुःख यह दो वेदना अलग अलग एक ही चित्त में होते है। दौर्मनस्य वेदना दो चित्त में होते हैं। सौमनस्य वेदना बासठ चित्तों में होते हैं। इसके अतिरिक्त उपेक्षा वेदना पँचपन चित्तों में होते हैं।

११३—हेतुसङ्गहे हेतूनाम लोभो, दोसो, मोहो, अलोभो, अदोसो, अमोहो, चाति छब्बिधा भवन्ति।

हेतु संग्रह में हेतु-कारण-नाम शब्द प्रकाशनार्थं! लोभ, द्वेष, मोह, अलोभ, अद्वेष, अमोह, इस तरह छः हैं। हेतु-कारण-मूल-निमित्त, भी कह सकते हैं, सब समानार्थं हैं।

११४—तत्थ पञ्चद्वारावज्जन.द्विपञ्चविञ्ञान,सम्पतिच्छन,सन्तीरण वोट्ठब्बन,हसन,वसेन। अठारस-अहेतुकचित्तानि नाम।

उस द्वितीय प्रकीर्णं संग्रह में पञ्च द्वारावज्जंन. पाँच विज्ञान द्विक, सम्प्रतिच्छन द्विक, सन्तीर्णं त्रिक, वोट्ठवन, (अहेतुक क्रियाचित्त में से मनोद्वारा वज्जंन चित्त को कहते हैं)। हसितोत्पाद चित्तः—यह सब अठारह अहेतुक चित्त हैं। इनमें कोई हेतु नहीं हैं।

११५—सेसानि सब्बानिपि एकसत्तति चित्तानि सहेतुकानेव।

अवशिष्ठ सब इकहत्तर चित्त सहेतुक हैं।

११६—तत्थपि द्वे मोमूहचित्तानि एकहेतुकानि।

उन सहेतुक चित्तों में से भी दो मोमूह चित्तों का एक ही मोह हेतु हैं।

११७—सेसानि दस अकुसलचित्तानि चेव ञानविप्पयुत्तानि द्वादस कामावचरसोभनानि-चेति द्वावीसति चित्तानि द्विहेतुकानि।

शेष अकुशल दस ज्ञान विप्रयुक्त कामावचर शोभन बारहः—इस प्रकार बाईस चित्त द्विहेतुक हैं।

११८—द्वादस ञानसम्पयुत्तकामावचरसोभनानि चेव पञ्चतिंस महग्गतलोकुत्तरचित्तानि-चेति सत्तचालीस चित्तानि तिहेतुकानीति ।

बारह ज्ञान सम्प्रयुक्त कामावचर शोभन, पैंतीस महग्गत लोकोत्तरः यह सैंतालीस चित्त त्रिहेतुक हैं । उन चित्त, चैतसिक, परमार्थ स्वभावों को हेतु-वश संक्षेप से इकट्ठा कर लेने का तरीका चित्तों से ही उद्धृत किया गया है ।

११९—लोभो दोसो च मोहो च । हेतूअकुसला तयो । अलोभा दोसा मोहो च । कुसला ब्याकता तथा ।

अकुशल हेतु-लोभ, द्वेष, और मोह तीन हैं । कुशल और अव्याकृत हेतु—अलोभ अद्वेष और अमोह तीन हैं । स्वभाव से छः हेतु हैं तीन अकुशल, तीन कुशल । तीन अव्याकृतः—यह त्रिक भेद से नव हैं । विपाक और क्रिया चित्त अव्याकृत हैं ।

१२०—अहेतुका-ठारसे-क-हेतुका द्वे द्वावीसति । द्विहेतुका मता सत्ता-चत्तालीस तिहेतुका ।

अहेतुक चित्त अट्ठारह हैं । एकहेतुक चित्त दोही हैं । द्विहेतुक चित्त बाइस हैं । त्रिहेतुक चित्त सैतालीस हैं । सब नवासी (८९) चित्त होते हैं ।

१२१—किच्चसङ्गहे किच्चानि नाम पतिसन्धि, भवङ्गा, वज्जन, दस्सन, सवण, घायन, सायन, फुसन, सम्पतिच्छन, सन्तीरण, वोठ्ठब्बन, जवन, तदारमण, चुति, वसेन चुद्दस विधानि भवन्ति ।

कृत्यसंग्रह—में कृत्य प्रतिसन्धि, भवङ्ग, आवर्ज्जन, दर्शन, श्रवण, घ्राण, चाटना, चीखना, स्पर्श, सम्प्रतिच्छन, सन्तीर्ण, वोट्ठवन, जवन, तदालम्बन, च्युति—ये सब चौदह होते हैं ।

१२२—पतिसन्धि, भवङ्ग, वज्जन, पञ्च विञ्ञानठानादिवसेन पन दसधा ठानभेदो वेदितब्बो ।

स्थान भेद से प्रतिसन्धि स्थान, भवङ्ग आवर्ज्जन पाँच विज्ञान स्थानादि भेद से दस प्रकार के होते हैं ।

नोटः—प्रतिसन्धि इत्यादि चौदह—कृत्य चित्तों का विशेष नाम हैं । १२३ से १३५ तक संक्षेप से ८९ और विस्तार १२१ चित्तों तदनुसार ५२ चैतसिकों का नाम प्रतिसन्धि आदि में लिया हैं । १२२ में ठान शब्द स्थान वाचक हैं । दस स्थान ये हैंः—प्रतिसन्धि, भवङ्ग, आवर्ज्जन, पाँच विज्ञान, सम्प्रतीच्छन, सन्तीर्ण वोट्ठवन, जवन; तदालम्बन, च्युति ॥ कृत्य स्थान इन दोनों का भेद ऐसा समझीये कि कृत्य परमार्थ, स्थान सम्युत्यार्थ । दस स्थान निम्न लिखित क्रम से हैं ।

१—च्युति और भवंग के बीच में प्रतिसन्धि का स्थान । २-प्रतिसन्धि और आवर्ज्जन, जवन और आवर्ज्जन, तदालम्बन और अवर्ज्जन, वोट्ठवन और आवर्ज्जन, जवन और च्युति, तदालम्बन और च्युति के बीच में भवङ्ग स्थान हैं । ३—भवङ्ग और पाँच विज्ञान भवंग और जवन के बीच में आवर्ज्जन स्थान । ४ दश्चद्वारा वर्ज्जन और सम्प्रतीच्छन्न के बीच में पांच विज्ञान स्थान । ५-पांच विज्ञान और सन्तीर्ण के बीच में सम्प्रतीच्छन्न स्थान : ६—सन्तीर्ण और जवन, सन्तीर्ण और भवङ्ग के बीच में वोट्ठवन स्थान । ७—वोट्ठवन और तदालम्बन, वोट्ठवन और भवङ्ग, वोट्ठवन और च्युति, मनोद्वारावर्ज्जन और तदालम्बन के बीच में जवन स्थान । ८-सम्प्रतीच्छन्न और वोट्ठवन के बीच में सन्तीर्ण स्थान । ९—जवन और भवङ्ग, जवन और च्युति के बीच में तदालम्बन स्थान । १०—जवन और प्रतिसन्धि तदालम्बन और प्रतिसन्धि के बीच में च्युति स्थान है ।

१२३–तत्थ द्वे उपेक्खासहगतसन्तीरणानि चेव अट्ठ महाविपाकानि च नवरूपारूप विपाकानि चेति एकूनवीसति चित्तानि पति सन्धि, भवंग, चुतिकिच्चानि नाम ।

उस प्रकीर्ण तृतीय कृत्य संग्रह में दो उपेक्षा सहगत सन्तीर्ण, आठ महा विपाक, नवरुपारूप विपाकः—इस प्रकार उन्नीस चित्त प्रतिसन्धि, भगङ्ग, च्युति कृत्य हैं। यह उन्नीस चित्त किये हुए कर्म्म के अनुसार अलग अलग प्रतिसन्धि का काम, निद्रा समय भवङ्ग का काम, मृत्यु के समय च्युति का काम, करता हैं । कामलोक, रुपलोक, अरुपलोक तीनों के अनुसार होता हैं ।

१२४–आवज्जन किच्चानि पन द्वे

आवर्ज्जन कृत्य पञ्च द्वारा वर्ज्जन और मनोद्वारा वर्ज्जन दो ही हैं । यह दो सोचने और विचारने का काम करते हैं ।

१२५–तथा दस्सन, सवण, घायन, सायन, फुसन, सम्पतिच्छन किच्चानि च ।

दर्शन, श्रवण, घ्राण, चीखना, स्पर्श, सम्प्रतीच्छन्न कृत्य आवर्जन जैसे प्रत्येक के दो ही हैं ।

१२६–तीनि सन्तीरणकिच्चानि ।

सन्तीर्ण कृत्य तीन सन्तोर्ण चित्त ही हैं ।

१२७–मनोद्वारावज्जनमेव पञ्चद्वारे वोट्ठब्बनकिच्च साधेति ।

मनो द्वार वर्ज्जन ही पाँच द्वार में वोट्ठवन—कृत्य का साधन करता हैं ।

१२८–आवज्जनद्वयवज्जितानि कुसला-कुसल-फल-क्रियचित्तानि पञ्चपञ्ञासजवनकिच्चानि ।

आवर्ज्जन—द्वय—वर्जित इक्कीस कुशल, बारह अकुशल, चार—फल, अठारह क्रिया, यह पचपन चित्त जवन कृत्य हैं ।

१२९–अट्ठ महाविपाकानि चेव सन्तीरणत्तयञ्चेति एकादस तदारमणकिच्चानि नाम ।

आठ महाविपाक और तीन सन्तीर्णं यह ग्यारह चित्त तदालम्बन कृत्य हैं। तदालम्बन तद्विषय तद्गोचर, वही आलम्ब और गोचर इत्यादि ।

१३०–तेसु पन द्वे उपेक्खा-सहगत-सन्तीरणचित्तानि पतिसन्धि, भवङ्ग, चुति, तदारमण, सन्तीरण,वसेन पञ्च किच्चानि नाम।

उन कृत्य वाले चित्तों में से दो उपेक्षा—सहगत सन्तीर्णं चित्त प्रतिसन्धि, भवङ्ग, च्युति, तदालम्बन सन्तीर्णं के भेद से पाँच कृत्य हैं।

१३१–महाविपाकानि अट्ठ पतिसन्धि,भवङ्ग चुति, तदारमण,वसेन चतु किच्चानि नाम ।

आठ महा विपाक चित्त, प्रतिसन्धि, भवङ्ग, च्युति, तदालम्बन, भेद से चार कृत्य हैं ।

१३२–महग्गतविपाकानि नव पतिसन्धि, भवङ्गचुतिवसेन ति किच्चानि नाम ।

नव महग्गत पिपाक चित्त, प्रतिसन्धि, भवङ्ग, च्युति भेद से तीन कृत्य हैं ।

१३३–सोमनस्स-सन्तीरणं सन्तीरण, तदारमणवसेन दुकिच्चं ।

सौमनस्य सन्तीर्णं चित्त, सन्तीर्णं और तदालम्बन भेद से दो कृत्य हैं ।

१३४–तथा वोट्ठब्बनं वोट्ठब्बना,वज्जनवसेन ।

वोट्ठवन—मनोद्वारावर्ज्जन चित्त वोट्ठवन आवर्ज्जन भेद से दो कृत्य हैं ।

१३५–सेसानि पन सब्बानिपि जवन, मनोधातुत्तिक, द्विपञ्चविञ्ञानानि यथासम्भव-मेककिच्चानीति ।

शेष सब पँचपन, जवन, मनो धातुत्रिक, और दो दो पाँच विज्ञान यथा सम्भव एक कृत्य हैं । ऐसा उन चित्त चैतसिक परमर्थं स्वभावों को कृत्य भेद से संक्षेप रूपसे इकट्टा कर लेने का तरिका चित्तों से ही उद्धृत किया गया हैं । दो सम्प्रतीच्छन्न और पंचद्वारा—वर्ज्जं यह तीन मनो धातु त्रिक हैं ।

१३६—पतिसन्धा-दयो नाम किच्च-भेदेन चुद्दसा दसधा ठानभेदेन। चित्तुप्पादा पकासिता।

सभी चित्तों को प्रतिसन्ध्यादि कृत्य भेद से चौदह, स्थान भेद से दस बतलाया गया है।

१३७—अट्ठसट्ठि तथा द्वे च। नव-ट्ठद्वे यथाक्कमं। एक.द्वित्ति. चतु.प्पञ्च। किच्चठानानि निद्दिसे।

एक, दो, तीन, चार, पांच कृत्य, स्थान वाले चित्तों को क्रमशः अड़सठ और दो, नौ, आठ, दो ऐसा निर्देश किया है।

१३८—द्वारसङ्गहे द्वारानि नाम चक्खुद्वारं, सोतद्वारं, घाणद्वारं, जिह्वाद्वारं, कायद्वारं, मनोद्वार, ञ्चेति छब्बिधानि भवन्ति।

द्वार संग्रह से द्वार, रूपादि गोचरों के घुसने निकलने के स्थान चक्षुद्वार, श्रोत द्वार, घ्राणद्वार, जिह्वाद्वार, काय द्वार, मनो द्वारः—यह छः प्रकार के हैं।

१३९—तत्थ चक्खुमेव चक्खुद्वारं, तथा सोतादयो सोतद्वारादीनि।

उन छः द्वारों में से चक्षु प्रसाद निर्मल—चक्षु ही द्वार, हैं। इसी तरह, श्रोत प्रसाद श्रोत द्वारादि हैं। घ्राणद्वार, जिह्वाद्वार कायद्वार भी समझ लेना चाहिये।

१४०—मनोद्वारं पन भवङ्गन्ति पवुच्चति।

उन्नीस भवंग चित्तों को मनोद्वार कहते हैं

१४१—तत्थ पञ्चद्वारा, वज्जन, चक्खुविञ्ञान, सम्पतिच्छन्न, सन्तीरण, वोट्ठब्बन, कामावचरजवन. तदारमणवसेन छचत्तालीस चित्तानि चक्खुद्वारे यथारहं उप्पज्जन्ति। तथा

पञ्चद्वारावज्जन, सोतञ्ञाणादि-वसेन सोतद्वारादीसुपि छचत्तालीसेव भवन्तीति सब्बथापि चतुप्पञ्ञास चित्तानि कामावचरानेव ।

उन छ द्वारों में से चक्षु द्वार में पञ्च द्वारावज्जन, चक्षुविज्ञान—द्विक, सम्प्रतीच्छन्न द्विक, सन्तीर्ण, वोट्ठवन, उनतीस कामावचर जवन आठ महा विपाक भेद से छियालीस चित्त यथोचित होते हैं। ऐसा श्रोत द्वारादि में भी पंच द्वारा वर्जन, श्रोत विज्ञानादिक भेद से छियालीस चित्त हीं हैं। इस तरह, सब प्रकार से पाँच द्वारो में चौवन ५४ चित्त कामावचर ही हैं।

१४२—मनोद्वारे पन मनोद्वारावज्जन, पञ्चपञ्चास जवन, तदारमण, वसेन सत्तसट्ठि चित्तानि भवन्ति ।

मनोद्वार में मनोद्वारा वर्जन, पँचपन जवन तदालम्बन भेद से सरसठ ६७ चित्त होते हैं।

१४३—एकूनवीसति पतिसन्धि, भवङ्ग, चुति, वसेन द्वारविमुत्तानि

प्रतिसन्धि, भवंग, च्युति, भेद से उन्नीस चित्त द्वार विमुक्त हैं।

नोटः— मकान में आदमियों के घुसने और निकलने का दरवाजा है। उसी तरह शरीर में भी रूपादि गोचरों के प्रवेश करने और निकलने का चक्षु आदि द्वार हैं। (नव द्वारो महा वागो। नव नवुति लोभ सहस्सकूपो) यह सब छिद्र द्वार हैं। यहां छिद्र द्वार को न लेकर रूप, शब्द, गन्ध, स्पर्शादि, गोचर इन्हीं को लेने वाले चित्तों के घुसने और निकलने का निमित्त चक्षु आदि को द्वार समझिये। (यह सब चतुर्थ भाग में आवेगा।)

१४४–तेसु पन पञ्चविञ्ञाणानि चेव महग्गतलोकुत्तरजवनानिचेति छत्तिंस यथारह-मेकद्वारिकचित्तानि नाम।

उन छ: द्वारोत्पन्न चित्तों में से पाँच विज्ञान द्विक, छब्बीस महग्गत-लोकोत्तर जवन–इस प्रकार छत्तीस चित्त यथायोग्य एक ही द्वार में होते हैं।

१४५–मनोधातुत्तिकं पन पञ्चद्वारिकं।

पञ्च द्वार वर्जन और दो संप्रतिच्छन्न यह मनोधातु-त्रिक पाँच द्वारो में होता है।

१४६–सुखसन्तीरण, वोट्ठब्बन कामावचर जवनानि छद्वारिक चित्तानि।

सौमनस्य सन्तीर्ण, बोठ्ठब्बन, उनतीस कामावचर जवन, यह इकतीस चित्त छ: द्वारोत्पन्न हैं।

१४७–उपेक्खा-सहग्गत-सन्तीरण-महाविपाकानि छद्वारिकानि चेव द्वारविमुत्तानि च।

उपेक्षा सहगत सन्तीर्ण द्विक और आठ महाबियाक, यह दस कभी छ: द्वारोत्पन्न हैं, कभी मुक्त हैं। जब यह दस सन्तीर्ण कृत्य और तदा-लम्बन कृत्य होता है तब छ: द्वारो में होता है। प्रतिसन्धि, भवंग, च्युति कृत्य होते समय द्वार से मुक्त होता है। (विथि भाग में पूरा भाव मालूम हो जायगा।)

१४८–महग्गतविपाकानि द्वारविमुत्तनेवाति।

पाँच रुप विपाक और चार अरूपविपाक, यह नौ महग्गत विपाक सदा द्वार से मुक्त हैं। इस तरह उनतीस चैतसिक का परमार्थ स्वभावों

को द्वार भेद से इकट्ठा करलेने का तरीका चित्तों से ही उद्धृत किया जाता है।

१४९–एकद्वारिकचित्तानि। पञ्चछद्वारिकानि च।
छद्वारिकविमुत्तानि। विमुत्तानि च सब्बथा।
छत्तिंसति तथा तीणि। एकतिंस यथाक्कमं।
दसधा नवधा चेति। पञ्चधा परिदीपये॥

एक द्वारोत्पन्न चित्त, पाँच और छः द्वारोत्पन्न चित्त, कभी छः द्वारो में होकर कभी छः द्वार से मुक्त चित्त, सदा छः द्वार विमुक्त चित्तो को यथोचित क्रमशः छत्तीस, तीन, इकतीस, दस, और नव इस तरह पाँच प्रकार से बताया गया है।

१५०–आरमणसङ्गहे आरमणानि नाम रूपारमणं, सद्दारमणं, गन्धारमणं, रसारमणं, फोट्ठब्बारमणं, धम्मारमणञ्चेति छब्बिधानि भवन्ति।

आलम्बन संग्रह में, आलम्बनो के गोचर, रूपगोचर, शब्द गोचर, गन्ध गोचर, स्वाद गोचर, स्पर्श गोचर, और धर्म गोचरः— यह छः भेद होते हैं।

१५१–तत्थ रूपमेव रूपारमणं। तथा सद्दादयो सद्दारमणादीनि।

उन छः गोचरों में से रूप ही रूपगोचर हैं। इसके समान शब्द आदि शब्द गोचरादि हैं। शब्दादि के आदि शब्द से गन्ध, स्वाद, स्पर्श, धर्म को ले लीजिये। शब्दालम्बनादि के आदिशब्द से गन्ध विषय, स्वाद विषय, स्पर्श विषय, धर्म विषय, को ले लीजिये।

१५२–धम्मारमणं पन पसाद, सुखुमरूप, चित्त, चेतसिक, निब्बाण, पञ्ञत्तिवसेन छद्धा सङ्गय्हति।

धर्म गोचर पांच प्रसाद, १६ सूक्ष्मरूप, चित्त, चैतसिक, निर्वाण, प्रज्ञप्ति भेद से छः प्रकार सग्र हत हैं। पांच प्रसाद रूप सोलह सूक्ष्म रूप धट्ठा रूप विभाग में आजायगा :

१५३–तत्थ चक्खुद्वारिकचित्तानं सब्बेसम्पि रूपमेव आरमणं, तञ्च पच्चुपन्नं, तथासोतद्वारिकचित्तादीनम्पि सद्दादीनि, तानि च पच्चुपण्णानियेव।

उन छः में चक्षुद्वारोत्पन्न सब छियालीस चित्तों के भी विषय गोचर रूप ही हैं। वह भी प्रत्युत्पन्न ही है। श्रोत द्वारादिकों के भी विषय, गोचर शब्दादि ही हैं। वह भी प्रत्युत्पन्न ही हैं।

१५४–मनोद्वारिक चित्तानं पन छब्बिधम्पि पच्चुप्पन्न, मतीतं अनागतं कालविमुत्तञ्च यथारहमारमणं होति।

मनोद्वारोत्पन्न चित्तों के भी यथोचित प्रत्युत्पन्न भूत, भविष्य, काल विमुक्त छः प्रकार गोचर के हैं।

१५५–द्वारविमुत्तानञ्च पतिसन्धि, भवङ्ग, चुतिसङ्खातं छब्बिधम्पि यथासम्भवं येभूय्येन भवन्तरे छद्वारगहितं पच्चुप्पन्न, मतीतं पञ्ञत्ति भूतं वा कम्म, कम्मनिमित्त, गतिनिमित्त-सम्मतं आरमनं होति।

प्रतिसन्धि, भवंग, च्युति, नामवाले द्वार-विमुक्त चित्तों के छः भेद भी प्रायः भवान्तर में, छः द्वार में होने वाले जवन चित्त में, ही गृहीत प्रत्युत्पन्न भूत, अतीत, प्रज्ञप्तिसम्भूत कर्म, कर्मनिमित्त, गति निमित्त,:— इतने गोचर हैं।

१५६—तेसु चक्खुविञ्ञानादीनि यथाक्कमं रूपादि एकेकारमणानेव

उन छः द्वारोत्पन्न चित्तों में से चक्षुविज्ञानादि द्विक क्रमशः रुपादि गोचर हैं।

१५७—मनोधातुत्तिकं पन रूपादिपञ्चारमणं।

मनोधातु त्तिक के भेद से रुपादि पांच ही गोचर हैं। अर्थात पञ्च द्वारवर्जन चित्त और दो सम्प्रतीच्छन्न चित्तों का गोचर पांच है। रूप, वर्ण रंग, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श।

१५८—सेसानि कामावचरविपाकानि हसन चित्तञ्चेति सब्बयापि कामावचरारमणानेव।

शेष कामावचर-विपाक और हसितोत्पाद यह बारह चित्त सब प्रकार से कामावचर गोचर ही हैं।

१५९—अकुसलानि चेव ञानविप्पयुत्त कामावचर जवनानि चेति लोकुत्तरवज्जित सब्बारमणानि।

बारह अकुशल, आठ ज्ञान विप्रयुक्त कामावचर जवन (चार-कुशल और चर क्रिया) यह बीस चित्त आठ-लोकोत्तर और निर्वाण के अतिरिक्त सब ही गोचर हैं। अर्थात् इन बीस चित्तों का गोचर विना लोकोत्तर निर्वाण के सब ही हैं।

नोट—चक्षु विज्ञान का गोचर रुप-रंग है। श्रोत विज्ञानद्विक का गोचर-शब्द हैं। घ्राण विज्ञान द्विक का गोचर-गन्ध है। जिह्वा विज्ञानद्विक का गोचर-रस है। काय विज्ञान द्विक का गोचर-स्पर्श है।

नोटः—तीन संतीर्ण, आठ महा विपाक, यह ग्यारह विपाक एक हसितोत्पाद क्रिया यही बारह हैं।

१६०—ञानसम्पयुत्तकामावचर कुसलानिचेव पञ्चमज्झान सङ्खातं अभिञ्ञा-कुसलञ्चेति अरहत्तमग्गवज्जित सब्बा-रमणानि।

चार ज्ञान सम्प्रयुक्त कामावचर कुशल, अभिज्ञा नाम लब्ध; पञ्चम ध्यान रुपावचर, कुशल चित्त ऐसा पांच चित्तों का गोचर अर्हत मार्ग और अर्हत फल को छोड़ कर सब ही हैं।

१६१—ञानसम्पयुत्त कामावचर क्रियानिचेव क्रियाभिञ्ञा वोट्ठब्बनञ्चेति सब्बथापि सब्बारमणानि।

चार ज्ञान सम्प्रयुक्त कामावचर क्रिया अभिज्ञानालब्ध, पञ्चम ध्यान-रुपावचर क्रिया मनोद्वारावर्ज्जन (इसका नाम बोठ्ठवन है) ऐसा (छः चित्तों का गोचर सब प्रकार से सब ही है)।

१६२—आरूप्पेसु दुतीयचतुत्थानि महग्गतारमणानि।

बारह अरूप चित्तों में से तीन विज्ञानान्त्यायतन और तीन नैव संज्ञानासज्ञायत्तन:— यह छः चित्त महग्गत गोचर हैं। कुशल विपाक क्रिया भेद से तीन तीन हैं, अत: छः हुए।

१६३—सेसानि महग्गत चित्तानि सब्बानिपि पञ्ञत्तारमणानि।

उन छः चित्तों में से अतिरिक्त इक्कीस महग्गत चित्तों के गोचर सब प्रकार से प्रज्ञप्ति हैं।

१६४—लोकुत्तरचित्तानि निब्बाणारमणानि।

आठ लोकोत्तर चित्तों का गोचर निर्वाण ही है। इस प्रकार, उन चित्त चैतसिक परमार्थ स्वभावों को गोचर के भेद से (संक्षेप से) इकट्ठा कर लेने का तरीका चित्तों से ही उद्धृत किया गया है।

१६५–पञ्चवीसपरित्तम्हि । छच्चित्तानि महग्गते ।
एकवीसति वोहारे । अट्ठ निब्बाणगोचरे ॥
वीसा. नुत्तर. मुत्तम्हि । अग्गमग्ग.फलु.ज्जिते ।
पञ्च सब्बत्थ छच्चेति । सत्तधा तत्थ सङ्गहो ॥

पच्चीस चित्तों का गोचर-काम लौकिक है। छः चित्तों का गोचर महग्गत है। इक्कीस चित्तों का गोचर प्रज्ञप्ति है। आठ चित्तों का गोजर निर्वाण है। पहिला श्लोक आवश्यक गोचरों को बतला देता है। दूसरा अनावश्यक गोचरों को बतला देताहै। बीस चित्त लोकोत्तर से मुक्त औरों में आलम्बन करते हैं। पांच अर्हंत मार्ग और अर्हंतफल को छोड़कर सब में होते हैं। छः चित्त सब गोचरो में होते हैं। दो श्लोकों का भावार्थ पहिले विस्तार से १६४ से १६५ तक लिखा जाचुका है।

१६६–वत्थुसङ्गहे वत्थूनि नाम चक्खु, सोत, घान, जिह्वा, काय हदयवत्थु चेति छब्बिधानि भवन्ति ।

वास्तव्य संग्रह में वास्तव्य, चक्षु वास्तव्य, श्रोत वास्तव्य, घ्राण वास्तव्य, जिह्वा वास्तव्य, कार्य वास्तव्य, हृदय वास्तव्य, यह छः भेद हैं।

१६७–तानि कामलोके सब्बानिपि लब्भन्ति ।

वह छः वस्तु काम लोक में सब उपलब्ध हैं।

१६८–रूपलोके पन घाणादि त्तयं नत्थि ।

रूप लोक में घ्राण, जिह्वा, काय, वस्तु यह तीन नहीं हैं। यह तीन कामभोग के वास्ते हैं। काम विराग भावना से भोगने वाला घ्राण, जिह्वा, काय नहीं हैं। ससम्भार घ्राणादि तो हैं। बुद्ध दर्शन, धर्म श्रवण से क्लेश शुद्धि के लिए चक्षु और श्रोत हैं।

१६९–अरूपलोके पन सब्बानिपि न संविज्जन्ति ।

अरूप लोक में सब छः वस्तु नहीं हैं।

१७०—तत्थ पञ्च विञ्ञाण धातुयो यथाक्कमं एकन्तेन पञ्चपसाद-
वत्थुनि निस्सायेव पवत्तन्ति ।

उनमें से पांच विज्ञान धातु क्रमशः अवश्य पांच प्रसाद वस्तुओं का आश्रित है ।

१७१—पञ्चद्वारावनज्ज, सम्पतिच्छन,-सङ्खाता-पन मनोधातु च हृ-
दयं निस्सायेव पवत्तन्ति ।

पञ्च द्वारावर्जन और दो सम्प्रतीच्छन यह तीन मनोधातु हृदय वास्तव्यको आश्रय लेकर ही होता है ।

१७२—अवसेसा पन मनोविञ्ञाण धातु-सङ्खाता च सन्तीरण, महा
विपाक, पतिघद्वय पथममग्गहसन, रूपावचरवसेन हृदयं
निस्सायेव पवत्तन्ति ।

अवशिष्ट मनोविज्ञान धातु नामवाले तीन सन्तीर्ण, आठ महाविपाक दो द्वेषमूल श्रोतापत्ति मार्ग, हसितोत्पादचित, पन्द्रह रूपावचर चित्तः—भेद से यह तीस चित्त हृदय वास्तव्य को अश्रय लेकर ही होते हैं ।

१७३—अवसेसा कुसला-कुसल-क्रियनुत्तार-वसेन पन निस्साय वा
अनिस्साय वा ।

अवशेष कुशल, अकुशल, क्रिया श्रोतापत्ति मार्ग से शेष सात लोकोत्तर-वश मनोविज्ञान नाम वाले चित्त कभी हृदय वास्तव्य को आश्रित होकर और कभी बिना अश्रय के होते हैं । आठ महाकुशल, चार अरूप-अरूपकुशल, दश अकुशल मनोद्वारावर्जन आठ महा क्रिया, चार अरूप-क्रिय, स्रोतपत्ति मार्ग से अन्य सात लोकोत्तर, यह चालीस चित्त काम लोक और रूप लोक में हृदय वास्तव्य हैं ।

१७४—आरूप विपाक वसेन हृदयं अनिस्सायेवाति ।

चार अरूप विपाक-वश मनोविज्ञान धातु हृदय वास्तव्य बिना आश्रय

के होते हैं। इस तरह, उन चित्त चैतसिक परमार्थ स्वभावों को वास्तव्य: के भेद से (संचेप से) इकट्ठा कर लेने का तरीका चित्तों से ही उद्धृत किया गया है।

१७५—छवत्थुं निस्सिता कामे सत्त रूपे चतुब्बिधा। तिवत्थुं निस्सता रूप्पे। धात्वेका निस्सिता मता।

कामलोक में चक्षुविज्ञान धातु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा, कायविज्ञान धातु, मनो धातु मनोविज्ञान धातु, यह सात धातु छः वास्तव्याश्रय हैं। रूप लोक में चक्षु विज्ञान, श्रोत, मनोधातु, मनोविज्ञानधातु यह चार धातु: वास्तव्याश्रय हैं। अरुप लोक में एक मनोविज्ञान धातु बिना आश्रय जानिये।

१७६—तेचत्तालीस निस्साय। द्वेचत्तालीस जायरे। निस्साय च अनिस्साय। पाका-रुप्पा अनिस्सिता॥

इति अभिधम्मत्थसङ्गहे पकिण्णक सङ्गहविभागोनाम ततीयो परिच्छेदो।

तैंतालीस चित्त आश्रय ही होते हैं। बेयालीस चित्त, कभी आश्रय: कभी बिना अश्रय के होते हैं। चार अरुप-विपाक चित्त आश्रय रहित होते हैं।

इति अभिधर्मार्थ संग्रह ग्रन्थ में प्रकीर्णक संग्रह नामक

तृतीय भाग समाप्त

वीथिसङ्गह विभाग

चतुत्त्थ परिच्छेद ॥

१७७—चित्तुप्पादान मिच्चेवं । कत्वा सङ्गह.मुत्तरं । भूमि, पुग्गल-भेदेन । पुव्वा. पर;नियामितं । पवत्ति-सङ्गहं नाम । पति-सन्धि- पवत्तियं । पवक्खामि समासेन । यथा सम्भवतो कथं ।

इस तरह, चित्त चैतसिकों के उत्तम संग्रह को कर चुकने पर, भूमि-लोक-पुदगल भेद से पूर्बापर-अगला पिछला चित्तावलीयों से नियमित प्रतिसन्धि, और प्रवृत्ति-आधुनिक के समय उत्पन्न संहार को संक्षेप से संग्रह करने वाले प्रवृत्ति संग्रह को संक्षेप से यथासम्भव कहूँ । कैसे ?

१७८—छवत्थूनि, छद्वारानि, छविञ्ञानानि, छवीथियो, छ धा विसयप्पवत्ति,-चेति वीथिसङ्गहे छ छक्कानि वेदितब्बानि ।

वस्तु-स्थान, छः द्वार, छः गोचर, छः विज्ञान, छः वीथि, छः विषय प्रवृत्ति, ऐसा वीथि संग्रह में छः छक्के हैं ।

१७९—वीथिमुत्तानं पन कम्म, कम्मनिमित्त, गतिनिमित्त वसेन तिविधा होति विसयप्पवत्ति ।

-वीथि मुक्त चित्तों के विषयप्रवृत होने का विषय तो कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्तवश तीन भेद हैं ।

१८०—तत्थ वत्थुद्वारा. रमणानि पुब्बे वुत्तनयानेव ।

उन छः छक्कों में से वस्तु-स्थान, द्वार, आलम्बनः—यह तीन तृतीय प्रकीर्ण के संग्रह में कह चुके हैं।

१८१—चक्खुविञ्ञानं, सोतविञ्ञानं, घानविञ्ञानं, जिह्वाविञ्ञानं, कायविञ्ञानं, मनोविञ्ञान, ञ्चेति छ विञ्ञानानि।

चक्षुविज्ञान, श्रोतविज्ञान, घ्रानविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान, मनः विज्ञान, इस प्रकार छः विज्ञान हैं।

१८२—छ वीथियो पन चक्खुद्वारवीथि, सोतद्वारवीथि, घानद्वारवीथि, जिह्वाद्वारवीथि, कायद्वारवीथि, मनोद्वारवीथि. चेति द्वार वसेन वा। चक्खुविञ्ञानवीथि, सोतविञ्ञानवीथि, घानविञ्ञानवीथि, जिह्वाविञ्ञानवीथि, कायविञ्ञानवीथि, मनोविञ्ञानवीथि, चेति विञ्ञान वसेन वा द्वारप्पवत्ता चित्तप्पवत्तियो योजेतब्बा।

वीथि, द्वारवश चक्षुद्वारवीथि, श्रोतद्वारवीथि, घ्राणद्वारवीथि, जिह्वाद्वारवीथि, कायद्वारवीथि, मनःद्वारवीथि, ऐसा द्वारोत्पन्न चित्तावली को चाहिये। और विज्ञान-वश भी चक्षुविज्ञानवीथि, श्रोतविज्ञानवीथि, घ्रानविज्ञानवीथि, जिह्वाविज्ञानवीथि, कायविज्ञावीथि, मनःविज्ञानवीथि, इस प्रकार द्वारोत्पन्न चित्तावली को जोड़ना चहिऐ।

१८३—अतिमहन्तं. महन्तं, परित्तं, अतिपरत्तं चेति पञ्चद्वारे। मनोद्वारे पन विभूत.- मविभूतञ्चेतिछ धा विसयप्पवत्ति वेदितब्बा।

अत्यन्त बड़ा प्रसिद्ध गोचर वाला 'अतिमहन्तारमणवीथि', बड़ा प्रसिद्ध गोचर 'महन्तारमण वाला वीथि', छोटा गोचर परित्तारमणवाला-वीथि, अति छोटा गोचर अतिपरित्तारमणवालावीथि ऐसा पांचद्वार में चार भेदः— विषयप्रवृत्ति, मन.द्वार में प्रादुर्भाव, अप्रादुर्भाव-वश द्विविध विषयप्रवृत्तिः इस प्रकार छः किस्म का विषयप्रवृत्त जान लो।

१८४—कथं उप्पाद,ठिति, भङ्गवसेन खणत्तयं एकचित्तक्खणं नाम।
कैसे? उत्पत्ति, स्थिथि, भङ्ग-वश तीन क्षण एक चित्त के क्षण हैं !

१८५—तानि पन सत्तरस चित्तक्खणानि रूपधम्मान,मायू ।
तादृश सत्तरह चित्तों के क्षण बाईस रूपो के आयु हैं। अट्ठाईस रूपों में से दो विज्ञप्ति रूव औ ४ लक्षण रूप को छोड़िये ।

१८६-एक चित्तक्खणातीतानिं वा बहु चित्तक्खणातीतानि वा ठितिप्पत्तानेव पञ्चा.रमणानि पञ्चद्वारे आबाध. (अवाथ) मागच्छन्ति । तस्मा यदि एक चित्तक्खणातीतकं रूपारमणं चक्खुस्स आबाध. मागच्छति ततो द्विक्खत्तुं भवङ्गे चलिते भवङ्गसोतं वोच्छिन्दित्वा तमेव रूपा रमणं आवज्जन्तं पञ्चद्वारा-वज्जनचित्तं उप्पज्जित्वा निरुज्झति ।
एक चित्त के क्षण को बीते हुए बहुत चित्तों के क्षण को बीते हुए स्थित काल पहुँच कर पांच गोचर चक्षु .आदि पांच द्वार पर लग जाते हैं। अत: यदि एक चित्त के क्षण को बीता हुआ रूप आँख को लग जाता है। उसके बाद दो बार भवंग चलित हो, तो भवंग श्रोत को काट कर उस रूप को विचारने वाला पञ्चद्वारावर्जन चित्त हो कर निरुद्ध होता है।

१८७—ततो तस्सा. नन्तरं तमेव रूपं पस्सन्तं चक्खुविञ्ञानं सम्पतिच्छन्तं सम्पतिच्छन चित्तं, सन्तीरयमानं सन्तीरणचित्तं, ववत्थपेन्तं वोट्ठब्बनचित्त, ञ्चेति यथाक्कमं उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति । ततो परं एकूनत्तिंसाय कामावचर जवनेसु यंकिञ्चि लद्धप्पच्चयं येभूय्येन सत्तक्खत्तुं जवनाति जवना.नुबन्धानिच द्वे तदारमणपाकानि यथारहं पवत्तन्ति । ततो परं भवङ्गपातो ।

उसके पश्चात उसके आवर्जन के अनन्तर उसी रूप को देखने वाला चक्षुविज्ञान, ग्रहण करने वाला सम्प्रतिच्छन, जाँचने वाला सन्तीर्ण, याद करने वाला वोट्ठबन चित्त, ये जो चित्त क्रमशः होकर निरुद्ध होते हैं। उसके बाद उन तीस कामावचर जवनों में से कोई न कोई जवन लब्ध कारणवश अकसर सात बार तेज़ वेग से होता है। जवनानुगत दो तदारमण विपाक चित्त यथोचित होते हैं। उसके पश्चात भवङ्ग चित्त होता है।

१८८–एत्तावता चुद्दस वीथिचित्तुप्पादा, द्वेभवङ्ग चलनानि, पुब्बेवा. तीतक मेक-चित्तक्खणन्ति कत्वा सत्तरस चित्त-क्खणानि परिपूरेन्ति। ततो परं निरुज्झति। आरमण. मेतं अति महन्तं नाम गोचरं।

इतने चित्तों के क्रम से चौदह वीथि चित्त, दो भवङ्ग चलन, पहले से ही बीता हुआ एक चित्तक्षण, ऐसा एकट्ठा संग्रह करके सत्रह चित्तों के क्षण पूरा होते हैं। इस के बाद निरोध होता है। यह अति महन्त नामक गोचर है।

१८६–यावतदा रमणुप्पादा पन अप्पहोन्ता. तीतक. मावाध. मागतं आमरणं महन्तं नाम। तत्थ जवना.वसाने भवङ्ग पातीव होति। नत्थि तदारमणुप्पादो।

दो तदा रमणों के होने तक न पहुँच कर बीता हुआ पञ्चद्वार और मनः द्वार में लब्धागत गोचर महन्त है। उस महन्त में जवन के अन्त में भवङ्ग चित्त ही होता है। तदारमण का सम्भव नहीं।

१९०–याव जवनुप्पादापि अप्पहोन्ता. तीतक.मावाध. मागतं आरमणं परित्तं नाम। तत्थ जवनम्पि अनुप्पज्जित्वा-द्वित्तिक्खत्तुं वोट्ठब्बन.मेव पवत्तति। ततो परं भवङ्ग पातोव होति।

जवन चित्तों के होने तक न पहुँच कर बीता हुआ चक्षु आदि पञ्च-द्वार और मनःद्वार में आविर्भूत गोचर परित्तारमण है। उस परित्त में जवन भी न होकर दो तीन वोट्ठब्बन होता है। उसके बाद भवङ्ग चित्त ही तब होता है।

१६१-याव वोट्ठब्बनुप्पादाय पन अप्पहोन्ता. तीतक. मावाध. मागतं निरोधा.सन्न.मारमणं अतिपरित्तं नाम। तत्थ भवङ्ग चलन.मेव होति। नत्थि वीथिचित्तुप्पादो।

वोट्ठब्बन तक न हो सकनेवाला बीता हुआ लगनागत लुप्तासन्न गोचर अतिपरित्त है। उसमें भवङ्ग चलन ही है। वीथिचित्तों की उत्पत्ति नहीं।

१६२-इच्चेवं चक्खुद्वारे। तथा सोतद्वारा दीसुचेति सब्बत्थापि पञ्चद्वारे तदारमण, जवन, वोट्ठब्बन, मोघवार सङ्खातानं चतुन्नं वारानं यथक्कमं आरमणभूता विसयप्पवत्ति चतुधा वेदितब्बा।

ऐसा उक्त नियम से चक्षुद्वार में होता है। इसके समान श्रोतादि द्वारों में भी होते हैं। ऐसा सब प्रकार से पांच द्वार में तदारमण, जवन वोट्ठब्बन, मोघवार नामवाले चार वरों के क्रमानुसार गोचर होता हुआ विषय- गोचर के उत्पत्ति भेद चार जानिए।

१६३-वीथि चित्तानि सत्तेव। चित्तुप्पादा चतुद्दस। चतुप्पञ्ञा सवित्थारा। पञ्चद्वार यथारहं।

अयमेत्थ पञ्चद्वारे वीथिचित्तप्पवत्तिनयो।

पांच द्वारों में वीथिचित्त, यथायोग्य कृत्य- वश सात हैं चित्तुप्पत्ति-वश चौदह हैं। विस्तार-वश चौवन हैं। यह उस प्रवृत्ति संग्रह कामा-वचर जवनवार में पांच द्वार पर उत्पन्न चित्तों का जाननविधि है।

१६४—मनोद्वारेपन यदि विभूत मारम्णं आबाध मा गच्छति। ततो परं भवंग चलन-मनोद्वारावज्जन-जवना वसाने तदारम्भण पाकानि पवत्तन्ति। ततो परं भवंग पातो।

पञ्चद्वार के पश्चात् सिर्फ मनोद्वार में आवीर्भाव गोचर यदि लग जाय। इसके बाद दो भवङ्गचलन, एक मनौद्वारा वर्ज्जन, सात जवनों के अन्त में दो तदारमण होते हैं। इसके बाद भवङ्ग चित्त होता है।

१६५—अविभूतेपना रमणेजवना वसने भवंग पातोव होति नत्थि तदारम्मणुप्पादोति

विशेषकर अविख्यात गोचर में जवन के अन्त में भवङ्ग पतन होता है। तदारमण की उत्पत्ति नहीं।

कामजवनुत्पत्ति का परित्तजवनवार समाप्त।

१६६—वीथि चित्तानि तीनेव। चित्तुप्पादा दसे रिता। वित्थारेन पने. त्थेक.। चत्तालस विभावये।

अयमेत्थ परित्त जवनवारो।

इस मनोद्वार में वीथिचित्तों को कृत्य-वश तीन ही कह दिया है। चित्तोत्पत्ति-वश दश कह दिया है। विस्तारवश एकतालीस प्रकाशित है। यह प्रवृत्ति संग्रह में कामजवनवार है।

१६७—अप्पनाजवनवारे पन विभूना-विभूत भेदो नत्थि। तथा तदारम्मणुप्पादोच।

अप्पनाजवन के उत्पत्ति चित्तक्रम में प्रादुर्भावाऽप्रादुर्भावभेद नहीं विभूत-प्रादुर्भाव ही है।

१६८—तत्थ हिञानसम्पयुत्त कामावचर जवान महन्नं अञ्ञत-रस्मिं परिकम्मो पचारा नुलोम गोत्रभू। नामेन चतुक्खत्तं

तिक्खत्तु मेववा यथाक्कमं उप्पज्जित्वा निरुद्धानन्तरमेव यथारह. चतुत्थं पञ्चमंवा छब्बीसतिया महग्गत लोकुत्तर जवनेसु यथाभिनीहार-वसने यंकिञ्चि जवनं अप्पना वीथि-मोतरति। ततो परं अप्पनावसाने भवंग पातोव होति।

उस अप्पनाजवनवार में आठ ज्ञान सम्प्रयुक्त कामजवनों में से जो कोई जवन परिकर्म, उपचार, अनुलोम, गोत्रभू-नाम से चार बार या तीन बार ही क्रमशः होकर निरोध के अनन्तर ही मन्दबुद्धि और तीक्ष्ण बुद्धि के अनुसार चार बार या पाँच बार उत्पन्न छब्बीस महग्गत लोकोत्तर जवनों में से कोई जवन परिकर्म चित्त को गोचरारोपना,वशअ प्पना-अर्पना के मार्ग पर पहुँच जाता है। उसके बाद अप्पना के अन्त में भवङ्ग चित्त होता है:

१६६–तत्थ सोभनस्स सहगत जवना. नन्तरं अप्पनापि सोमनस्स-सहगताव पाति कङ्खितब्बा। उपेक्खासहगत जवना. नन्तरं उपेक्खासहगता.व। तत्थ कुसल जवना.नन्तरं कुसल जवनञ्चेव हट्ठिमञ्च फलत्तय.मप्पेति। क्रियजवनं अरहत्तफलञ्चाति।

उस अप्पना जवन वार में सौमनस्य सहगत कुशल प्रथम द्विक, और क्रिया प्रथम द्विक, इन दोनों द्विकों के बाद अप्पना भी वही होना चाहिये। जो सौमनस्य सहगत कुशल और क्रिया हों। उपेक्षा सहगत कुशल तृतीय द्विक, और क्रिया तृतीय द्विक, इन दोनों के बाद भी वह। चाहिये। जो उपेक्षा कुशल और क्रिया हों। वेदनानुरूप उन अप्पनाओं में से चार ज्ञान सम्प्रयुक्त कुशल जवनों के बाद कुशल अप्पना, और स्रोतापत्तिफल, सकृदागामिफल, अनागामिफल, यह तीन फल स्थित होती है। क्रिया ज्ञान सम्प्रयुक्त चार जवनों के बाद क्रिया अप्पना और अर्हंत फल स्थित होती है। अप्पनाजवनवार समाप्त।

२००–द्वत्तिंस सुख-पुञ्ञम्हा । द्वादसो-पेक्खकापरं । सुखित क्रिया तोअठ । छ सम्भोन्ति उपेक्खका ।

सौमनस्य सहगत कुशल प्रथम द्विक के बाद बत्तीस (पञ्चम ध्यान को छोड़कर चार रूप कुशल जवन, सोलह मार्ग सौमनस्य जवन, बारह फल सौमनस्य जवन, ३२) अप्पना होते हैं। उपेक्षा सहगत कामकुशल तृतीय द्विक के बाद बारह (एक रूप पञ्चम ध्यान, चार अरूप कुशल, चार मार्ग उपेक्षा, अर्हत फल के अलावा तीन फल उपेक्षा,) सौमनस्य सहगत काम क्रिया प्रथम द्विक के बाद आठ (पञ्चम ध्यान के सिवा चार रूप क्रिया, चार अरूप क्रिया, एक उपेक्षा अर्हंत फल) उपेक्षा काम क्रिया तृतीय द्विक के बाद छः (एक पञ्चम ध्यान रूप क्रिय, चार अरूप क्रिया, एक उपेक्षा अर्हंत फल) अप्पना होते हैं।

२०१–पुथुज्जनानसेक्खानं । कामपुञ्ञतिहेतुतो । तिहेतुकाम क्रियतो । वितरागान.मप्पना ।

पृथग्जनः और शैक्षों के (तिहेतुक पृथग्जन, तथा स्रोतापत्ति फलस्थ, सकृदागामिफलस्थ, अनागागामिफलस्थ, ये जो तीन हैं, इन्हीं को सेक्ख-शैक्ष, कहते हैं) चार तृहेतुक काम कुशल के बाद अप्पना जवन होते हैं। विगत-राग अर्हंतों के चार तृहेतुक काम क्रिया के बाद अप्पना जवन होते हैं। यह दूसरा श्लोक पहला श्लोक को ही पुद्गल के साथ मिलकर प्रकाशन करता है। अतः इसमें संख्या नहीं लगाया जाता। यदि प्रथम श्लोक के पूर्वार्द्ध से मिलें तो पृथग्जन और शैक्षों के तिहेतुक चार काम कुशल पश्चात् चौंतालीस अप्पनाजवन होते हैं। ३२+१२–४४। वीतराग अर्हन्तों के तिहेतुक चार काम क्रिया के बाद अपरार्द्ध के अनुसार मिलावें तो चौदह अप्पना जवन होते हैं। ८+६=१४ ऐसा

मिला लेना चाहिये। यह इस प्रवृत्ति संग्रह में मनोद्वार पर वीथिचित्तों का उत्पत्ति क्रम है।

२०२–सब्बथापि पनेत्थ अनिट्ठे आरमणे अकुसल विपाकानेव पञ्चविञ्ञान, सम्पतिच्छन, सन्तीरण, यदारमणानि।

उस पञ्चद्वार और मनःद्वार में सब प्रकार से भी अनिष्ट गोचर में अकुशल विपाक पांच विज्ञान, (चक्षु विज्ञानादि) सम्प्रतिच्छन, सन्तीर्ण तदारमण होते हैं। (सात अहेतुक विपाक चित्त से ही लिया जाता है।)

२०३–इट्ठे कुसल विपाकानि।

मध्यम-इष्टानिष्ठ-गोचर में कुशल विपाक पांच विज्ञान, तदारमण होते हैं। (आठ अहेतुक विपाक चित्त से।)

२०४–अति इट्ठे पन सोमनस्स सहगतानेव सन्तीरण तदा-रमणानि।

अति इष्ट गोचर में सौमनस्य सहगत ही सन्तीरण, तदारमण होते हैं।

२०५–तत्थापि सोमनस्स सहगत क्रिया जवना. वसाने सोम नस्स सहगतानेव तदरमणानि भवन्ति।

उन तदारमणों में से भी सौमनस्य सहगत क्रियजवन के अन्त में सौमनस्य सहगत ही तदारमण होते हैं।

२०६–उपेक्खा सहगत क्रिय जवना. वसाने च उपेक्खा सह-गतानेव होन्ति।

उपेक्षा सहगत क्रियजवन के अन्त में उपेक्षा सहगत तदारमण ही होता है।

२०७–दोमनस्स सहगत जवना.वसाने च पन तदारमणानि चेव भवङ्गानि च उपेक्खा सहगतानेव भवन्ति। तस्मा यदि सोमनस्स पतिसन्धिकस्स दोमनस्स सहगतजवना. वसाने तदारमण सम्भवो नत्थि। तदायंकिञ्च परिचित-पुब्बं परित्तारमण. मारम्भ उपेक्खासहगत सन्तीरणं उप्पज्जति। त.मनन्तरित्वा भवङ्ग पातोव होतीति वदन्ति आचरिया।

दौर्मनस्य जवन के अन्त में तदारमण, और भवङ्ग; उपेक्षा सहगत ही होते हैं। अतः यदि सौमनस्य प्रतिसन्धि वाले के दौर्मनस्यजवन के अव-सान में तदारमण का सम्भव न हो। उस समय किञ्चित् पूर्व परिचित कामगोचर को लेकर उपेक्षा सहगत सन्तीर्ण होता है। उसी उपेक्षा सह-गत सन्तीर्ण आगान्तुक भवङ्ग को अनन्तर निमित्त करके सौमनस्य भवङ्ग का पतन होता है। ऐसा महामधर्मरक्षिताचार्य कहे हैं।

२०८–तथा कामावचर जवना. वसाने कामावचर सत्तानं कामा वचर धम्नेस्वेव आमरण भूतेसु तदारमणं इच्छन्तीति।

उसी तरह कामजवनों के अन्त में कामसत्त्वों के गोचरभूत काम धर्मों में ही तदारमण मनाते हैं। इति॥

२०९–कामेजवन–सत्ता.ल। म्बनानं नियमेसति। विभूतेति महन्तेच। तदारमण मीरितं। अय.मेत्थ तदारमण नियमो त

कामलोक में उत्पन्न जवन, सत्त्व, गोचरों से नियमित किये जाने से प्रादुर्भावोचर और अति महन्त गोचरों में तदारमण कथित है। यह प्रवृत्ति संग्रह में तदारमण का निश्चय है।

२१०–जवनेसु च परित्त जवन वीथियं कामावचर जवनानि। सत्तक्खत्तु छक्खत्तुमेव वाजवन्ति।

जवनों में से काम जवन वीथि में क्रम से कामावचर जवनें सात बार या छः बार होते हैं।

२११–मन्दप्पवत्तियं पन मरण कालादि सु पञ्चवारमेव।

विशेष से मन्द होते समय मरणासन्नादि कालों में पाँच बार ही होते हैं।

२१२–भगवतो पन यमक-पातिहारिय-कालादीसु लहुकप्पवत्तियं चत्तारि पञ्चवा पञ्चवेक्खण चित्तानि भवन्तीतिपिवदन्ति।

इसके अलावा भगवान बुद्ध के यमक प्रतिहारियादि (जोड़ा २ ऋद्धि देखलानादि) कालों में शीघ्रता होने पर चार बार या पाँच बार भी विचार स्रोत जवन चित्त होते हैं। ऐसा भी कहतें हैं।

२१३–आदिकम्मिकस्स पन पथमकप्पनायं महग्गत जवनानि अभिञ्ञा जवनानि च सब्बदापि एकवारमेवजवन्ति। ततो परं भवङ्गपातो।

प्रारम्भ योगाभ्यास वाले के पहला अप्पना मार्ग पर महग्गत जवन, और अभिज्ञान जवन सर्वदा एक बार होते हैं। उसके बाद भवङ्ग है।

२१४–चत्तारो पन मग्गुप्पादा एक-चित्तक्खणिका। ततो परं द्वे तीनि फलचित्तानि यथारहं उप्पज्जन्ति। ततो परं भवङ्ग पातो।

स्रोतापत्ति आदि चार मार्ग चित्त एक बार होते हैं। उसके बाद दो याता तीन बार फलचित्त मन्द, और तीक्ष्ण बुद्धि वालों के अनुसार होते हैं। उस के बाद भवङ्ग चित्त होता है।

२१५–निरोध समापत्तिकाले द्विक्खत्तुं चतुत्थारुप्प जवनंजवति

ततो परं निरोधं फुसति ।

निरोध समाप्ति के समय दो बार नैवसंज्ञानासंज्ञायतन कुशल और क्रियजवनचित्त होता है । उसके बाद चित्त चैतसिक तथा चित्त के कारण उत्पन्न रूपों का निरोध होता है ।

२१६–वुट्ठान काले च अनागामि फलं वा यथारह. अरहत्तफलंवा यथारह मेकवारं उप्पाजित्वा निरुद्धे भवङ्गपातोवहोति ।

निरोध समापत्ति से उठते समय भी अनागामि और अर्हन्तों के अनुसार अनागामिफल और अर्हतफल चित्त होकर दोनों फल चित्तों से विगत होने के बाद भवङ्ग चित्त होता है ।

२१७–सब्बत्थापि समापत्ति वीथियं भवङ्ग सोतोविय वीथिनियमो नत्थीतिकत्वा बहूनिपि लब्भन्तीति।

सब ही ध्यान समापत्ति, और फल समाप्ति, वीथि में भवंग स्रोत की तरह वीथि चित्तों का गननसंख्या नहीं । ऐसा करके अनेक जवनचित्त उपलब्ध है । इति ॥

२१८–सत्तक्खत्तुं परित्तानि । मग्गाभिञ्ञा सकिं मता । अवसेसानि लब्भन्ति । जवनानि बहूनिपि । अयमेत्थ जवन नियमो ।

कामजवनों सात बार, मार्गजवन, और अभिज्ञान जवनों को एक बार जान लो । इन्हीं से अन्य जवनों को अनेक वार लब्ध जान लो । यह इस प्रवृत्ति संग्रह में जवनों का निश्चय है ।

२१९–द्वुहेतुकान. महेतुकानञ्च पने.त्थक्रिय जवनानिचेव अप्पनाजवनानिच न लब्भन्ति ।

इन जवन चित्तों में से द्विक हेतुक और अहेतुक वालों में क्रियजवन,

और अप्पनाजवन भी उपलब्ध नहीं हैं।

२२०–तथाञान सम्पयुत्त विपाकानि च सुगतियं।

सुगतिभूमि-लोक में उत्पन्न उन द्विहेतुक, और अहेतुक वालों में ज्ञान-सम्प्रयुक्त-विपाक चित्तों को भी पहला जैसा हैं।

२२१–दुग्गतियं पन ञान विप्पयुत्तानि च महाविपाकानि न लब्भन्ति।

दुर्गतिभूमि-लोक में उत्पन्न हुए उन्हीं में ज्ञानविप्रयुक्त-विपाक चित्तों को भी पहले के समान लब्ध नहीं।

२२२–तिहेतु केसुच खीणा सवानं कुसला-कुसल जवनानि न लब्भन्ति।

तृहेतुक वालों में से भी अर्हन्तों में कुशल और अकुशल जवनों को लब्ध नहीं।

२२३–तथा सेक्ख पुथुज्जनानं क्रिय जवनानि।

अर्हन्तों से सिवा सात शैक्ष और तृहेतुक पृथग्जनों को प्रथम जैसा लब्ध नहीं।

२२४–दिट्ठिगत सम्पयुत्त-विचिकिच्छा जवनानि च सेक्कानं।

शैक्षों में दृष्टिसम्प्रयुक्त और विचिकित्साजवनों को उपलब्ध नहीं।

२२५–अनागामि पुग्गलानं पन पतिघ जवनानि च न लब्भन्ति।

अनागामियों में दौर्मनस्यजवनों को लब्ध नहीं।

२२६–लोकुत्तर-जवनानि च यथारहं अरियानमेव समुप्पज्जन्तीति।

लोकोत्तर जवन चित्त स्रोतापन्नादि आर्यों में ही यथोचित प्रत्येक

प्रत्येक लब्ध होते हैं।

२२७–असेक्खानं चतुचत्ता लीस सेक्खान. मुद्दिसे छप्पञ्ञासा वसेसानं। चतुप्पञ्ञास सम्भवा।
अयमेत्थ पुग्गल भेदो ॥

अर्हन्तो के चित्तों को, पैंतालीस, इन के अतरिक्त सातों शैक्ष के चित्तों को सम्भवानुसार छप्पन, शेष चार पृथग्जनों के चित्तों को सम्भवानुसार चौव्रन, कहिये या बताइये।

यह पवत्ति संग्रह में पुद्गलों से चित्तों का विभाग है।

२२८–कामवचर भूमियं पनेतानि सब्बानिपि वीथिचित्तानि यथारह. मुपलब्भन्ति।

ग्यारह कामलोक में सब वीथि चित्तों को यथायोग्य लब्ध हैं। चार अपाय लोक, सात काम सुगति लोक, ४+७=११

२२९–रूपावचर भूमियं पतिघजवन तदारमण, वज्जितानि।

असंज्ञ सत्व के अतिरिक्त पन्द्रह रूपलोक में दौर्मनस्य जवन, तदारमण वर्जित चौंसठ वीथि चित्तों को लब्ध है।

२३०–अरूपावचर भूमियं पथममग्ग रूपावचर हसन हेट्ठिमा. रुप्प-वज्जितानि च लब्भन्ति।

अरूप लोक में स्रोतापत्ति मार्ग, पन्द्रह रूपावचर चित्त, हसितुप्पाद चित्त, नीचे नीचे का अरूप चित्त वर्जित ४२ वीथि चित्त लब्ध हैं।

२३१–सब्बथापि च तं तं पसाद रहितानं तंतं द्वारिक वीथि चित्तानि न लब्भन्तेव।

सब लोक में चक्षु आदि उन उन प्रसाद रहित वालों में उन उन द्वार में होने वाले वीथि चित्तों को लब्ध नहीं है।

२३२–असञ्ञ सत्तानं पन सब्बथापि चित्तप्पत्ति नत्थेवाति।

असंज्ञ सत्त्वों में सब प्रकार से चित्त प्रवृत्ति नहीं।

२३३–असीति वीथि चित्तानि। कामे रूपे यथारहं। चतुस्सट्ठि तथारूपे। द्वे-चत्तालीस लब्भरे। अयमेत्थ भूमिविभागो।

ग्यारह काम लोक में अस्सी, रूप लोक में चौंसठ, अरूप लोक में ब्यालीस, वीथिचित्तों को यथोचित लब्ध हैं। यह इस पवत्ति संग्रह में भूमि-लोक विभाग है।

२३४–इच्चेवं छ द्वारिक चित्तप्पवत्ति यथासम्भवं भवङ्गन्तरिता यावतायुक· मब्बोच्छिन्ना पवत्तति।

इति अभिधम्मत्थ सङ्गहे वीथिसङ्गह विभागोनाम चतुत्थो परिच्छेदो॥

इस प्रकार से छः द्वारों में उत्पन्न चित्तों का प्रवृत्ति क्रम सम्भवानुसार भवङ्गान्तरित होकर जीवित काल पर्यन्त निरन्तर होता है।

अभिधर्मार्थ संग्रह में वीथि चित्तों को विभाग करने वाले चतुर्थ परिच्छेद इति समाप्त।

वीथिमुत्तसङ्गह विभाग

पञ्चम परिच्छेद ॥

२३५–वीथिचित्त- वसेनेवं । पवत्तिय. मुदीरितो । पवत्ति सङ्गहो नाम । सन्धियं दानि वुच्चति ।

ऐसे कथित विधि से वर्तमान काल में प्रवृत्ति सँग्रह नामक विषय को वीथि चित्त-वश कह चुका है । अब प्रतिसन्धि, (दीपकालंकार, उपलक्षण न्याय से भवङ्ग और च्युति काल को भी ले सकता है) विषय में प्रवृत्ति सँग्रह को वीथिमुक्त चित्त-वश कहूँगा ।

२३६–चतस्सो भूमियो, चतुब्बिधा पतिसन्धि, चत्तारि कम्मानि चतुधा मरणुप्पत्ति चेति ।
वथिमुत्त सङ्गहे चित्तारि चतुक्कानि वेदि तब्बानि ॥

चार लोक, चतुर्विध प्रतिसन्धि, चार कर्म, चतुर्विधमरणुत्पत्ति, वीथि मुक्त सँग्रह में चार चपुष्क जान लो ।

२३७–तत्थ अपाय भूमि, काम सुगति भूमि, रूपावचर भूमि, अरूपावचर भूमि, चेति चतस्सो भूमियोनाम ।

उन चार चतुष्कों में से अपाय लोक, काम सुगति-लोक, रूप-लोक अरूपलोक, ऐसा चार लोक हैं ।

२३८–तासु निरयो· तिरच्छानयानि, पेत्ति विसयो, असुरकायो, चेति अपायभूमि चतुब्बिधा होति ।

उन चार भूमि-लोकों में से अपाय भूमि-लोक, नरक, तिर्यक, (यह

तो पृथक लोक नहीं तिर्यंक जाति को ही लीजिये।) प्रेत, असुरकाय, लोक ऐसा चार हैं।

२३९—मनुस्सा, चातु महाराजिका, तावतिंसा, यामा, तुसिता, निम्मानरति, परनिम्मित वसवत्ती, चेति काम सुगति भूमि सत्तविधा होति।

मनुष्य लोक, चातुर्महाराजिक०, त्रयस्त्रिंश०, यामा०, तुषित०, निर्म्माणरति०, परनिर्मित-वशवर्तिलोक, ऐसा कामसुगहि लोक, सात हैं।

२४०—सापना, यमेकादस-विधापि कामावचर भूम्चिचेव सङ्खं गच्छति।

ग्यारह प्रकार के वह लोक कामावचर लोक नाम से सँग्रहित है। चार अपाय और सात कामसुगति; ४+७=११

२४१—ब्रह्म पारिसज्जा, ब्रह्मपुरोहिता, महाब्रह्मा, चेति पथमज्झान भूमि।

ब्रह्म पारिसज्जालोक (ब्रह्मकायिक भी कहीं कहीं है।) ब्रह्मपुरोहित, महाब्रह्मलोक, यह तीन प्रथम ध्यान लोक है।

२४२—परित्ताभा, अप्पमाणाभा, आभस्सरा, चेति दुतीयज्झान भूमि।

परित्ताभा०, अप्रमाणाभा०, आभस्वरलोक, यह तीन द्वितीय ध्यान लक है।

२४३—परित्तासुभा, अप्पमाणसुभा, सुभकिण्णा, चेति ततीयज्झान भूमि।

परित्तशुभा०, अप्रमाणशुभा०, शुभकृत्स्नलोक यह तीन तृतीय ध्यान लोक है।

२४४—वेहप्फला, असञ्ञसत्ता, सुद्धावासा,चेति चतुत्थज्झान भूमीति रूपावचर भूमि सोल सविधा होति।

बृहत्फल लोक, असंज्ञ सत्व लोक, पांच शुद्धावास लोक, यह सात चतुर्थ ध्यान लोक है। ऐसा रूप लोक (१६) भेद हैं।

२४५—अविहा, अतप्पा, सुदस्सा, सुदस्सी, अकनिट्ठा चेति, सुद्धा वस भूमि पञ्चविधा होति।

अबृहा लोक, अतपा०, सुदृशा०, सुदर्शी०, अकनिष्ट लोक, ऐसा शुद्धावास लोक पांच हैं।

२४६—आकासानञ्चायतन भूमि, विञ्ञानञ्चायतन भूमि, अकिञ्च ञ्ञायतन भूमि, नेवसञ्ञानासञ्ञायतन भूमि चेति अरूप भूमि चतुब्बिधा होति।

आकाशानन्त्यायतन लोक, विज्ञानानन्त्यायतन०, आकिंचन्यायतन०, नैव संज्ञाना संज्ञायतन लोक, ऐसा अरूप लोक चार भेद हैं।

२४७—पुथुज्जनान लब्भन्ति। सुद्धावासेसु सब्बदा। सोतापन्ना च सकदा। गामिनो चापि पुग्गला।

शुद्धावास ब्रह्मलोक में, अथवा शुद्धावासस्थ ब्रह्माओं में सब प्रकार से चार पृथक जन, तथा स्रोतापन्न, सकृदागामि, पुदगलों को भी लब्ध नहीं। अनागामि मार्गस्थ को लब्ध नहीं।

२४८—अरियानो. पलभन्ति। असञ्ञापाय भूमिसु। सेसठानेसु लब्भन्ति। अरिया. नरियापिच। अयमेत्थ भूमिचतुक्कं।

असंज्ञ सत्वलोक, अपायलोकों में आठ आर्य्यपुदगल लब्ध नहीं। शेष लोकों में आर्य्य, और अनार्य्य दोनों लब्ध हैं। यह इस वीथिमुक्त संग्रह में भूमि चतुष्क है।

२४९—अपायपतिसन्धि, कामसुगति पतिसन्धि, रूपावचर पति-
सन्धि, अरूपावचर पतिसन्धि, चेति चतुब्बिधा पति-
सन्धि नाम।

अपाय प्रति सन्धि, काम सुगति, रूपावचर, अरूपावचर प्रति सन्धि ऐसा चार प्रकार की प्रति सन्धि है।

२५०—तत्थ अकुसल विपाको-पेक्खा-सहगत सन्तीरणं अपाय
भूमियं ओक्कन्तिक्खणे पतिसन्धि हुत्वा ततो परं भवङ्ग
परियोसाने चवनं हुत्वा वोच्छिज्जति अयमेका पाय पति
सन्धि नाम।

उन में से अकुशल विपाक उपेक्षा सहगत सन्तीरण चित्त अपायलोक में पहुँचते क्षण में ही प्रति सन्धि होकर बाद में भवङ्ग आखिर—मरते समय च्युति होकर छिन्न हो जाता है। यह एक अपाय प्रति सन्धि है।

२५१—कुसल विपाको- पेक्खा-सहगत सन्तीरणं पन काम सु-
गतियं मनुस्सानञ्चेव जच्चन्धादीनं भूमस्सितानञ्च विनि-
पातिका. सुरानं पतिसन्धि, भवङ्ग, चुति, वसेन पवत्तन्ति।

कुशल विपाक उपेक्षा सहगत सन्तीरण चित्त, काम सुगति लोक में जन्मान्धादि मनुष्यों और भूमि स्थित देवताओं को आश्रय होकर होने वाले विनिपातिक असुरों के प्रति सन्धि, भवङ्गच्युति वश होता है।

२५२—महाविपाकानि पन अठं सब्बत्थापि काम सुगतियं पति
सन्धि, भवङ्ग चुति, वसेन पवत्तन्ति।

आठ महा विपाक चित्त सब प्रकार से काम सुगति में ही प्रति सन्धि, भवङ्गच्युति वश होता है।

२५३—इममेव काम सुगति पति सन्धिमेनाम।

कुशल विपाक उपेक्षा सहगत सन्तीरण और आठ महा विपाक यह नौ काम सुगति प्रति सन्धि हैं।

२५४–सापना यं दसविधापि कामावचर पतिसन्धिच्चेव सङ्खं गच्छति।

अकुशल, और कुशल, तथा आठ महाविपाक, यह दश को कामावचर प्रति सन्धि के नाम से कहते हैं।

२५५–तेसु चतुण्णं अपायानं मनुस्सानं विनिपातिका. सुरानञ्च आयुप्पमाण–गणनाय नियमो नत्थि।

उन काम प्रति सन्धि वालों में से चार अपायिकों, मनुष्यों और विनिपातिका सुरों के आयु प्राण गिनने में नियम नहीं।

२५६–चातु माहाराजिकानं पन देवानं दिब्बानि पञ्चवस्स सतानि आयुप्पमाणं मनुस्स गणनाय नवुतिवस्स सहस्सपमाणं होति।

ततो चतुग्गुणं तावतिंसानं। ततो चतुग्गुणं यामानं। ततो चतुग्गुणं तुसितानं। ततो चतुग्गुणं निम्मान रतीनं। ततो चतुग्गुणं परनिम्मित वसवत्तीनं।

चातुर्माहाराज लोक में रहने वाले देवताओं के आयु प्रमाण, स्वर्गोत्पन्न पांच शत वर्ष है। मनुष्यलोक-वासियों के गिनने से नब्बेहजार ६००००० है। उससे चौगुना आयु त्रयस्त्रिंशलोक देवताओं के हैं। उससे चौगुना आयु यामलोक देवताओं के हैं। उससे चौगुना आयु तुषित लोक देवताओं के हैं। उससे चौगुना आयु निर्म्मानरति लोक देवताओं के हैं। उससे चौगुनाआयु पर निर्मितवशव तिलोक देवताओं के हैं। यह सब इस परिच्छेद के आखिर मेंदेखिए।

२५७–नवसतञ्चेकवीस। वस्सानं कोटियो तथा। वस्स-सत-

सहस्सानि। सट्ठि चवसवत्तिसु।

पर-निर्मित वशवर्ति देव लोक में आयु मर्यादा वर्षों के नौ सौ करोड़ इक्कीस करोड़ और साठ सौ हज़ार वर्ष है। ९२१६००००००।

२५८–पथमज्झान विपाकं पथमज्झानभूमियं पतिसन्धि, भवङ्ग,

चुतिवसेन पवत्तन्ति।

प्रथमध्यान विपाकचित्त, प्रथमध्यानलोक में प्रतिसन्धि, भवङ्ग च्युतिवश होता है।

२५९–तथा दुतीयज्झान विपाकं, ततीयज्झान विपाकञ्च दुतीतज्झान भूमियं।

पहला जैसा द्वितीय और तृतिय ध्यान विपाकचित्त, द्वितीय ध्यान लोक में प्रति सन्धि, भवङ्ग च्युतिवस होता है।

२६०–चतुत्थज्झान विपाकं ततीयज्झान भूमियं।

चतुर्थ ध्यान विपाक चित्त, तृतीत ध्यान लोक में प्रतिसन्धि, भवङ्ग च्युतिवश होता है।

२६१–पञ्चमज्झान विपाकं चतुत्थज्झान भूमियं।

पञ्चम ध्यान विपाक चित्त, चतुर्थ ध्यान लोक में प्रति सन्धि, भवङ्ग, च्युति-वश होता है।

२६२–असञ्ञ सत्तानं पन रूपमेव पतिसन्धि होति। ततो परं पवत्तियं चवन काले च रूपमेव पवत्तित्वा निरुज्झति। इमाछ रूपावचर पतिसन्धियो नाम।

असंज्ञ सत्व ब्राह्मणों के रूप (जीवितेन्द्रिय, पृथ्वी, आपो, तेजो, वायो, वर्ण, गन्ध, रस, ओजा। यह नौ, जीवित नव कलाप रूप,

कहते हैं) ही अर्थात् जीवित नव कलाप रूप ही प्रति सन्धि है। इसके समान प्रति सन्धि के बाद वर्तमान च्युति—मृत्यु समय में भी वह रूप होकर लुप्त होता है। यह छः रूपावचर प्रति सन्धि है।

२६३—तेसु ब्रह्म पारिसज्जानं देवानं कप्पस्स ततीयो भागो आयुप्पमाणं ब्रह्म पुरोहितानं उपड्ढकप्पो। महा ब्रह्मानो एकोकप्पो।

उन रूप प्रति सन्धिक ब्रह्माओं में से ब्रह्मपारिसज्जन ब्रह्माओं के आयु प्रमाण, विवर्त स्थायि असंख्य कल्प के तीन भागों में एक भाग है। ब्रह्मा पुरोहित ब्रह्माओं के आयु प्रमाण, विवर्त स्थायि असंख्य कल्प के आधा भाग है। महा ब्रह्माओं के आयु प्रमाण, एक विवर्त स्थायि असंख्य कल्प है।

२६४—परित्ताभानं द्वेकप्पानि। अप्पमाणाभानं चत्तारि कप्पानि आभस्सरानं अठ कप्पानि।

परित्तभा ब्रह्माओं के आयु दो महाकल्प है। अप्रमाणभा ब्रह्माओं के चार महा कल्प आयु है। आभस्वर ब्रह्माओं के आठ महा कल्प आयु है।

२६५—परित्तसुभानं सोलस कप्पानि। अप्पमाण सुभानं द्वतिंस कप्पानि : सुभकिण्णानं चतुसट्ठि कप्पानि।

परित्त सुभाओं के सोलह, अप्रमाण सुभाओं के बत्तीस, सुभकृत्स्नों के चौंसठ महा कल्प आयु है।

२६६—वेहप्फलानं असञ्ञ सत्तानञ्च पञ्चकप्पसतानि।

बृहत्फल और असंज्ञसत्वों के पांच सौ महाकल्प, आयु है।

२६७—अविहानं कप्प-सहस्सानि। आतप्पानं द्वे-कप्प-सहस्सानि सुदस्सानं चत्तारि कप्प-सहस्सानि। सुदस्सीनं अठकप्प-सहस्सानि। अकनिट्ठानं सोलस-कप्प-सहस्सानि।

अवृहा ब्रह्माओं के आयु प्रमाण एक हज़ार महाकल्प है। आतप्प ब्रह्माओं के दो हज़ार महाकल्प, सुदशा ब्रह्माओं के चार हज़ार महाकल्प सुदर्शी ब्रह्माओं के आठ हज़ार महाकल्प, अकनिष्ट ब्रह्माओं के आयु प्रमाण सोलह, हज़ार महाकल्प हैं।

२६८—पथमारुप्पादिविपाकानि पथमारुप्पादिभूमिसु यथाक्कमं पतिसन्धि, भवङ्ग, चुति, वसेन पवत्तन्ति। इमा चतस्सो अरूपपतिसन्धियो नाम।

प्रथम अरूपादि विपाक चित्त, (आकासानन्त्यायतनादि) प्रथम अरूपादि लोक में क्रमशः प्रति सन्धि, भवङ्ग च्युति—वश होते हैं। यह चार अरूप प्रतिसन्धि है।

२६९—तेसु पन आकासानञ्चायतनूपगानं देवानं वीसतिकप्प-सहस्सानि आयुप्पमाणं।

उन अरूप प्रतिसन्धि वाले ब्रह्माओं में से आकासानन्त्यायतन लोकोत्पन्न ब्रह्माओं के आयु प्रमाण बीस हज़ार महाकल्प है।

२७०—विञ्ञानञ्चायतनूपगानं देवानं चत्तालीस कप्प-सहस्सानि।

विज्ञानानन्त्ययतन लोकोत्पन्न ब्रह्माओं के आयु प्रमाण चालीस हज़ार महाकल्प है।

२७१—आकिञ्चिञ्ञायतनूपगानं देवानं सट्ठिकप्प-सहस्सानि।

आकिंचन्यायतन लोकोत्पन्न ब्रह्माओं के आयु प्रमाण साठ हज़ार महाकल्प है।

२७२–नेवसञ्ञानासञ्ञायतनूपगानं देवानं चतुरासीतिकप्प-सहस्सानि ।

नैवसंज्ञाना संज्ञायतन लोकोत्पन्न, ब्रह्माओं के आयु प्रमाण चौरासी हज़ार महा कल्प है ।

२७३–पतिसन्धि, भवङ्गञ्च। तथा चवनमानसं। एकमेव, तथेवेक विसयञ्चेक.क- जातियं । इदमेत्थ पतिसन्धि चतुक्कं ।

एक जन्म में प्रति सन्धि, भवङ्ग और च्युति एक ही । विषय-गोचर भी पहला जैसा एक ही है। यह इस वीथिमुक्त संग्रह में प्रति सन्धि चतुष्क है ।

२७४–जनकं उपत्थम्भकं, उपपीलकं, उपघातक, ञ्चेति किच्चवसेन।

प्रति सन्धि, और वर्त्तमान, दोनों कालों में विपाक, नामस्कन्धारूपों को करने वाला जनक कर्म, समान वाले दूसरे कर्म को मदद करने वाला उपत्थम्भकर्म, असमान अन्य कर्म को सताने वाला उपपीड़क कर्म अन्य असमान कर्म को वध करने वाला उपघातक कर्म, (उपच्छेदक भी कहते है) ऐसा कृत्य-वश भी जनक कृत्यादि क्रमश: चार हैं ।

२७५–गरुकं, आसन्नं, आचिण्णं, कटत्ता-कम्म, ञ्चेति पाकदान परियानेन ।

गरु गुरु कर्म, आसन्न कर्म, अभिज्ञाकृत आचिण्णक कर्म, किया हुआ होने के कारण कर्म लब्ध नाम वाला कटत्ताकर्म, पाकदान क्रमश: भी चार हैं ।

२७६–दिट्ठ धम्म वेदनीयं, उपपज्जवेदनीयं, अपर परियाय वेद-नीयं, अहोसि कम्मञ्चेति पाक काल वसेन, चत्तारि कम्मानि नाम ।

प्रत्यक्ष फल देने वाला दृष्ट धर्म वेदनीय कर्म—प्रत्यक्षआत्मा में भुक्तफल वाला दृष्ट धर्म वेदनीय कर्म, दूसरे जन्म में भुक्त फल वाला उपपद्य वेदनीय कर्म, उक्त दोनों कर्मों से अतिरिक्त अन्य आत्मा में भुक्त फल वाला अपरपर्याय वेदनीय कर्म, अहोसि लब्ध नाम वाली अहोसिकर्म, ऐसा पाक काल-वश भी चार हैं।

२७७—तथा अकुसलं, कामावचर कुसलं, रूपावचर कुसलं, अरूपावचर कुसल,ञ्चेति पाक ठान वसेन।

अकुशल कर्म, कामावचर कुशल कर्म, रूपावचर कुशलकर्म, अरूपावचर कुशलकर्म, ऐसा पाक स्थान-वश पहला जैसा चार हैं।

२७८—तत्थ अकुसलं कायकम्मं, वचीकम्मं, मनोकम्म, ञ्चेति कम्मद्वार वसेन तिविधं होति।

उन चार कर्मों में से अकुशल कर्म, काय—कर्म, वाक कर्म मन.-कर्म ऐसा कर्म—द्वार—वश तीन हैं।

२७९—कथं ? पाणातिपातो, अदिन्नादानं, कामेसु मिच्छाचारो चेति काय विञ्ञत्ति-संखात कायद्वारे बाहुल्ल-वुत्तितो। कायकम्मं नाम।

कैसे जीव हिंसा, डकैती करना, अन्य बहू बेटी से अत्याचार करना यह तीन काय विज्ञप्ति नाम वाले काय—द्वार में ही ज्यादा होने के कारण काय-कर्म हैं।

२८०—मुसावादो, पिसुणवाचा, फरुसवाचा, सम्फप्पलापो, चेति वचीविञ्ञत्ति संखाते वचीद्वारे बाहुल्ल- वुत्तितो वची कम्मं नाम।

झूठ बोलना पैशुन्य, मित्रता को पृथक् करने वाला वचन, अप्रिय वचन, व्यर्थ वचन, यह चार वाक् विज्ञप्ति नाम वाले वाक् द्वार में ही

ज्यादा होने के कारण वाक्कर्म हैं।

२८१–अभिज्झा, व्यापादो, मिच्छादिट्ठि, चेति अञ्ञत्रापि विञ्ञत्तिया मनस्मिं येव बाहुल्लवुत्तितो मनो कम्मंनाम।

पराया चीज में लोभ होना, पराये को हानि पहुँचाना असत्य को सत्य देखना यह तीन बिना विज्ञप्ति के मन में ही ज्यादा होने के कारण मन: कर्म है।

२८२–तेसु पाणातिपातो, फारुसवाचा, व्यापादो च दोस मूलेन जायन्ति।

उन्हीं में से प्राणातिपात, फारुष्य, व्यापाद, यह तीन द्वेष के कारण होते हैं।

२८३–कामेसु मिच्छाचारो, अभिज्झा, मिच्छादिट्ठि च लोभमूलेन।

काम मिथ्याचार, अभिध्या, मिथ्या दृष्टि, यह तीन लोभ के कारण होते हैं।

२८४–सेसानि चत्तारिपि द्वीहि मूलेहि सम्भवन्ति।

इनके अतिरिक्त अदत्तादान, व्यापाद, पैशुन्य, सम्प्रलाप, यह चार द्वेष और लोभ दोनों के कारण होते हैं।

२८५–चित्तुप्पाद वसेन पनेतं अकुसलं सब्बत्थापि द्वादस विधं होति।

वह अकुशल कर्म, चितोत्पाद-वश सब प्रकार से भी बाहर हैं।

२८६–कामावचर कुसलम्पि कायद्वारे पवत्तं कायकम्मं, वचीद्वारे पवत्तं वचीकम्मं, मनोद्वारे पवत्तं मनोकम्म, ञ्चेति कम्म द्वार वसेन तिविधं होति।

कामावचर कुशल कर्म भी कायद्वारोत्पन्न कायकर्म वाक्द्वारोत्पन्न वाकॅ कर्म ज्ञन:द्वारोत्पन्न मन:कर्म, ऐसा कर्मद्वार-वश तीन ही भेद हैं।

२८७–तथा दान, सील भावना, वसेन।

इसके समान दान, शील, भावना-वश तीन हैं।

२८८–चित्तुप्पादवसेन अट्ठविधं होति।

वह कामावचर कुशल कर्म चित्तोत्पाद-वश आठ हैं।

२८९–दान, सील भावना अपचायन, वेय्यावच्च, पत्ति दान, पत्तानुमोदन, धम्मस्सवण, धम्मदेसना, दिट्ठिजुकम्म वसेन दसविधं होति।

दान, शील, भावना, अपचायन– वृद्धों का आदर करना, वैय्यावच्च– वृद्धों के काम में मेहनत करना, पत्तिदान–किये हुये अपने पुण्य कर्म को सम भाग देना, पत्तानुमोदन–अपने और दूसरों के पुण्य को अनुमोद करना धर्मश्रवण, धर्मदेशना, धर्म को सत्य करना वश दश भेद हैं।

२९०–तं पनेतं वीसति-विधम्पि कामावचर कम्म मिच्चेव सङ्खं गच्छति।

बारह अकुशल कर्म और आठ कुशल कर्म, ऐसा बीस भेद वह कर्म को भी कामावचर कर्म ही कहता है।

२९१–रूपावचर कुसलं पन मनोकम्म मेव तञ्च भावनामयं अप्पना पत्तं झानङ्ग भेदेन पञ्चविधं होति।

रूपावचर कुसल तो मन:कर्म ही है। वह भी भावनामय है। अर्पना प्राप्त है। ध्यानाङ्ग भेद से पांच हैं।

२६२–तथा अरूपावचर कुसलञ्च मनो कम्मं तम्पि भावनामयं अप्पनापत्तं आरम्मणभेदेन चतुब्बिधं होति ।

अरूपावचर कुशल भी रूपावचर के समान मनः कर्म ही है। वह अरूपावचर मनः कर्म भी भावनामय और अर्पनाप्राप्त है। आकाश आदि गोचर भेद से चार हैं।

२६३–एत्था. कुसलकम्म. मुद्धच्च-रहितं अपाय भूमियं पतिसन्धिं जनेति। पवत्तियं पन सब्बम्पि द्वादसविधं सत्ता. कुसल पाकानि सब्बत्थापि कामलोके रूपलोके च यथारहं विपच्चति

इस विपाक स्थान चतुष्क में औद्धत्य चेतना-रहित अकुशल कर्म अपाय लोक में प्रतिसन्धि जन्म को पैदा कराते हैं। प्रवृत्ति-वर्तमान समय में बारह प्रकार के सब अकुशल कर्म भी सात अकुशल-विपाक होकर सब काम लोक और रूप लोक में यथानुकूल फल देता है।

२६४–कामावचर कुसलम्पि काम सुगतियमेव पतिसन्धिं जनेति। तथा पवत्तियञ्च महा विपाकानि। अहेतुकविपाकानि पन अट्ठपि सब्बत्थापि कामलोके रूपलोके च यथारहं विपच्चति।

कामावचर कुशल कर्म भी काम सुगति में ही प्रतिसन्धि कराते हैं। वर्तमान काल में तो वह काम लोक में महाविपाक होकर फल देता है। आठ अहेतुक विपाक तो सब कामलोक और रूप लोक में यथोचित फल देता है।

२६५–तत्थापि तिहेतुक मुक्कट्ठं कुसलं तिहेतुकं पतिसन्धिं दत्वा-पवत्ते सोलसविपाकानि विपच्चति।

उन आठ कामावचर कुशल कर्मों में से चार तृहेतुक उत्कृष्ट कुशल कर्म तृहेतुक प्रतिसन्धि को देकर प्रवृत्ति-वर्तमान काल में सोलह विपाक होकर फल प्रदान करता है।

२६६–तिहेतुकमोमकं द्विहेतुकपतिसन्धिं दत्वा पवत्ते तिहेतुक-रहितानि द्वादसविपाकानि विपच्चति।

तिहेतुक निकृष्ट और तिहेतुक उत्कृष्ट आठ कुशल कर्म द्विहेतुक प्रतिसन्धि को देकर वर्तमान काल में तिहेतुक-रहित बारह विपाक (ज्ञान विप्रयुक्त चार महाविपाक, और अहेतुक विपाक, ऐसा बारह गिन लो) होकर फल प्रदान करता है। द्वादश मार्ग अर्थात विपाक।

२६७–द्विहेतुकमोमकं पनकुसलं अहेतुकमेव पतिसन्धि देति पवत्ते च अहेतुक विपाकानेव विपच्चति।

द्विहेतुक निकृष्ट चार कुशल तो द्विहेतुक प्रतिसन्धि ही को देता है। प्रवृत्ति वर्तमान काल में भी अहेतुक विपाक होकर फल प्रदान करता है अष्ट मार्ग, यह त्रिपिटक चूलनाग महा थेर वाद है।

२६८–असंखार-ससंखार विपाकानि न पच्चति ससंखार मस्भि-विपाकानीति केचन तेसंद्वादसपाकानि दसट्ठिचयथा-यथा-वुत्ता-नुसारेन यथासम्भवमुद्दिसे।

असान्सकारिक कुशल कर्म असांसारिक विपाक होकर फल नहीं दे असांसारिक कुशल कर्म असांसारिक विपाक होकर फल नहीं देता। ऐसा के चित्-कोई कोई मोखापि निवास महादत्त और महधर्म रक्षित स्थविर कहते हैं। उनके मत में क्रमशः पहले कहे हुए वचन के अनुसार बारह दश, आठ, विपाकों को यथायोग्य बतला दीजिये।

२६६–रूपावचर कुसलं पन पथमज्झानं परित्तं भावेत्वा ब्रह्मपारिसज्जेसु उप्पज्जति।

रूपावचर कुशल कर्म प्रथम ध्यान को कम अभ्यास से भावना करके ब्रह्मपरिसज्ज लोक में होता है।

३००–तदेव मज्झिमं भावेत्वा ब्रह्मपुरोहितेसु।

उस प्रथम ध्यान को ही मध्यम अभ्यास से भावना कराके ब्रह्मपुरोहित लोक में होता है।

३०१–पणीतं भावेत्वा महाब्रह्मेसु।

उसी को ही उत्तम अभ्यास से भावना कराके महाब्रह्मलोक में होता है।

३०२–तथा दुतीयज्झानं ततीयज्झानञ्च परित्तं भावेत्वा परित्ताभेसु।

उसी तरह द्वितीय ध्यान और तृतीय ध्यान को भी कम अभ्यास से भावना कराके परित्ताभब्रह्मलोक में होता है।

३०३–मज्झिमं भावेत्वा अप्पमाणाभेसु।

मध्यम अभ्यास से भावना कराके अप्रमाणाभ ब्रह्मलोक में होता है।

३०४–पणीतं भावेत्वा आभस्सरेसु।

उत्तम अभ्यास से भावना कराके आभस्वरब्रह्म लोक में होता है।

३०५–चतुत्थज्झानं परित्तमं भावेत्वा परित्तसुभेसु।

चतुर्थ ध्यान को अल्पाभ्यास से भावना कराके परित्तसुभ ब्रह्म लोक में होता है।

३०६–मज्झिमं भावेत्वा अप्पमाणसुभेसु।

मध्यम अभ्यास से भावना करा के अप्रमाण सुभ ब्रह्मलोक में होता है।

३०७–पणीतं भावेत्वा सुभकिण्णेसु।

उत्तम अभ्यास से भावना करा के सुभकृत्स्न ब्रह्मलोक में होता है।

३०८–पञ्चमज्झानं भावेत्वा वेहप्फलेसु।

पञ्चम ध्यान को भावना करा के बृहत्फल ब्रह्मलोक में होता है।

३०९–तदेव सञ्ञाविरागं भावेत्वा असञ्ञसत्तेसु।

उसी पञ्चम ध्यान को ही संज्ञा के विराग होने तक (संज्ञा ही नहीं वेदना, संस्कार विज्ञान में भी विराग समझिए) भावना कराके असंज्ञ सत्व ब्रह्म लोक में होता है।

३१०–अनागामिनो पन सुद्धावासेसु उप्पज्जन्ति।

शुद्धावास ब्रह्मलोक में अनागामि ही होते हैं।

३११–अरूपावचर कुसलञ्च यथाक्कमं भवेत्वा आरुप्पेसु उप्पज्ज-न्तीति।

चार प्रकार के अरूप कर्म को क्रमशः हासिल करने से क्रमशः इ... भि... अरूप ब्रह्मलोक में होते हैं। ऐसा जान लो।

३१२–इत्थं महग्गतं पुञ्ञं यथाभूमि-ववत्थितं जनेति सदिसं पा... पतिसन्धि-प्पवत्तियं इदमेत्थ कम्मचतुक्कं।

इस कथित कायदे से महग्गत कुशल कर्म लक्षित लोकानुसार समान फल को प्रतिसन्धि और प्रवृत्ति - वर्तमान दोनों में उत्पन्न कराते हैं। यह वीथिमुक्त संग्रह में कर्मचतुष्क है।

३१३–आयुक्खयेन, कम्मक्खयेन, उभयक्खयेन, उपच्छेदक-कम्मुना चेति, चतुधा मरणुप्पत्ति नाम।

आयु मर्य्यादा के क्षय से, किया हुआ कर्म के क्षय से, दोनों क्षय से, समीप आके छेदन करने वाले कर्म से, ऐसा चार प्रकार से मृत्यु होते हैं।

३१४–तथा च मरन्तानं पन मरणकाले यथारहं अभिमुखी-भूतं भवन्तरे पतिसन्धि-जनकं कम्मं वा कम्म-निमित्तं वा गतिनिमित्तं वा रूपादिक-

मुपलद्ध पुब्बमुपकरण-भूतञ्च कम्मनिमित्तंवा अनन्तर मुप्पज्जमान-भवे उपलभितब्ब मुपभोगभूतञ्च गतिनिमित्तं-वा कम्मबलेन छण्णं द्वारानं अञ्ञतरस्मिं पच्चुप्पट्ठासि ततो परं तमेव तथो पठितं आरमणं आरम्भ विपच्चमानक कम्मानुरूपं परिसुद्धं उपक्किलिट्ठंवा उपलभितब्बभवा नुरूपं तत्थो णतंव चित्तसन्तानं अभिण्हं पवत्तति ।बाहुल्लेन तमेववापन जनक-भूतंकम्मं अभिनवकरण वसेन द्वारप्पत्तं होति ।

उस उक्त कारणों से मरणे वालों के मरते समय यथोचित उपस्थित भवन्तर-नवजन्म में प्रतिसन्धि को जमाकराने वाला कर्म, उस कुशलादि कर्म करते समय उपलब्ध रूपत्यादि, तथा उसके सामग्रीभूत कर्म, दान-...आदि, कर्मनिमित्त, बाद में होने वाले जन्म में शरीर से सम्बन्ध होकर ...कने वाला और शरीर से पृथक होकर भोगनेवाला सुगति और दुर्गति ...मित्त, कर्म के बल से छः द्वारों में से एक न एक द्वार में उपस्थित होता ...। उसके बाद वैसा उपस्थित उसी कर्म, कर्म निमित्त, और गति निमित्त को ही मनन करके फल देने वाले कर्म के अनुसार परिशुद्ध तथा उपक्लिष्ट उस जन्मानुरूप उस लब्ध जन्म में नत-होकर चित्तावली अभिक्षण बहुतायत से होता है। उत्पन्न करने वाला वह कर्म अपने को अभिनवकर-वश द्वार-प्राप्ति है।

२१५—पच्चसन्न-मरणस्स तस्स वीथिचित्तावसाने भवङ्गक्खयेवा-चवनवसेन पच्चुप्पन्नभवपरियोसानभूतं चुतिचित्तं उप्प ज्जित्वा निरुज्झति। तस्मिं निरुद्धा.वसाने तस्सा. नन्तर-मेव तथा-गहितं आरमणं आरम्भ स-वत्थुकं अ.वत्थुक-मेववा यथारहं अविज्जानुसय-परिक्खित्तेन तण्हा नुस-यमूलकेन सङ्खारेन जनियमानं सम्पयुत्तेहि परिग्गय्हमानं सहजातान.-मधिट्ठान-भावेन पुब्बङ्गम भूतं भवन्तर-पति-

सन्धान-वसेन पतिसन्धिसङ्खातं मानसं उप्पज्जमानमेव भवन्तरे।

पुन: प्रत्युपस्थित मृत्यु वाले उसी के जवनादि वीथिचित्त के अन्त में अथवा भवङ्ग चित्त के अन्त में च्युति-वश मौजूद जन्म के अन्त-भूत च्युति चित्त होकर निरोध होता है। उस च्युति चित्त के निरोधनान्तर ही छ: द्वारोत्पन्न मरणासन्न जवनों ने ग्रहण किया हुआ कर्म्म, कर्म निमित्त, और गतिनिमित्त को मनन करके हृदय वस्तु को आश्रित होकर होनेवाला या बिना हृदयवस्तु के होने वाला कुशलाकुशल संस्कार के अनुसार अविद्यानुसय पृथ्वी पर निक्षिप्त किया हुआ तृष्णानुसय जड़ वाला संस्कार ने उत्पन्न किया हुआ सम्प्रयुक्त धर्मों ने परिग्रहित किया हुआ सहोत्पन्न नाम, रूपों के प्रतिष्ठित भाव से पूर्वांगामि होता हुआ जन्मान्तर से सम्बन्ध-वश प्रतिसन्धि नाम से लब्ध संज्ञावाला चित्त उत्पन्न होकर ही नवजन्म में प्रतिष्ठित होता है। भि-

३१६—मरणासन्न वीथियंपने.त्थ मन्दपवत्तानिप ञ्चेव जवनानि पातिकङ्खि तब्बानि। तस्मा यदि पच्चुप्पन्नारम्मणेसु आवाध-मागतेसु धरन्ते स्वेवमरणं होति। तदा पतिसन्धिभवङ्गा-नम्पि पच्चुप्पन्ना. रमनतालब्भतीति कत्वा कामावचर पति-सन्धिया छद्वारग्गहितं. कम्मनिमित्तं गतिनिमित्तञ्च पच्चु-प्पन्न. मतीतारम्मणं उपलब्भति। कम्मं पन अतीतमेव। तञ्च मनोद्वारग्गहितं। तानि पन सब्बानिपि परित्त-भूता नेवा. रम्मणानि

उस मरणोत्पत्ति के विषय में मरणासन्न वीथि पर दुर्बल होते हुए पाँच बार ही जवनों को समझिए। अत: चक्षु आदि द्वार में लगते हुए या प्रगट होते हुए उपस्थित रूपादि गोचर मौजूद होते ही अगर मृत्यु हो तो नया जन्म के प्रतिसन्धि, और भवङ्ग के भी मौजूद गोचर को ही लब्ध है। इसीलिए कामावचर प्रतिसन्धि के छ: द्वारों से लिया हुआ कर्म

निमित्त, और गतिनिमित्त के वर्तमान और भूत काल के गोचर भाव से लब्ध है। कर्म तो अतीत ही है। उसी कर्म को मन के द्वारा ग्रहण किया जाता है। कर्मत्यादि वह सब निमित्त कामावचर धर्मों के ही गोचर है।

३१७–रूपावचर पतिसन्धिया पन पञ्ञत्तिभूतं कम्मनिमित्तमेवा रमणं होति।

रूप प्रतिसन्धि का गोचर प्रज्ञप्ति भूत कर्म निमित्त होता है। प्रथम ध्यान का गोचर दशकसिण, दश अशुभ, कायगता स्मृति, आनापाण स्मृति, मैत्री, करुणा, मुदिता, इन पचीस भावनाओं में से एक न एक। सब ध्यनों का गोचर अन्त में देखिए।

३१८–तथा अरूप पतिसन्धिया च महग्गतभूतं पञ्ञत्तिभूतञ्च कम्मनिमित्तमेव यथारहं. मारमणं होति।

रूप प्रतिसन्धि के समान अरूप प्रतिसन्धि का गोचर भी महग्गत और प्रज्ञप्ति ही यथोचित है। इसका भी गोचर आखीर में देखिए।

३१९–असञ्ञसत्तानं पन जीवित-नवकमेव पतिसन्धि भावेन पतिट्ठाति। तस्माते रूप पतिसन्धिकानाम।

असंज्ञसत्व ब्रह्माओं के जीवित नवक कलाप ही प्रतिसन्धि भाव से प्रतिष्ठित है। अतः वे असंज्ञसत्व ब्रह्मा लोग सिरफ रूप ही प्रतिसन्धि वाले हैं।

३२०–अरूपा अरूपपतिसन्धिका।

अरूपब्रह्मा लोग केवल नामस्कन्ध ही प्रतिसन्धि वाले हैं।

३२१–सेसा रूपारूप पतिसन्धिका।

असंज्ञसत्व और अरूप-ब्रह्माओं से अतिरिक्त सब रूप, और नाम, प्रतिसन्धि वाले हैं।

३२२–आरुप्पचुतिया होन्ति हेट्ठिमारुप्पवज्जिता। पर. मारुप्प-

सन्धिच। तथाकामतिहेतुका।
रूपावचर चुतिया। अहेतु-रहितासियुं। सब्बा कामति-
हेतुम्हा। कामेस्वेवपने. तरा। अयमेत्थ चुति पतिसन्धि
कमो।

चार अरूप च्युति के बाद नीचे के अरूप-प्रतिसन्धि वर्जित चार, तीन, दो एक प्रतिसन्धि, तथा चार तिहेतुक काम प्रतिसन्धि हैं। पाँच रूपावचर च्युति के बाद सत्रह, (आठ महाविपाक, पाँच रूपविपाक, चार अरूप-विपाक) सहेतुक प्रतिसन्धि होते हैं। चार तिहेतुक प्रतिसन्धि के बाद सब बीस प्रतिसन्धि होते हैं। शेष छः च्युतियों के बाद ग्यारह कामलोक में दश काम प्रतिसन्धि होते हैं। छः च्युति यह हैं– दो अहेतुक; चार ज्ञान विप्प्रयुक्त द्विहेतुक। दश काम प्रतिसन्धि यह हैं– दो अहेतुक, आठ महा विपाक। यह वीथिमुत्त संग्रह में च्युति और प्रतिसन्धि के क्रम हैं। इह

३२३–इच्चेवंगहित – पतिसन्धिकानं पन पतिसन्धि निरोधा-
नन्तरतो पभूतितमेवारमण. मारम्भ तदेवचित्तं यावो
चुतिचित्तुप्पादा असतिवीथि चित्तुप्पादे भवस्स अङ्ग-
भावेन भवङ्ग सन्तति सङ्खातं मानसं अवोच्छिन्नं
नदीसोतोबिय पवत्तति।

ऐसे ही लिये हुये प्रतिसन्धिवालों के (जन्म ग्रहण किये वालों के) शरीर में प्रतिसन्धि और भवङ्ग के निरोध से आरम्भ हो कर उसी प्रतिसन्धि के गोचर को ही ग्रहण करके वह चित्त जो प्रतिसन्धि होकर निरोध हो चुका था। च्युति होने तक वीथिचित्त के न होने से भव-जन्म के हेतु भाव से भवङ्ग चित्तावली निरन्तर हो कर नदी के जल प्रवाह के माफिक होता रहता है।

३२४–परियोसाने च चवनवसेन चुतिचित्तं हुत्वा निरुज्झति।

जन्म के आखीर– उत्पत्ति के अन्त में वह प्रतिसन्धि चित्त उत्पत्ति स पतन-वश च्युतिचित्त होकर निरोध करता है।

३२५–ततोपरञ्ञ पतिसन्धादयो रथचक्कमिव यथाक्कमंएव परि-
वत्तन्ता पवत्तन्ति।

उस च्युति के बाद प्रतिसन्धि, भवङ्ग और वीथि, च्युती, रथ के चक्र पहिये के समान क्रमषः ही घूमते हुये निर्वाण के च्युति तक होते हवाते हैं। उस उपस्थित जन्म में प्रतिसन्धि, भवङ्ग, वीथि और च्युति जैसे निरन्तर घूमता है, वैसे ही फिर अन्य जन्म में प्रतिसन्धि, भवङ्ग वगैरह यह चित्तावली चक्र खाकर होता है।

३२६–पतिसन्धि-भवङ्ग-वीथियो। चुतिचेह
तथा भवन्तरे। पुन सन्धि भवङ्ग
मिच्चयं। परिवत्तति चित्तसन्तति। } चाफुहासिनी।

पतिसङ्खायपनेत, मद्धुवं। अधिग-
न्त्वापद.मच्चुतंबुधा।सुसमुच्छिन्न सि
नेह बन्धना। सम-मेस्सन्ति चिराय
सुब्बतु। } अपरन्तिका।

इति अभिधम्मत्थसङ्गहे वीथिमुत्तसङ्गहो नाम पञ्चमो
परिच्छेदो

चिरकाल से भली भांति शुद्ध शीलवाले विद्वान् लोग अध्रुव-नाशवान् कहे हुए चित्त और चैतसिकों के उत्पत्ति और क्षय को विपस्सना-ज्ञान से पुनः पुनः विचार कर अच्युति-ध्रुव, नित्य सउपादिशेष निर्वाण को आर्य मार्ग ज्ञान से साक्षात् कर के भली प्रकार स्नेह बन्धनों से निश्शेष मुक्त हो कर– सब बन्धनों को निश्शेष छिन्न भिन्न करके सब संस्कारो के क्षयान्त अति शीतल अनुपादिशेष निर्वाण को प्राप्त होंगे। यह अभिधर्मार्थ संग्रह में वीथिमुक्त संग्रह नामक पाँचवां परिच्छेद समाप्त हैं।

अभिधम्मत्थ सङ्गहो

चित्तपरिच्छेद का सारांश

(१) चार परमार्थों का प्रकाशन

बौद्ध-दर्शन "अभिधर्मार्थसंग्रह" नामक ग्रन्थ में चार परमार्थ-अविपरीतार्थ-सत्यों को सर्वप्रथम जानना जरूरी है। इसी लि[illegible] पहले पहल इन चार परमार्थों को ही यथोचित लिखता हूँ। [illegible]

(१) गोचरों को चिन्तन, मनन, जानन, गवेषण करनेवाला चित्त, (२) एकोत्पत्त्यादि चार लक्षणों से सम्पूर्णवाला चैतसिक, (३) विपरीत-परिवर्तन स्वभाववाला रूप, (४) रागाग्नि इत्यादि ग्यारह अग्नियों से शान्तवाला निर्वाण,	यह चार अवि-परीत श्रेष्ठ स्वभाव होने के कारण पर-मार्थ हैं।

(२) लोभादि चित्तों के अविपरीत-भाव का प्रकाशन

लोभ चाहे गो, महिष, अश्व, कुक्कुर में भी हो, चाहे मनुष्य, देवता और ब्रह्मा में भी हो, सबको प्रेतगति में पहुँचा देता है।

"येभुय्येन हि सत्ता तण्हाय पेत्तिविसयं उपपज्जन्ति।" अट्ठ-सालिनी। प्रायः प्राणधारी तृष्णा-लोभ से प्रेत-योनि में होते हैं। लोभ का यह अविपरीत स्वभाव है।

इसी के समान द्वेष भी, चाहे वह जिस किसी में हो, सबको नरक पहुँचा देता है। दोसेन हि चण्डजातिताय दोषसदिसं निरयं उपपज्जन्ति। अट्ठसालिनी॥ द्वेष का भी यह अविपरीत स्वभाव है।

इसी तरह मोह चाहे गो, महिष, अश्व, कुक्कुर में हो, चाहे मनुष्य, देवता और ब्रह्मा में भी हो, सबको एक समान तिर्यक् योनि में पहुँचा देता है। "मोहेन हि निच्चं संमूल्हं तिरच्छान-[illegible]नेयं उपपज्जन्ति।" अट्ठसालिनी॥ मोह से अवश्य ही बेतमीज़ [illegible]क् योनि में होते हैं। मोह का यह अविपरीत स्वभाव है।

(३) चैतसिकों के अविपरीत होने का प्रकाशन

स्पर्शादि चैतसिकों के जो स्वभाव हैं, वह कभी भी विपरीत होकर वेदयितादि-स्वभाव नहीं होते। अन्य प्रयोग से भी विपरीत करा नहीं सकता। अन्य कारणों से रहित न होकर उत्पत्ति और संहार से युक्त होते हुए भी उत्पत्ति, स्थिति और भङ्ग तीन क्षणों में स्पर्शादि स्वभाव से विपरीत नहीं होता। इस-लिए श्रेष्ठ है। "स्वायं फुसनलक्खणो, संघट्टनरसो सन्निपात पच्चु-पट्ठानो। आपातगतविसयपदट्ठानो।" अट्ठसालिनी॥ स्पर्श जो है वह गोचर-स्पर्श-लक्षण है।

चित्त और गोचर का लग जाना कार्य है। इन्द्रियवस्तु, गोचर और विज्ञान के मिलने से ज्ञान का आविर्भाव होता है। स्पर्श के समान, वेदना, संज्ञा आदि चैतसिकों में भी पृथक् पृथक् अपना अपना भोगना, जानना आदि लक्षण हैं। आगे चैतसिक परिच्छेद में पूरा-पूरा चैतसिकों का लक्षण आवेगा।

(४) रूप को परिवर्तनशीलता का प्रकाशन

जाड़ा, गर्मी, भूख, प्यास, चोट लगना, शस्त्रादि से भोंका जाना, मारना-पीटना आदि विरोधी कारणों से समूह प्रज्ञप्ति, द्रव्य रूप कलापों का फटना, फूटना, पतला पीला, लाल, श्याम, श्वेत, काला, चितकबरा आदि से परिवर्तित होते रहना, रूप का स्वभाव है।

"परमो उत्तमो अविपरीतो अत्थो, परमत्थो।" इसके अनुसार अविपरीत स्वभाव ही को परमार्थ कहकर रूप विपरीत है ऐसा कहें, तो पूर्वापर-विरोध हुआ! सो शंका ठीक नहीं। पृथ्वी धातु जो कठोर है, वह उत्पत्ति-क्षण में कठोर, स्थिति-क्षण में कठोर, और भङ्ग के क्षण में भी कठोर रहता है। ऐसे तीन क्षणों पर नित्य कठोर स्वभाव से अविपरीत रहने के कारण परमार्थ है। "पथवी धातु कक्खल लक्खणा।" अट्ठसालिनी॥ शीत, उष्णादि विरोध कारणों के एक साथ समागम से पूर्व रूप से पिछले रूप में जो असमानता है वही उसका परिवर्तन-स्वभाव है। "रूप्पनञ्चेत्थ सीतादिविरोधिपच्चयसमवाये विसदिसुप्पत्ति-येव।" विभावनी टीका।

(५) निर्वाण के अविपरीत होने का प्रकाशन

"भवाभवंविनतिसंसिब्बतीतिवान" तृष्णा नीच, उच्च गति को जोड़ती और सी लेती है। "वानतोनिक्खन्तन्ति निब्बान।" निर्वाण वानरूपी तृष्णा से मुक्त है। मनुष्य, देव और ब्रह्म, गणों को संसार भँवर में बन्ध-रूपी तृष्णा से निस्तार होने के कारण शान्ति-लक्षण स्वभाववाला एक असंस्कृत धर्म ही निर्वाण है। उस निर्वाण को अर्हन्त आदि आर्य्यजन प्रत्यक्ष भाव से साक्षात् करते हैं। कल्याण पृथक् जन भी ज्ञान-चक्षु द्वारा अनुमान से उद्देश्य करके जान सकते हैं। ब. लिए निर्वाण-परमार्थ स्वभाव वाला आवश्यक है। निर्वाण ...ाव से एक होते हुए भी

...स्कन्धशेषिकसउपादिशेषनिर्वाण, पञ्चस्कन्धाशेषिक अनुपादिशेषनिर्वाण,	कारण-भेद से दो हैं।
क्लेश से शून्यता के निमित्त शून्य निर्वाण, क्लेश निमित्त से विगत होने से अनिमित्त, निर्वाण, क्लेशरूपी प्रार्थना से रहित के कारण अप्रणिहित निर्वाण, सब मिलकर पाँच हुए,	आकार-भेद से तीन हैं।

क्योंकि इससे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है, इसलिए इसे लोकोत्तर कहते हैं। उनमें भी लौकिक, लोकोत्तर भेद से दो हैं।

इनमें से भी लोकोत्तर श्रेष्ठ है। लोकोत्तर भी चार मार्ग, चार फल और निर्वाण-भेद से नौ हैं। इनमें से मार्ग और फल तो क्रमशः एक से दूसरा श्रेष्ठ है। निर्वाण इन आठों से श्रेष्ठ है।

(६) चित्त के स्वभाव का प्रकाशन

"चित्तेन नीयति लोको। चित्तेन परिकस्सति चित्तस्स एक-धम्मस्स सब्बेववसमन्वगू।" चित्त मनुष्य, देव, ब्रह्म-निकाय को लिये जाता है। चित्त से ही आकर्षित किया गया है। सब मनुष्य, देव, ब्रह्म, समूह चित्तरूपी एक धर्म के क़ाबू पर अनुगत है। इसलिए मनुष्यत्व, देवत्व, ब्रह्मत्व, नरक, तियक, प्रेतादि गतियों में कर्म, लिङ्ग, संज्ञा, नाम-विशेषादि भेद भी अपने अपने चित्त के कारण ही हुए हैं। चित्त-८९-१२१ —जो है वह इष्ट अनिष्ट आदि सब गोचरों को जानता है; पूर्वगामी है। अभि-क्षण सम्बन्ध प्रवृत्ताकार है। नाम और रूप ही समीप कारण है। अति शीघ्र परिवर्त्तनशील है। चित्त के मलीन होने के कारण मनुष्य, देव, ब्रह्मादि मलीन होते हैं। इनके परिशुद्ध होने से मनुष्यादि परिशुद्ध होते हैं।

(७) चित्त के भेद का प्रकाशन

चार परमार्थों में से चित्त, कामावचर, रूपावचर, अरूपा-वचर, लोकोत्तर, इस प्रकार चार हैं। इनमें से भी कामावचर चित्त, बारह अकुशल, अठारह अहेतुक, चौबीस काम शोभन, भेद से चौवन ५४ है। इनमें से भी अकुशल चित्त आठ लोभ-मूलक दो, द्वेषमूलक दो, मोहमूलक ऐसा १२ होते हैं।

(८) लोभमूलक का प्रकाशन

१	सोमनस्ससहगत	दिट्ठिगतसम्पयुत्त	असंखारिक	एक	४ सोमनस्स
२	सोमनस्ससहगत	दिट्ठिगतसम्पयुत्त	ससंखारिक	एक	
३	सो०	दिट्ठिगतविप्पयुत्त	असंखारिक	एक	
४	सो०	दि०	ससंखारिक	एक	
५	उपेक्खासहगत	दिट्ठिगतसम्पयुत्त	असंखारिक	एक	४ उपेक्खा
६	उपे०	दि०	ससंखारिक	एक	
७	उपेक्खासहगत	दिट्ठिगतविप्पयुत्त	असंखारिक	एक	
८	उपे०	दि०	ससंखारिक	एक	

(९) द्वेषमूलक के गिनने का प्रकाशन

१	दोमनस्ससहगत	पतिघसम्पयुत्त	असंखारिक	एक	२ दोषमूलक
२	दो०	पति०	ससंखारिक	एक	

(१०) मोहमूलक के गिनने का प्रकाशन

१ उपेक्खासहगत	विचिकिच्छासम्पयुत्त	एक	२ मोहमूल
२ उपेक्खासहगत	उद्धच्चसम्पयुत्त	एक	

(११) लोभमूलक का चक्र लगाकर संख्या प्रकाशन

सोमनस्स, उपेक्खा, सम्पयुत्त, विप्पयुत्त, इन चारों को मूल-प्रधान समझ लो; फिर सोमनस्स, मूल में सम्पयुत्त, विप्पयुत्त, असंखारिक, ससंखारिक, इन चारों को क्रम से मिलामिलाकर जोड़ लो और गिन लो। उपेक्खामूल में भी इन चारों को ही प्रवेश कर लो। सम्पयुत्त, मूल में सिर्फ असंखारिक, और ससंखारिक को ही प्रवेश कर लो। विप्पयुत्त मूल में भी इसके समान समझ लो। प्रवेश करने का तरीक़ा निम्नलिखित प्रश्नोत्तर से समझ लो। उत्तर जो है, वह दूसरी तरफ़ नम्बर से बतला दिया जायगा।

जो सोमनस्स तो होता है, सम्पयुत्त नहीं होता, वह कौन सा चित्त है? उत्तर, ३-४—नम्बर है।

जो सम्पयुत्त तो होता है, सोमनस्स नहीं होता, वह कौन सा चित्त है? उत्तर, ५-६—नम्बर है।

जो सोमनस्स भी होता है और सम्पयुत्त भी, वह कौन सा चित्त है? उत्तर, १-२—नम्बर है।

जो सोमनस्स भी नहीं होता और सम्पयुत्त भी, वह कौन सा चित्त है? उत्तर ७-८—नम्बर है।

अथवा, जो सोमनस्स होता है, विप्पयुत्त नहीं होता, वह कौन सा चित्त है? उत्तर १-२—नम्बर है।

जो विप्पयुत्त तो होता है, सोमनस्स नहीं होता, वह कौन सा चित्त है? उत्तर ७-८ नम्बर।

जो सोमनस्स भी होता है, और विप्पयुत्त भी, वह कौन सा चित्त है? उत्तर ३-४ नम्बर है।

जो सोमनस्स भी नहीं होता, और विप्पयुत्त भी, वह कौन सा चित्त है? उत्तर ५-६ नम्बर है।

इस तरह शेष तरीक़ों को भी जोड़कर बुद्धि चलाइए। जैसा ऊपर नमूना दिया है।

(११) लोभमूलक चित्त को गुना करने की विधि का प्रकाशन

दश अकुशल कर्मपथ को दश दुश्चरित भी कहते हैं। सात अकुशल कर्मपथों से आठ को गुणा करें तो ५६ होता है, फिर उसको रूपादि छः गोचरों से गुणा करें तो ३३६ होता है। उसको भी छन्द, चित्त और वीर्य, तीन अधिपतियों से गुणा करें तो तो १००८ होता है। फिर उसको भी कायकर्म, वचीकर्म, मनोकर्म, तीनों से गुणा किया जाय तो, ३०२४ होता है। "कमेन सत्ताकुसल कम्मपथे हि गोचरा, तीहाधिपति कम्मेहि, गणेय्य नयकोविदो। कालदेसादिवसेनपननेसंभेदोअप्पमेय्यो।" इस श्लोक से ऐसा इकट्ठा कर लिया जाता है। काल, देशादि भेद से अप्रमेय है।

(१३) लोभ का अर्थ

"लुप्पतीति लोभो सो आरम्मण अभिसङ्गलक्खणो, मक्कटालेपोविय।" (विभावनी टीका) लोभ जो है वह रूपादि इष्ट गोचरों में लगने स्वभाव वाला है, जैसा कि गोंद। "आरमणग्गहणलक्खणोलोभो, अभिसङ्गरसो। अपरिच्चागपच्चुपट्ठानो, अस्सादद्स्सनपदट्ठानो।" (अट्ठसालिनी) गोचर-ग्रहण, उसका काम है। गोचर में लगना या चिपकना उसका आकार है। त्यजनीय वस्तु को न छोड़ना उसका ख़ास समीप कारण है। आसक्त भाव दर्शन वह लिप्त चिपक जाने के कारण बंदर को फँसानेवाले गोंद के समान है।

कोई वन में बंदर तक फँसानेवाला, गोंददार (मक्कटालेप) नामक दर.ख्त है। उसमें सूर्य की किरणों से गोंद चमकीला हो जाता है। बंदर के तो हाथ, पैर, स्वभाव से चञ्चल होते हैं। वह चमकते हुए गोंद में एक हाथ चलाता है। वह उसमें फँस जाता है। फिर उसको बिना छुड़ाये दूसरे हाथ से छूने लगता है। वह भी फँस जाता है। इस तरह, दो हाथ, दो पैर और मुँह तक फँस जाने के कारण छुड़ा नहीं सकता। जितना हिलेगा या मिहनत करेगा, उतना ही ज्यादा फँस और चिपक जाता है। उसके समान जो कोई इन्सान रूप में आसक्त है, वह रूप को नहीं छोड़ता है। मधुर स्वर, सुगन्ध, रस-स्वाद, इन चारों से बढ़कर स्पर्श गोचर में अधिकाधिक आसक्त होकर मुग्ध, लिप्त ओत-प्रोत हो जाता है, छुटकारा नहीं पा सकता

ऐसा पाँच गोचरों में फँसाने के कारण जो लोभ जवन चित्त है वह बंदर को फँसानेवाले गोंद के समान है।

लोभ को ही तृष्णा कहते हैं, तृष्णा को ही चार आर्य्य सत्यों में समुदय सत्य कहा है। वह पुनः कामतृष्णा, भवतृष्णा, विभवतृष्णा नाम से तीन भेद हैं। उसको छः गोचरों से गुणा करें तो १८ होता है। उसी को तीन काल से गुणा करें तो ५४ होता है। फिर उसको अध्यात्म और बाह्य संतान दोनों से गुना किया जाय तो १०८ प्रकार की तृष्णा होती है।"

(१४) द्वेषमूलक चित्त को गुणा करने की विधि का प्रकाशन

दो द्वेषमूलक चित्त को दश अकुशल कर्मपथों में से काम मिथ्याचार, अभिध्या, मिथ्या दृष्टि, शेष सातों से गुणा करने से १४ होता है। फिर उसको छः गोचरों से गुणा करें तो ८४ होता है। उसको भी विमंसाधिपति इत्यादि तीन अधिपति से गुणा करें, तो २५२ होता है। पुनः उसको तीन कर्म से गुणा किया जाय तो ७५६ होता है। "कमेन सत्ताकुशल, कम्मपथे हि गोचरा। तीहाधिपतिकम्मेहि, गणेय्यनयकोविदो।"

(१५) द्वेष नाम पड़ने का प्रकाशन

"दुस्सतीति दोसो, सोचण्डिक्कलक्खणो पहटासीविसोविय।" द्वेष जो है वह लाठी या काई डंडा से पीटा हुआ काले साँप की तरह कठोर स्वभाववाला है। उसका लक्षण है,

कड़ापन, उसका काम है, अपने को मलिन और विगाड़ने का, उसका आकार है, डाह करने का, उसका समीप कारण है, द्वेष या क्रोध, दूसरे पर करनेवाला, पहले अपने को दूषित करके, अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग, मुँह और आँखों को कुरूप होने तक दूषित करने के बाद औरों में पहुँचता है। इसलिए द्वेष नाम पड़ा।

(१६) दौर्मनस्य और प्रतिघ के भेदभाव का प्रकाशन

दौर्मनस्स कहने से वेदना चैतसिक, प्रतिघ कहने से द्वेष चैतसिक, लेना चाहिए। "दोमनस्सञ्चेत्थ अनिट्ठारमणानुभवन लक्खणो वेदनाक्खन्धपरियापन्नो एको धम्मो, पतिघो चण्डिकस-भावो संखारक्खन्धपरियापन्नो एको धम्मो ति अयमेते संविसेसो।" विभावनी टीका—इनमें से दौर्मनस्य जो है, वह अनिष्टगोचर को भोगनेवाला, वेदना स्कन्धान्तर्गत एक धर्म है। प्रतिघ जो है, वह कठोर स्वभाववाला संस्कार स्कन्धान्तर्गत एक धर्म है।

(१७) द्वेष के नौ कारण या दश कारण के भेद का प्रकाशन

यह हमारा अनर्थ पहले भी कर चुका है, अब भी कर रहा है, आगे भी करेगा। इस तरह से अपने को लक्ष्य करके तीन, इसके समान अपने प्रिय आदमी को लक्ष्य करके तीन, अपना द्वेष या अप्रिय के हित करने में तीन, यह नौ आघात वस्तु हैं। सूरज अति उष्ण है, चन्द्रमा में बहुत प्रकाश है, पानी ज्यादा बरसता है, इत्यादि अविषय में उत्पन्न क्रोध को प्रवेश कर दश आघात वस्तु समझ लीजिए।

(१८) दश अकुशल कर्मपथ या दुश्चरितों के प्रधान निमित्त का प्रकाशन

काम मिथ्याचार, अभिध्या, मिथ्या दृष्टि, यह तीन लोभ से.	होते हैं।
प्राणातिपात, व्यापाद, पारुष्य, यह तीन द्वेष से,	
पैशुन्य, मृषावाद, सम्प्रलाप, अदत्तादान, यह चार दोनों से,	

(१९) मोहमूलक चित्त को गुणा करने की विधि का प्रकाशन

दो मोहमूलक चित्त, सम्प्रयुक्त और विप्रयुक्त। उसको दस अकुशल कर्मपथों से गुणा करने से बीस, फिर छः गोचरों से गुणा करने से १२०, अधिपति से गुणा नहीं किया जाता। पुनः तीन कर्मों से गुणा करें तो ३६० होता है। "कमेना कुसल कम्मापथेहि च दसहिपिगोचरेहि च कम्मेहिं गणेय्य नयकोविदो।" लोभमूलक ३०२४, द्वेषमूलक ७५६, मोहमूलक ३६०। तीनों को मिलाने से अकुशल ४१४० होता है। काल, देशादि से गुणा किया जाय तो असंख्य, अप्रमेय है। संग्रह श्लोक, "चत्तारि च सहस्सानि चित्तालीसाधिकं सतं। होन्ता कुसलचित्तानि कालादिना असंखिया।"

(२०) मोहमूह नाम पड़ने का प्रकाशन

"मोहेन मुह्यन्ति अतिसयेन संमुह्यन्ति मूलन्तरविरहतोति मोमूहानि"। जो चित्त लोभ और द्वेष रूपी अन्य मूलों से रहित होकर मोह से मूर्छित हैं, अत्यन्ताधिक प्रमूर्च्छित हैं अतः वह मोमूह हैं। मोह, मूह, दो पर्यायवाचक शब्दों से कहने का मतलब यह है कि जो लोभ, और द्वेषमूलक चित्तों में मोह है, उससे अधिक मूढ़—स्तब्ध—होने के कारण मोमूह चित्त में उत्पन्न मोह को ही लेने का है। मोमूह चित्त में विचिकित्सा शब्द का विशेषता का प्रकाशन "बुद्धे कङ्खति धम्मे कङ्खति संघे कंखति सिक्खाय कंखति पुब्बन्तापरन्तो इदप्रत्यताप्रतीत्यसमुत्पन्नेसुधर्मेसु कङ्खति।" इन आठ शंकाओं को संगृहीत है। मोह का लक्षण है चित्त के अन्धभाव होने का। उनका काम है गोचरों के स्वभाव को छिपाने का। उनका आकार है अन्धकार प्रादुर्भाव करने का। उनका मुख्य कारण है अयोनिसो मनस्कार। मोह चार आर्य्य सत्य, प्रतीत्यसमुत्पाद धर्म, लोक से नैव संज्ञानासंज्ञायतन लोक तक धर्म मर्य्यादा से स्रोतापत्ति मार्ग पूर्व गोत्रमूतक, पुद्गल सीमा से अनागामि तक को प्रच्छादन करता है=छिपाता है। संसार-चक्र के अविद्यादि अरों—दण्डों के मोह से प्रच्छादित किये जाने से ही सत्य अदृश्य और अविदित होता है।

(२१) कुशलाकुशल पूर्वापर क्रम का प्रकाशन

बुद्ध भगवान् ने मातिका न्याय से कुशल, अकुशल, अव्याकृत तथा निर्देश न्याय से कुशल, अकुशल, विपाक, क्रिय, ऐसा जो

धर्मोपदेश किया उसमें कुशल ही को प्रथम कहा था। अभिधर्मार्थ-संग्रह ग्रन्थकार अनुरुद्धाचार्य ने अकुशल को प्रथम क्यों कहा? पापाहेतुकमुत्तानि श्लोक के अनुसार अशोभन, और शोभन, नाम से सुख वोहार के लिए अकुशल को प्रथम कहा है। इस अकुशल में भी लोभमूलक, द्वेषमूलक, मोहमूलक तीनों में से लोभमूलक को प्रथम क्यों कहा? "गहितपतिसन्धिकस्स सत्तस्स पतिसन्धितो सोलसमं भवङ्गं। ततो परम्पिवा भवनिकन्ति चित्तं प्रथमं उपज्जति। तस्मा लोभमूलं चित्तं पथमं वुत्तं॥ प्रतिसन्धि —जन्म लेनेवाले को प्रतिसन्धि, जन्ममातृकुक्ष प्रवेश-से सोलह भवङ्ग के वीत जाने पर मनोद्वारा वर्ज्जन, इसके बाद भवनिष्क्रान्ति लोभ जवन चित्त इस जन्म में प्रथम होता है। इसलिए लोभमूलक को प्रथम कहा है। इस तरह टीकाकारों के कथनानुसार इस जन्म में लोभ को प्रथमोत्पन्न जान लीजिए। वीथिचित्त के क्रमानुसार तो इस जन्म में मनोद्वारावज्जंन ही प्रथमोत्पन्न है। परन्तु जवन चित्त को ही प्रधान समझिए।

(२२) सौमनस्य तथा उपेक्षा के अङ्गादि विभाग का प्रकाशन

स्वभाव-परिकल्पित, इष्टगोचर भी हो। सौमनस्य से प्रतिसन्धि जन्म लिया हुआ आदमी भी हो। गम्भीरता अभाव भी हो। यह तीन इस लोभमूलक चित्त में सौमनस्य वेदना होने के कारण

हैं। इष्ट, मध्यन्त गोचर भी हो। उपेक्षा प्रतिसन्धि जन्म लिया हुआ आदमी भी हो। गम्भीर स्वभाव भी हो। यह तीन उपेक्षा वेदना होने के कारण हैं। नष्ट मतवाले का सेवन स्वयं शाश्वत दृष्टि उच्छेद दृष्टि में रुचि हो। यह दो मिथ्या दृष्टि होने के अङ्ग-कारण हैं। इन दोनों के प्रतिलोम, उलटा विप्पयुत्त जान लो। योग्य मित्रता, उचित मौसिम, भोजन, निवासस्थान, आरोग्यता, यह पाँच असांस्कारिक के अङ्ग-कारण हैं। इससे उलटा ससांस्कारिक के।

(२३) १२ अकुशल चित्तों को इकट्ठा करके गिनने की विधि का प्रकाशन

४ सौमनस्य, २ दौर्मनस्य, ६ उपेक्षा, ऐसा १२ अकुशल है। अथवा ८ सम्प्रयुक्त, ४ विप्रयुक्त, १२ हुआ। अथवा ७ असांस्कारिक, ५ ससांस्कारिक १२, अथवा प्रथम द्विक, द्वितीय द्विक, तृतीय द्विक, चतुर्थ द्विक, पञ्चम द्विक, षष्ठ द्विक, १२ अकुशल है। अथवा सोमनस्स, होकर सम्पयुत्त न होनेवाला द्वितीय द्विक, सम्पयुत्त होकर, सोमनस्स न होनेवाला, तृतीय द्विक, पञ्चम द्विक, षष्ठ द्विक। दोनों होनेवाला प्रथम द्विक, दोनों न होनेवाला चतुर्थ द्विक १२ है। अथवा सौमनस्य ही होकर विप्पयुत्त न होनेवाला २, विप्पयुत्त ही होकर सौमनस्य न होनेवाला २, दोनों होनेवाला २, दोनों न होनेवाला ६—१२ है। असंखारिक, ससंखारिक को भी प्रवेश कर ऐसा गिन लो। अथवा दौर्मनस्य

होकर सम्पयुत्त न होनेवाला चित्त नहीं। सम्पयुत्त होकर दौर्मनस्य न होनेवाला , दोनों होनेवाला २, दोनों न होनेवाला ४ ॥ १२ ॥ अथवा दौर्मनस्य होकर विप्पयुत्त न होनेवाला २, विप्पयुत्त होकर दौर्मनस्य न होनेवाला ४, दोनों होनेवाला नहीं। दोनों न होनेवाला ८ ॥ १२ ॥ इसमें असंखारिक और ससंखारिक को भी जोड़ लो। उपेक्षाप्रधान, सम्पयुत्त प्रधान, विप्पयुत्त प्रधान में भी इस माफ़िक चार-चार तरीक़ा लगाकर बारम्बार गिन लो।

(२४) वेदना, हेतु, कृत्य, द्वार, आलम्बन, वस्तु के गिनने का प्रकाशन

१२ अकुशल चित्त, वेदना भेद से, सौमनस्य, दौर्मनस्य, उपेक्षा, ३ लोभ हेतु द्वेष हेतु, मोह हेतु हेतु भेद से ३। ८ लोभमूल, २ दोषमूल, द्विहेतुक चित्त है। २ मोमूह एकहेतुक चित्त है। कुल १२ अकुशल चित्त जवन कृत्य है। छः द्वारों में होता है। १२ अकुशल चित्त का गोचर है। एक्यासी लौकिक चित्त। २ द्वेष-मूल चित्त हृदय वस्तु को आश्रित है। लोभ और मोमूह चित्त, कभी उसको आश्रित है, कभी आश्रित नहीं।

(२५) सौमनस्य और उपेक्षा के भेद विभाग का प्रकाशन

सुत्तन्त पिटक के अनुसार चार सौमनस्य जो है वह अकुशल होने से उत्कृष्ट नहीं, निकृष्ट ही है। अभिधम्म पिटक के अनुसार चार उपेक्षा ही बलवान् और उत्कृष्ट है। उपेक्षा जो

है। वह न सुख में शामिल है, और न दुःख में। शान्त से होने के कारण दोषयुक्त है। अथवा सुत्तन्तिक वालों के मत के अनुसार प्रीति लगातार होने से पुनः भी अकुशल काम में सुकर होने के कारण सौमनस्य अकुशल ही अधिक दोषयुक्त है। फल देने के विषय में सौमनस्य अकुशल, शीघ्र उत्पन्न होकर शीघ्र ही नाश होता है। उपेक्षा अकुशल जल्द नहीं होता और जल्द नाश भी नहीं। सौमनस्य से अकुशल करनेवाला, तृष्णा-चरित बाहुल्य होता है। उपेक्षा से अकुशल करनेवाला मोह चरित बाहुल्य है। सौमनस्य जो है वह अकुशल विषय में बलवंत और फ़िक्र, शोक अथवा मेहनत के काम बाहुल्य होने से शान्त नहीं। इसलिए निकृष्ट है। उपेक्षा अकुशल जो है, वह फ़िक्र, शोक, उत्साह, काम के अल्प होने से शान्त है। अतः उत्कृष्ट है।

(२६) लक्षण, रस, प्रत्युपस्थान, पदस्थान का प्रकाशन

अकुशल का लक्षण है ऐब के साथ दुःख का फल देना। उनका कार्य है, कुशल से विरोध होना। उनका आकार है, कलुषित भाव। उनका समीप कारण है। अनुचित मनस्कार। अकुशल का संक्षेप वर्णन समाप्त।

(२७) अहेतुक चित्त में चक्षु विज्ञानादिकों के आश्रय वस्तुरूपों की उत्पत्ति का प्रकाशन

कलल १ हप्ताह, अर्बुद १ हप्ताह, पेशी १ हप्ताह, घनः १ हप्ताह प्रशाखः १ हप्ताह, परिपाक १ हप्ताह, चक्षु १ हप्ताह, श्रोत १ हप्ताह,

घ्राण १ हप्ताह, जिह्वा १ हप्ताह, ऐसा अर्थ कथा के मत के अनुसार १० हप्ताह, अर्थात् दो मास दश दिन में चक्षु आदि आयतन, पूरा होकर मनुष्यादि शरीराकृति का आविर्भाव होता है। मूलटीकाकार के मत के अनुसार कलल २ हप्ताह, अर्बुद २०, पेशी २०, घनः २०, प्रशाखः २ हप्ताह, चक्षुदशक, श्रोत०, घ्राण०, जिह्वादशक, प्रत्येक २ हप्ताह, ऐसा १४ हप्ताह, अर्थात् तीन मास आठ दिन में पूरा चक्षु आदि आयतन होकर मनुष्यादि शरीराकृति प्रकाशित होती है। केश, लोम, नख, ४२ हप्ताह में होते हैं।

कण्ठस्थ करने के लिये संयुत्तनिकाय का श्लोक निम्नलिखित है। "पथमं कललं होती कलला होति अब्बुदं। अब्बुदा जायते पेसि। पेसि निब्बत्तते घनो। घनापसाखा जायन्ति। केसा-लोमा नखापि च॥ घना पसाखा छायन्तीति पञ्चमे सप्ताहे द्विन्नं हत्थपादानं सीसस्सच त्थाय पञ्चपीढ़का जायन्ति। संयुक्त अर्थकथा॥ इतोपरंछट्ठ सत्तमादीनि सत्ताहानि अतिक्कम्म देसनं संखिपित्वा द्वाचत्तालीसे सत्ताहे परिणत कालं गहेत्वा दस्सन्तो केसाति आदि माह॥" संयुक्त अर्थकथा॥ इन सब पालि और अर्थकथा का सारांश यह है कि ५ वाँ हप्ताह में शिर, हाथ और पैर होते हैं। परन्तु सम्पूर्णता से अंगुलादि नहीं, सिर्फ़ शिर आदि के उत्पन्न होने के स्थान पर गोल सा उभरा हुआ ५ गाँठ होते हैं। ४२ हप्ताह में गर्भ परिपाक को लेकर केश, लोम और नखों की उत्पत्ति होती हैं। अर्थकथा के मत से १०वाँ हप्ताह,

मूलटीका के मत से १४ हप्ताह, से आरम्भ होकर ४२ हप्ताह के वीच में ही यथा योग्य होते हैं।

(२८) औरतों के बच्चा पैदा होने का प्रकाशन

आखिर जन्म लेने वाले बोधिसत्त्व की माता के अतिरिक्त अन्य जननीगण, नवमास या दश मास, तक गर्भधारण करके पैदा कर लेती हैं। "अञ्ञा इत्थियो नव वा दस वा मासे गब्भं कुच्छिनापरिहरित्वा विजायन्ति॥" महापदान सुत्त पालि॥ इस पालि में नववा दशवा मासे, में 'वा' शब्द का मतलब यह है कि नौ महीना या दस महीना से अलावा ७ महीना, ९ महीना, ११ और १२ महीना में भी पैदा होते हैं।" नववा "दसवाति एत्थवा सद्दस्स विकप्पन वसेन सत्त वा अट्ठ वा एकादस द्वादस वाति एव मादीनं सङ्गहो वेदितब्बो॥" अर्थकथा॥ जो सात महीने में होता है। वह जीता नहीं। आठ महीनेवाला जी भी सकता है नौ और दस, महीने वाले प्रायः जीते हैं। यह तो अर्थकथा का वचन है। नौ महीनेवाले बच्चे में केशादि अवश्य संपूर्ण होते हैं। इसलिए "नवमासिको हि गब्भो परिपुण्णोनाम होति केसलोमादिनिब्बत्तितो।" संयुत्त टीका में कहा है। इस प्रकार प्रकाशित किये हुए पालि अर्थकथा और टीकाओं के अनुसार सात महीने में पैदा होकर जीते हुए बच्चे में भी केशादि दिखाई देते हैं। नौ या दस महीने में पैदा हुए बच्चों में भी, डेढ़, या दो इंच प्रमाण केश, देखने में पाये जाते

हैं। इसलिये प्रतिसन्धि—जन्म ग्रहण दिन से नब्बे दिन अर्थात् तीन महीने से ही केशादि, मनुष्य-गर्भसेवकों को प्रारम्भ होते हैं, ऐसा समझना चाहिए। इस विषय में संसेदज, उपपत्तिक, से प्रतिसन्धि, ग्रहण करनेवालों को प्रतिसन्धिक्षण में सचक्षुक होना स्वाभाविक है। यदि न हुआ, तो जात्यन्ध है। अण्डज, जलाबुज अथवा जलायुज से प्रतिसन्धि लेनेवालों को अर्थकथा के मत से सातवाँ हप्ताह, टीका के मत से ग्यारहवाँ हप्ताह में चक्षु होने का समय, बाधक अकुशल कर्म के कारण न हुआ तो जात्यन्ध है। ७ वाँ हप्ताह, ११ वाँ हप्ताह पहुँच कर चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वाओं के क्रमशः होने के बाद जन्म के पहले माँ के पेट में ही क्रीड़ा या त्रिदोष आहारादि किसी कारणों से चक्षु आदि विकलङ्ग हो जाय तो जात्यन्धादि नहीं होता। इसका विस्तार ऊपर पञ्चवाँ परिच्छेद, प्रतिसन्धि, चतुष्क, छठवाँ परिच्छेद रूप, पवत्तिक्कम में देखिए। यह चक्षु विज्ञानादिकों का आश्रय चक्षुपसादादिकों का संक्षेप है। इन पाँच पसाद रूपों को आश्रय करके होनेवाले चक्षुविज्ञानादिकों के चार उत्पत्ति कारणों को निम्नलिखित क्रम से देख लीजिए।

चक्षु रूपगोचर चक्षु प्रसाद, आलोक, मनस्कार, श्रोत शब्दगोचर, श्रोत प्रसाद, आकाश, मनस्कार, घ्राण गन्धगोचर, घ्राण प्रसाद, वायोधातु, मनस्कार, जिह्वा रसगोचर, जिह्वा प्रसाद, आपो धातु, मनस्कार, काय स्पर्शगोचर, काय प्रसाद, पृथ्वीधातु, मनस्कार,	प्रत्येक के चार अङ्ग-कारण हैं।

इन चार अङ्गों से पूरा होने से ही चक्षु विज्ञानादि होते हैं। उनमें यदि एक भी कम हो तो नहीं हो सकते।

(२६) चक्षुविज्ञानादिकों के नाम और अर्थ प्रकाशन

"चक्खति रूपं अस्सादेन्तंविय होतीतिचक्खु। चक्खुस्मिं निस्सितं विञ्ञाणं, चक्खुविञ्ञाणं।" चक्षु प्रसाद रूप में आश्रय करके जो होता है, वह चक्षुविज्ञान है। जैसे सर्प उलझे हुए झाड़ी आदि स्थान में रहना पसंद करता है। वैसे ही अनेक विचित्र बेल-बूटे, रङ्ग-विरङ्ग रूपों को देख पाकर ही रमण करता है। विज्ञान के आधार होकर जो शब्द को श्रवण करता है, वह श्रोत है। श्रोत प्रसाद रूप में आश्रय करके जो होता है वह श्रोत विज्ञान है। जैसे घड़ियाल अथाह पानी में रहकर रमण करता है। वैसे ही ससम्भार कान के भीतर ताँबे के छल्लाकृति वाले श्रोत प्रसाद वस्तु में आश्रय करके रहना पसंद करता है। जो गन्ध के समीप होकर ग्रहण करता है वह घ्राण प्रसाद में आश्रय करके जो होता है वह घ्राण विज्ञान है। जैसे चिड़िया गगन में वायु वेग से उड़ती है वैसे ही वायु रूपी आश्रय मिलने से हो सकता है! जो, जीवितेन्द्रय, या आहार, रस, को पुकारता जैसे होता है वह जिह्वा है। जिह्वा प्रसाद रूप में आश्रय होके जो होता है वह जिह्वा विज्ञान है। वह पाले हुए घर के कुत्ता के समान है। जैसे पाला कुत्ता चूल्हे के बीच में राखी को कुदेर कर बैठे रहना ही पसंद करता है। वैसे

वह ससम्भार जीभ के बीच में छिन्न, कमलपत्ता आकृति वाले जिह्वा प्रसाद को आश्रय मिलने से ही हो सकता है। कुत्सित के शादिओं के उत्पत्ति स्थान होने के कारण काय है। काय प्रसाद रूप में जो आश्रय करके होता है वह काय विज्ञान है। वह जङ्गल के कुत्ता के समान है। जैसा वह सन्नाटे श्मशान में ही रमण करता है, वैसा वह स्पर्श गोचर को छू छाके रहने से ही प्रमोदित है। दो काय विज्ञान सुख सहगत और दुख सहगत, उनमें से सुख सहगत काय विज्ञान जो है। वह इष्ट स्पर्श गोचर में होता है। दुःख सहगत कायविज्ञान जो है। वह अनिष्ट स्पर्श गोचर में होता है।

(३०) दो सम्पतिच्छन चित्तों के स्वभाव का प्रकाशन

"पञ्च विज्ञान गहितं रूपादि आरमणं सम्पतिच्छति तदाकारप्पवत्तियाति सम्पतिच्छनं।" सम्पतिच्छन् चित्त जो है, वह चक्षु विज्ञानादि पाँच विज्ञान चित्त ग्रहण किये हुए रूपादि पाँच गोचरों को ही ग्रहण कर सकता है। "सम्मातीरेति यथा सम्पतिच्छितं रूपादि आरमणं वीमंसतीतिसन्तीरणं।" सन्तीरण चित्त जो है, वह सम्पतिच्छन चित्त ग्रहण लिये हुए रूपादि पाँच गोचरों को अच्छी तरह जाँच सकता है। इस अकुशल विपाक चित्त में जो तथा शब्द है। उससे चक्षुविज्ञान चित्त के समान, अन्य श्रोत, घ्राण, जिह्वा विज्ञान, चित्तों में भी उपादा-

रूप को आश्रय करके होने के कारण उपेक्षा ही है। काय विज्ञान चित्त जो है वह महाभूत को आश्रय करके उत्पत्ति के हेतु सुख और दुख भेद है ऐसा कहना पड़ता है। उपादा-रूप जो है, वह जैसा कि एक रूई राशि में दूसरी रूई से लगने के समान दुःख और सुख नहीं है। महाभूत जो है, वह रूई को निहाई में चढ़ाकर हथौड़ा से मारने में रूई को अति क्रान्त होके निहाई पर पहुँच कर शब्द निकलने के समान दुःख और सुख है ऐसा समझना चाहिए। इसलिये "उपादारूपकेनच उपादा-रूपकस्स संघट्टनं अति दुब्बलं। पिचुपिण्डकेन पिचुपिण्डकस्स फुसनंविय। भूतरूपेहिच भूतरूपानं संघट्टनं बलतरं। अधि-करणीमत्तके पिचुपिण्ड कंठपेत्वाकूटेन पहटकालेकूटस्स पिचु-पिण्डकं अतिक्कमित्वा अधिकरणीगहणं विय।" कहा है।

दो सम्पतिच्छन्न चित्त, काय विज्ञान के साथ अकुशल विपाक भाव से बराबर होते हुए भी उपेक्षा क्यों होता है? दो सम्पतिच्छन्न, जो है वद अपने से आश्रय वस्तु रूप असमाह चक्षु विज्ञानादि के वाद होने के कारण दुर्बल है। इसलिये इष्ट और अनिष्ट गोचरों में उपेक्षा ही होता है। जैसे-जैसे सम्पति-च्छन्न, उपेक्षा होता है वैसे कुशल विपाक सन्तीरण जो है वह उपेक्षा न होकर इष्ट मध्यत्त गोचरों में क्यों सुखोपेक्षा होता है। कुशल विपाक सन्तीरण जो है वह अपने के समान आश्रय रूप वाले कुशल विपाक सम्पतिच्छन्न चित्तों के बाद होकर बलवान् होने के कारण गोचरों के स्वाद को भोग सकता है।

इसलिये इष्ट और इष्ट मध्यस्त गोचरों में सुखोपेक्षा हो सकता। कुशल विपाक चित्त में सुखोपेक्षा भेद से जैसा दो सन्तरण हैं वैसा अकुशल विपाक में सन्तीरण क्यों नहीं होते? अकुशल विपाक में दौमनस्योपेक्षा सम्भव नहीं। अगर हो भी जाय, वह दौर्मनस्यवेदना बिना प्रतिध के नहीं हो सकती। प्रतिध जो है वह अकुशल जाति है। विपाक जो है वह अव्याकृत जाति है। दोनों परस्पर मिल नहीं सकते। इसलिये अकुशल विपाक में एक उपेक्षा सन्तीर्ण चित्त ही लब्ध है।

(३१) २ आवर्ज्जन चित्तों का स्वभाव प्रकाशन

कुशल विपाक सन्तीर्ण चित्त के समान, पञ्च द्वारावर्ज्जन चित्त जो है वह अपने से समान आश्रय वाले भवङ्गोपच्छेद के बाद होता है।. मनोद्वाराज्र्जन चित्त भी अपने से समान आश्रय वाले भवङ्गोपच्छेद और सन्तीर्ण चित्तों के बाद होता है। समानाश्रय वाले चित्तों से अनन्तरणाच्चय रूपी मदद मिलता है; मिलने से गोचरों के स्वाद को भोग सकता है। सुखोपेक्षा होने के योग्य होते हुये भी क्यों उपेक्षा ही होता है? दोनों में से पञ्च द्वारावर्ज्जन जो है, वह कोई वीथिचित्त न लिये हुए ही गोचर होता है। और इसमें भी अनेक बार होने न पाकर एक बार ही, इन दो कारणों से दुर्बल है। अतः गोचर के स्वाद को नहीं भोग सकता। इसलिये उपेक्षा होता है। मनो द्वारावर्ज्जनतो पञ्चद्वारावर्ज्जन माफ़िक नहीं है। वीथिचित्त लिये

हुए गोचर को भी लेकर इसमें अनेक वार हुआ, और गोचर के स्वाद को भोगने में अपेक्षित नहीं। विजातिय जवन चित्त या भवङ्ग चित्तों के क्रम को अनन्तर पच्चयादि सहायता से अवकाश देना पड़ता है। इसलिये गोचरों के स्वाद को न भोगकर उपेक्षा सहगत होता है। मनोद्वारावर्ज्जन चित्त जो है, वह पञ्च द्वार में वोट्ठब्बन नाम से दो या तीन चार होता है। मनोद्वार ही तो एक बार होता है।

(२९) हसितोत्पादक चित्त के स्वभाव का प्रकाशन

"हसितं उप्पदितीति हसितुप्पादं।" जो बहुत ही मंद हास को कराता है, वह हसितोत्पाद चित्त है। अलंकार ग्रन्थ, हास प्रकाशन के विषय में, स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित, अतिहसित, छः भेदों में से पहला स्मित, और हसित, दो ही हसितोत्पाद हैं। शेष नहीं।

थोड़ा सा आँख खुलने तक हँसना स्मित, थोड़ा सा दाँत दिखलाने तक हँसना हसित, मंद आवाज़ होने तक हँसना विहसित, शिर हिलने तक हँसना उपहसित, आँसू गिरने तक हँसना अपहसित, शरीर को आगे पीछे विचलित होने तक हँसना अतिहसित कहलाता है। इनमें से पहले दो बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, अर्हन्तादि उत्तम पुद्गलों में होते हैं। बीचवाले दो कल्याणपृथग्जन और शैक्षों में होते हैं। आख़िर दो अन्य नीचवालों में होते हैं। पृथक्जन ४ लोभमूल सौमनस्य, और

४ महाकुशल सौमनस्य, इन आठ सौमनस्यचित्तों से हँसते हैं। शैक्षगण, २ लोभमूल सौमनस्यविप्रयुक्त, ४ महाकुशल सौमनस्य, इन छः चित्तों से मुसकराते हैं। बुद्ध, अर्हन्त, और प्रत्येक बुद्धगण १ सौमनस्य हसितोत्पाद और ४ महाक्रिय सौमनस्य, इन पाँच चित्तों से मुसकराते हैं। अथवा बुद्ध, १ सौमनस्य हसितोत्पाद और २ महाक्रिय ज्ञानसम्प्रयुक्त सौमनस्य, इन तीन चित्तों से मुसकराता है। बुद्धों को हसितुप्पाद, जवनचित्तकंव होता है? पूर्वनिवासज्ञान, अनागतांसज्ञान, सर्वज्ञज्ञान, इन तीनों को मनन करने के बाद होता है। "हसितुप्पाद चित्तेन पन पवत्तियमानम्पि तेसं सितकरणं पुब्बेनिवास–अनागतंस–सब्बञ्ञुतञ्ञानानं अनुवत्तकत्ताञाणानु परिवत्ति येवाति। पृथु-ज्जना हसन्तेत्थ। चित्तेहिपन अठहि। छहि सेक्खा असेक्खातु। चित्तेहि पन पञ्चहि।"

(३०) वेदना, हेतु आदि छः प्रकारों से संग्रह प्रकाशन

अठारह अहेतुक चित्त, दुःख, सुख, सौमनस्य और उपेक्षा चार वेदनावाले हैं। अहेतुक होने के कारण, हेतु से गिना नहीं जा सकता। कार्य से दर्शन, श्रवण, घ्राण, चाटना, स्पर्श, सम्पटिच्छन्न, सन्तीर्ण, वोट्ठब्बन, जवन, तदालम्बन, प्रतिसन्धि, भवङ्ग, च्युति, आवर्ज्जन, १५ हैं। कार्य तो १४ ही है। इसमें मनोद्वारावर्ज्जन जो है वह ४ पञ्चद्वार में बोट्ठब्बन, और मनो-द्वार में आवर्ज्जन का कार्य करता है। इसलिये १५ हुआ,

असल में १४ ही है। द्वार से सौमनस्य सन्तीर्ण, मनोद्वारावर्ज्जन हसितोत्पादि छः द्वार में होते हैं। दो उपेक्षासन्तीर्ण, कभी छः द्वारिक और कभी विमुक्त हैं। चक्षुविज्ञानादि दशचित्त, प्रत्येक अपने अपने द्वार में होते हैं। दो सम्प्रतिच्छन्न, और पञ्चद्वारा-वर्ज्जन, यह तीन मनोधातु पाँच द्वारिक हैं। गोचर से, १० पाँच विज्ञान, ३ मनोधातु पञ्चारमणिक हैं। ३ सन्तीर्ण, १ हसितो-त्पाद कामारमणिक हैं। मनोद्वारावर्ज्जन, सर्वारमणिक है। वस्तु-आश्रय से १० पाँच विज्ञान, पाँच प्रसाद आश्रय हैं। ३ मनोधातु, ३ सन्तीर्ण, १ हसितोत्पाद, हृदयाश्रय हैं। मनो-द्वारावर्ज्जन, कभी उसको आश्रय और कभी नाश्रय है।

(३१) अशोभनचित्तों की मिश्रित संख्या का प्रकाशन

पूर्व कथित १२ अकुशल, १८ अहेतुक, यह तीस अशोभन हैं। "सुट्ठुभवन सोभनं, अलोभादिअनवज्जहेतुसम्पयोगतो।" अलो-भादि द्वेष रहित हेतुओं से युक्त होने के कारण शोभन है। इसके विपरीत नशोभनं, अशोभनं, दोषरहित तीन हेतुओं से युक्त न होने के कारण अशोभन है। दुःख सहगत १, सुख, सहगत १, सौमनस्य सहगत ६, दौर्मनस्य सहगत २, उपेक्षा सहग २०, कुल ३० अशोभनचित्त है। अथवा, दौर्मनस्य को दुःख, सौमनस्य को सुख, में प्रवेशकर, दुःखसहगत चित्त, ३, सुख, सहगत चित्त ७। उपेक्षा सहगत चित्त २०, ऐसा भी ३० अशोभन है। अथवा दुःखसहगत ही होकर, सम्प्रयुक्त

न होनेवाला १, सम्प्रयुक्त ही होकर दुःखसहगत न होनेवाला ८, दो होनेवाला, नहीं, दो न होनेवाला २१, अथवा, एक हेतुक-चित्त २, द्विहेतुकचित्त १०, अहेतुक १८, ऐसा भी ३० गिन लो। अथवा, विप्रयुक्त २२, सम्प्रयुक्त ८, ऐसा भी ३०। अथवा ससांस्कारिक ५, असांस्कारिक २५, ऐसा भी ३० गिन लो। अशोभन समाप्त।

(३२) कामावचर कुशलचित्त के पूर्वस्थापन का प्रकाशन

अशोभन से अन्य उनसठ, या एकान्नवे, शोभनचित्तों में से कामावचर शोभन को प्रथम प्रकाशित करें। कामावचर, शोभन, रूपावचर शोभन, अरूपावचर शोभन, लोकोत्तर शोभन, चित्तों में से कामावचर शोभन को क्यों प्रारम्भ में रखा है? शोभनों में से कामावचर शोभनों को ही उद्देश—मातिका, में प्रथमोद्देश किये जाने के कारण कहा है। अथवा कामावचर शोभनों में से अव्याकृतभूत विपाक और क्रिया चित्तों से कुशल प्रधान, होने के कारण कुशल को ही प्रथम कहा है। अथवा शोभन-चित्तों के उत्पत्तिस्थान, काम, रूप, अरूप, अवस्था, लोकक्रम के ऊपर और नीचे विभाग में से, कामलोक रूपी नीचे स्थान में प्रथमोत्पत्ति होने के कारण पहला कहा है। इसके बाद, हेतु और फल, क्रम से कुशल रूपी कारण के कार्य-फलभूतविपाक चित्त को, और कुशल, विपाक के अनन्तर उत्पत्ति लोकान्तर्गत

होने के कारण क्रियचित्त को कहा है। अथवा, रूपकुशल, अरूपकुशल, लोकोत्तर कुशल भी, अव्याकृतभूत, विपाक, और क्रियचित्तों के पूर्वगामी होने से, उनको भी पहला कहना चाहिए, रूपकुशलादिचित्त, अव्याकृतभूत विपाक और क्रियाओं के पूर्वगामी तो हैं ही, परन्तु वह भी कामावचर कुशल ही आधार है। उसी को आश्रय लेकर होते हैं। इसलिये कामावचर कुशल को हीं पहला कहा है।

सुख होकर सम्प्रयुक्त न होने वाला ६॥ सम्प्रयुक्त होकर सुख न होने वाला ६॥ दोनों होने वाला ६॥ इसके उलटा ६ ऐसा भी॥ २४॥ सुख होकर विप्पयुक्त न होने वाला ६॥ विप्पयुक्त होकर सुख न होने वाला ६॥ न होने वाला ६॥ ऐसा भी २४॥ सुख होकर असंखारिक न होने वाला ६ असंखारिक होकर सुख न होने वाला ६दोनों होनेवाला ६॥ न होने वाला ६॥ ऐसा भी २४॥ सुख होकर ससंखारिक न होने वाला ६ ॥ इसके उलटा ६ ॥ दोनों होने वाला ६ ॥ दोनों न होने वाला ६ ॥ ऐसा भी २४ ॥ यह तो सुख को प्रधान करके गिनने का तरीका है। इस तरह उपेक्षा प्रधान में भी सम्पयुक्त, विप्पयुक्त, असंखारिक, ससंखारिक, को प्रवेश कर गिन लीजिए। सम्पयुक्त और विप्पयुक्त, प्रधान में सिर्फ़ असंखारिख और सस ंखारिक को ही प्रवेश कर गिन लीजिए।

(३३) समान जाति को मिलाकर संख्या का प्रकाशन

काम अकुशल और कुशल	२०	काम चित्त ५४ हैं।
काम विपाक	२३	
काम क्रिय	११	

अहेतुक चित्त	१८	काम चित्त ५४ हैं।
एक अहेतुक चित्त	२	
द्विहेतुक चित्त	१२	
त्रिहेतुक चित्त	१२	

अहेतुक चित्त	१८	काम चित्त ५४ हैं।
सहेतुक चित्त	३६	

अशोभन चित्त	३०	काम चित्त ५४ हैं।
शोभन चित्त	२४	

पञ्चविज्ञान द्विक	१०	काम चित्त ५४ हैं।
मनोधातुक	३	
मनोद्वाराज्र्जन	१	
काम जवन चित्त	२९	
तदालम्बन चित्त	११	

पञ्चविज्ञान द्विक	१०	काम चित्त ५४ हैं।
सम्प्रतिच्छन्न	२	
सन्तीर्ण	३	
आवर्ज्जन चित्त	२	
कामजवन चित्त	२९	
तदालम्बन महाविपाक	८	
दुःख सहगत चित्त	१	काम चित्त ५४ हैं।
सुख सहगत चित्त	१	
दौर्मनस्य सहगत चित्त	२	
सौमनस्य सहगत	१८	
उपेक्षा सहगत चित्त	३२	

सुख ही होकर सम्प्रयुक्त न होने वाला चित्त ११॥ सम्प्रयुक्त ही होकर सुख न होने वाला चित्त १२॥ दोनों होने वाला ८॥ दोनों न होने वाला १३॥ ऐसा भी ५४। अर्थात् सुख प्रधान में सम्प्रयुक्त, विप्प्रयुक्त, असांस्कारिक, ससांस्कारिक, इन चार को प्रवेश कर लो। इसके समान दुःख सहगत प्रधान, उपेक्षा सहगत प्रधान में भी उन चार को ही प्रवेश कर लो। फिर सम्प्रयुक्त प्रधान, विप्प्रयुक्त प्रधान में केवल असांस्कारिक और सासांस्कारिक दोनों को ही प्रवेश कर गिन लो। मतलब यह है कि सुख प्रधान में ४॥ दुःख प्रधान में ४॥ उपेक्खा प्रधान में ४॥ सम्प्रयुक्त प्रधान में २॥ विप्पयुक्त प्रधान में २॥ यह सोलह प्रकार, पहला सात प्रकार, दोनों मिलाकर २३ तरीका है।

(३४) कामावचर कुशल चित्त को गुना करने का प्रकाशन

"इमानि अठपि" में, पि, शब्द से आठ का भावचर कुशल को दश पुञ्ज क्रिया से गुना करे तो ८० होता है। उसको ६ गोचरों से गुना करे तो ४८० होता है। उसको दो हिस्सा बना लिया जाय तो प्रत्येक २४० होता है। उसको विमंसाधिपति से अन्य तीन अधिपतियों से गुना करे तो, ७२० ज्ञानविप्प्रयुक्त होता है। दूसरा हिस्सा २४० को चार अधिपति से गुना करे तो ९६० ज्ञानसम्प्रयुक्त होता है। ७२०+९६० दोनों को मिला लें तो १६८० होता है। उसको कायकर्मादि तीनों से गुना करे तो, ५०४० होता है। उसको भी हीन, मध्यम, उत्तम तीनों से गुना करे तो १५१२० होता है। यह तो विभावनी टीकाकार का मत है। अभिधम्मावतार टीकाकार बुद्धदत्तमहाथेर के मत के अनुसार सम्प्रयुक्त और विप्प्रयुक्त मिला कर ४८० को क्रमशः गुना करने से १७२८० होता है। काल, देशादि से गुना करे तो अप्रमेय है। "कमेनपुञ्जवत्थुहि। गोचराधिपतीहिच। कम्महि-नादितोचेव, गणेय्य नयकोविदो।" "विभावनी टीका। सत्तर-ससहस्सानि, द्वेसतानिअसीति च। कामावचर पुञ्ञानि, भव-न्तीति विनिद्दिसे॥ अभिधम्मावतार॥

(३५) महाविपाक चित्त को गुना करने का प्रकाशन

आठ महाविपाक चित्तों को छः गोचरों से गुना करे तो ४८, होता है। उसको हीनादि तीनों से गुना करे तो (१४४)

होता है। महाकुशल चित्त के ऐसा दश पुण्य क्रियों से गुना नहीं किया जाता। उसके फलचित्त होने के कारण, सहजाताधिपति न होने कारण, अधिपति से भी गुना नहीं किया जाता। कर्म के वश न होने के कारण कर्म से भी गुना नहीं किया जाता। "गोचरेनहीनादीहि। गणेय्यनयकोविदो॥" कामावचर विपाक जो है वह अपने कारणभूत कुशल से समान भी होता है, भिन्न भी। "यस्मा कामावचर विपाकं अत्तनो कुसलेनसदिसम्पि तस्मानतं कुसलानुगतिकं कत्वाभाजितं॥" अठ्ठसालिनी। महाक्रियाचित्त जो है, वह महाकुशलचिच के समान है। विभावनी टीकाकार के मत से (१५१२०) अभिधम्मावतार टीकाकार के मत से (१७२८०) होता है।

(३६) कुशलोत्पत्ति के कारण का प्रकाशन

"पतिरूपदेसवास-सप्पुरिसूपनिस्सय-सद्धम्मसवन-पुब्बेकतपुञ्ञतादीहि उपनिस्सयेहि योनिसो आभोगो पवत्तति। तस्स इमिना नियमितवसेन परिणामितवसेन समुदाचारवसेन आभूजितवसेन च कुसलं नामजातं होति॥" उचितस्थाननिवास, संतसेवन, धर्मश्रवण, पूर्वकृत पूण्यतादि, आश्रयों से योग्य मनस्कार होता है। उस योग्य मनस्कार वाले को कुशल होता है, कैसे? इष्टगोचर मिलते समय हमको कुशल ही करना चाहिए। ऐसा लक्षित चित्त के कारण, पूर्व विचार के अनुसार कुशल में झुकाया हुआ चित्त के कारण, अनेक वार अभ्यासकृत उत्पादित किये जाने के

कारण, हमको कुशल काम में ही उत्साहित होना चाहिए और अकुशल से दूर रहना चाहिए। ऐसे एक मनस्कार से, चार कारणों से कुशल होता है।

(३७) सौमनस्य और उपेक्षा का अङ्ग प्रकाशन

इष्टगोचरप्राप्तता, श्रद्धाबाहुल्य, विशुद्धदृष्टिता, कुशलफल-दर्शनशीलता, यह चार सौमनस्य का अङ्ग है। बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, संघानुस्मृति, शीलानुस्मृति, त्यागानुस्मृति, देवतानु-स्मृति, उपसमानुस्मृति, चण्डपुद्गल वर्जन, नम्रपुद्गलसेवन, प्रसादनीयसूत्रमनन, सौमनस्योत्पत्तिनमनचित्तता, यह ग्यारह भी महाकुशल सौमनस्य का अङ्ग है। उचित काल, सौ देश, पूजनीय-वस्तु, ग्राहक, बहुमित्रता, पवित्रश्रद्धा, विगतमिथ्यादृष्टि, कार्यज्ञान, सौमनस्यप्रतिसन्धिता, यह नौ भी सौमनस्य के अङ्ग हैं। उपेक्षा का अङ्ग इसके उलटा जानिए। अथवा इष्टमध्यत्तगोचरता, उपेक्षा-प्रतिसन्धिकता, गम्भीरस्वभावता, इन तीनों को भी उपेक्षा का अङ्ग जानिए।

(३८) ज्ञानसम्प्रयुक्त और ज्ञान विप्पयुक्त के भेद भाव का प्रकाशन

कर्म, उपपत्ति, इन्द्रियपरिपाक, क्लेश दूरीभाव, अर्थात् अनवद्य जीवन निर्वाह के हेतुभूत कृषि, वाणिज्य, दीर्घायु के कारणभूत आयुर्वेदादि शिक्षाप्रदान, प्राज्ञावान् होने के लिये प्रार्थना-

पूर्वक दान और शीलादि करना कर्म है। दोषरहित ब्रह्मलोकोत्पत्ति ही उपपत्ति है। प्राज्ञा अवस्था वालों को इन्द्रिय के परिपाक—स्थिरता को आश्रय होकर ज्ञानसम्प्रयुक्त कुशलोत्पत्ति ही इन्द्रिय परिपाक है। योगाभ्यास वाले को तृष्णादि क्लेशों से दूर होकर ज्ञानसम्प्रयुक्त कुशलोत्पत्ति ही क्लेश से दूर होता है।

(३९) अथवा ज्ञानसम्प्रयुक्त होने के सात हेतु का प्रकाशन

धर्म सम्बन्धी बातों में प्रश्नशीलता, आत्मा-शरीर के भीतर और बाहर की परिशुद्धि, श्रद्धा और प्रज्ञा, वीर्य, और समाधिओं के समानता करन, दुष्प्राज्ञपुद्गलपरिवर्जन, प्राज्ञावन्तपुद्गलसेवन, गम्भीर ज्ञान से अन्वेषित शिक्षाओं का चिन्तन, धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग, अर्थात् धर्मान्वेशन में ही चित्तस्थापन, यह सात, पहला चार, कुल ग्यारह महाकुशल ज्ञानसम्प्रयुक्त के अङ्ग हैं। इसके विपरीत-उलटा विप्रयुक्त जानिये।

(४०) महाकुशल के असांस्कारिक ससांस्कारिक अङ्गभेद का प्रकाशन

विगतमत्सरता से दातव्य वस्तु का त्यागना प्रेरणा रहित होकर दानादि पुण्य करना, योग्य निवासस्थान, भोजन, और मौसिम मिलने से आरोग्यता, पूर्वजन्मकृतपुण्यता, यह चार असांस्कारिक के अङ्ग हैं। इसके उलटा ससांस्कारिक के।

(४१) सौमनस्य और उपेक्षाओं के भेद का प्रकाशन

आठ महाकुशल चित्तों में संक्षेप से चार सौमनस्य से चार उपेक्षा बलवान है। ४ ज्ञानविप्रयुक्त से ४ ज्ञान सम्प्रयुक्त बलवान् है। ४ ससांस्कारिक से ४ असांस्कारिक बलवान् है। उपेक्षा जो है वह विदर्सना-ज्ञान के लिये अत्यन्त उपकार है। इसलिये बलवान् कहा है। विस्तार से सौमनस्यकुशल चार है। निकृष्ट द्विहेतुकुशल, उत्कृष्ट द्विहेतुकुशल, निकृष्ट त्रिहेतुककुशल, उत्कृष्ट त्रिहेतुककुशल। उपेक्षा कुशल भी उसके समान चार हैं। जैसा ऊपर सौमनस्य में। दानपुण्य के विषय में यदि दोनों निकृष्ट द्विहेतुक ही हों तो यथानुलोम सुत्तन्त के मत से, सौनमस्य कुशल जो है वह अधिकाधिक प्रीति प्रमोदित अभिक्षण होने से फिर भी दानपुण्य सुकर होने के कारण बलवतर है। यथार्थ धर्म अभिधर्म के मत से उपेक्षा कुशल ही कुशल कर्म में तीक्ष्ण अत्योत्तम हो के शान्त के कारण श्रेष्ठ है। फल प्रदान के विषय में सौमनस्य कुशल का फल प्रभावान्वित और चमत्कार सुन्दर-वान् होता है। स्थिर कम है। उपेक्षाकुशल का फल प्रभा और चमत्कार सुन्दर-रहित है फिर भी स्थिर है। द्विहेतुक उत्कृष्ट और त्रिहेतुक निकृष्ट कुशलों में भी उस तरह का है जैसा ऊपर लिखा है। तिहेतुक उत्कृष्ट में सौमनस्य कुशलवाला श्रद्धा और प्राज्ञा दोनों सें श्रद्धा अधिक है। लाभ, अलाभादि लोक-धर्मों से संसर्ग होने के काँपता है। उपेक्षा कुशल, वाला प्राज्ञा

अधिक है। लोकधर्मों से नहीं काँपता। निकृष्ट जितने कुशल हैं, वह लोभ, दोष, और मोह हेतुओं से आगे पीछे परिवारित हैं। उत्कृष्ट जितने कुशल हैं, वह अलोभ, अदोष, और अमोह कुशल हेतुओं से परिवारित हैं। इसका विस्तार पाँचवें परिच्छेद कामावचर कुशल प्रतिसन्धि चतुष्क में देखिए।

(४२) सौमनस्य और उपेक्षा का फलप्रदान, तथा नीच, उच्च का प्रकाशन

संसार में अनेक देश और अनेक नगर हैं। सब देश और नगरों में गरीब और अमीर दोनों होते ही हैं। उनमें भी दो भेद हैं—श्रद्धा गरीब, दौलत गरीब, अमीरों में भी श्रद्धा अमीर, दौलत अमीर। इन दोनों का विशेष, जिन्होंने पूर्व जन्म में नाना प्रकार के दातव्य वस्तुओं को स्वयं ही श्रद्धापूर्वक आदर के साथ त्याग किया अथवा दिया, वह इस जन्म में धनवान् या अमीर होता है। यह सौमनस्य का फल है। जिन्होंने अतीत-काल में दान तो किया जरूर, परन्तु स्वयं नहीं, अपना भाई, बहिन और दास-दासियों से दिलाया। वह इस जन्म में धनवन्त—मालदार होता है। यह उपेक्षा का फल है। जो सौमनस्य के फल से अमीर होता है वह अन्य अमीरों से सुन्दर, चमत्कार, प्रभायुक्त अनेक मनोरंजक द्रव्यों से संपूर्ण होता है। उपेक्षा फलवाले को इसके उलटा जानिए। वह तो केवल अमीर नाममात्र का है। दोनों अमीरों में से श्रद्धा अमीरवाला दौलत

अमीर से उत्तम है। यदि दोनों हो, तो अत्योत्तम है। जिन्होंने अतीत काल में न स्वयं दान पुण्य किया और न अपना भाई, बहिन और दास, दासियों से कराया, वह इस जन्म में गरीब होता है। दोनों गरीबों में से दौलत गरीब जो है। वह दौलत न होते हुये भी श्रद्धा हो तो, श्रद्धा—गरीब से उत्तम है। यदि श्रद्धा और दौलत, दोनों का गरीब हो, तो अति ही निकृष्ट है। इन दोनों का विस्तार प्रमाण पालि ग्रन्थों में अनेक जातक आदि है। रामलीला, दीपावली आदि त्योहारों में कोई कोई श्रद्धा से आनन्द और प्रमोदित के साथ पूजा पाठ करते हैं। ऐसा किया हुआ कुशल सौमनस्य है। कोई कोई तो दूसरों के कहने से अथवा लज्जा से, इच्छा न होते हुए भी करना पड़ता है। ऐसा किया हुआ कुशल उपेक्षा है। प्रायः उपेक्षा कुशल, माता, पिता, भ्राता, भगिनी, स्त्री, पुत्रादि, मृत्यु संस्कारादि कर्मों से होता है। इस प्रकार ऊपर लिखित बातों से इन दोनों का फल प्रदान और नीच-उच्च का भेद-विस्तार करके जानिए।

(४३) कामावचर कुशल में, 'महा' शब्द लगाने का प्रकाशन

रूपकुशल जो है वह रूपलोक, और रूप विपाक फल को ही दे सकता है। अरूपकुशल भी अरूप लोक, और अरूप विपाक फल मात्र को ही दे सकता है। लोकोत्तर में भी श्रोतापत्ति मार्ग कुशल, श्रोतापत्तिफल को, सकृतागामि मार्ग-

कुशल, सकृदागामि फल को, अनागामि मार्ग, अनागामि फल को, अर्हत्तमार्ग, अर्हत्त फल को दे सकता है। इसलिये रूपकुशलादि जो है वह फल देने में संक्षेप होने के कारण, 'महा' शब्द नहीं पाता। कामावचर कुशल जो है, वह, प्रतिसन्धि से नौ, लोक-वश सात-तक फल दे सकता है। ऐसा फल देने के विषय में विस्तार होने के कारण, 'महा' शब्द लगाया है। अथवा, अकुशल, अहेतुक, इन तीस अशोभन चित्तों से बड़ा और श्रेष्ठ होने के कारण भी, अथवा ध्यान, और मार्ग वीथि आदि में ज्ञानसम्प्रयुक्त कामावचर ही, परिकर्म, उपचार, अनुलोम, गोत्रभू, वो दानादि नामों से पूर्वगामी होने के कारण भी। महाविपाक और महाक्रिय चित्तों में इनके ही फल और क्रिया होने के कारण, महा शब्द लगाया है। एक और प्रश्न है। सहेतुक शब्द, कामावचर कुशल में न जोड़ कर, विपाक, क्रिया में क्यों जोड़ा है? विपाक और क्रिया में अहेतुक, सहेतुक का संदेह था, इसलिये जोड़ा अथवा लगाया, कुशल में संदेह असम्भव था, इसलिये नहीं लगाया!

(४४) दो आवर्ज्जनचित्त और महाक्रियाओं के विशेष का प्रकाशन

महाक्रिया चित्त जो है वह संसार क्षयवाले बुद्ध और अर्हन्त प्रत्येक बुद्धों में ही होने के कारण कुशल जैसे फल देता नहीं,

करणमात्र ही है। यदि क्रिया चित्त बुद्धादि जन्म त्तयवालों में होने के कारण फल नहीं देता, तो शैक्ष, पृथक्जनों में उत्पन्न आवर्ज्जनद्वय, क्रियचित्त, फल देता है या नहीं? आसवेनपच्चय, न मिलने के कारण फल नहीं देता। जैसे:—गरमी के मौसिम में हवा के ज़रिये से पुष्पित और फलित, फूल और भल की तरह निरर्थक—बेकार है। क्रियाचित्त, आसवेनपच्चय को तो मिलता है। क्यों फल नही देता? संसारच्छेद बुद्धादि में ही होने के कारण फल नहीं देता। जैसा फलफूल और पत्ती अङ्कुरों को धारण करनेवाले बहुत बड़े पेड़ होते हुए भी धड़ समेत कुल जड़ कट जाने से फूल आदि नहीं हो सकते।

(४५) वेदना, हेतु, कृत्य, द्वार, आलम्बन वस्तुओं के विभाग का प्रकाशन

कुल २४ कामावचरचित्त, सौमनस्य और उपेक्षाभेद से दो वेदना है। अलोभ, अदोष, अमोह, भेद से तीन हेतु, किच्च-कार्य से कुशल और क्रिया जवनकिच्च, और छः द्वारिक है। विपाक चित्त, प्रतिसन्धि, भवङ्ग च्युति होते समय छः द्वार विमुक्त और तदालम्बन होते समय छः द्वारिक है। आलम्बन गोचर से ज्ञानविप्रयुक्त कुशल और क्रियचित्त, लोकोत्तरवर्जित सर्वारमणीक है। ज्ञानसम्प्रयुक्त, कुशलचित्त, अर्हत्तमार्ग और फलवर्जित सर्वारमणिक है। ज्ञानसम्प्रयुक्त क्रियचित्त सर्वा-

रमणीक है। विपाकचित्त, कामारमणिक है। विपाक चित्त हृदय वस्तु पर ही आश्रित है।

कामावचर कुशल, कुत्सित पापों को तदङ्गप्रहान से हटा देता है।		पाँच पहान हैं
महग्गत कुशल,	० विक्खम्भनप्रहान से हटा देता है	
चार मार्ग चित्त,	० समुच्छेदप्रहान से हटा देता है	
चार फल चित्त,	० प्रतिप्पस्सम्भनप्रहान से हटा देता है	
निर्वाण	० निस्सरणप्रहान से हटा	

तदङ्गविवेक, विक्खम्भनविवेक, समुच्छेदविवेक, प्रतिपस्सम्भनविवेक, निस्सरणविवेक, इन पाँच विवेकों में भी प्रहान की तरह कामावचरकुशलादियों से जोड़ लीजिए। कुशल, अनवद्य-सुखविपाक लक्षण है। अकुशल विद्धंशन कार्य है। परिशुद्धा-कृति है। योग्य मनस्कार प्रधान है। (कामावचरशोभन समाप्त)

(४६) रूपावचर चित्त की संख्या का प्रकाशन

१	कुशल ५ विपाक ५ क्रिया ५	४ १२	सौमनस्यध्यान १२ उपेक्षाध्यान ३		१५—एक से चार नम्बर तक अच्छी तरह गिन लो और ससांस्कारिक, और सम्प्रयुक्त आवश्य समझ लो।

२	प्रथम ध्यान	३	१५	कष्ट, तप, करके मन्द से जानना	दुक्खपटिपदादन्धाभिञ्ञा
	द्वितीय ध्यान	३		कष्ट तप करके क्षिप्र जानना	दुक्खपटिपदाखिप्पाभिञ्ञा
	त्रितीय ध्यान	३		सुख से तप करके मन्द से जानना	सुखपटिपदादन्धाभिञ्ञा
	चतुर्थ ध्यान	३		सुख से तप करके क्षिप्र जानना	सुखपटिपदाखिप्पाभिञ्ञा
	पञ्चम ध्यान	३		अल्पगोचर, अल्पानुभाववाला	परित्तं, परित्तारमणध्यान
				अल्पगोचर, अप्रमाणानुभाववाला	परित्तं अप्पमाणारमणध्यान
३	५ अङ्गवाला ध्यान ३		१५	अप्रमाणगोचर, अल्पानुभाववाला	अप्पमाणंपरित्तारमणध्यान
	४ अङ्गवाला ध्यान ३			अप्रमाणगोचर, अप्रमाणानुभाववाला	अप्पमाणंअप्पमाणारमणध्यान
	३ अङ्गवाला ध्यान ३			आत्मशून्य होके संयोजन से मुक्त	सुञ्ञतविमोक्खध्यान
	२ अङ्गवाला ध्यान ३			नित्यनिमित्तरहितहोके संयोजनसे मुक्त	अनिमित्तविमोक्खध्यान
	२ अङ्गवाला ध्यान ३			आशा रहित होके संयोजन से मुक्त	अप्पणिहित विमोक्खध्यान

चार पटिपदा, चार आरम्मण, तीन विमोक्ख, ध्यानों को लिखित क्रमानुसार जान लीजिए। रूपावचर ध्यान, चतुष्क, पञ्चक, दो भेद होते हुए भी चतुष्क जो है पञ्चक में ही शामिल है। इसलिए पञ्चक को ही अभिधर्मार्थसंग्रह कारक ने कहा है। इसमें भी गुना करने की विधि है। परन्तु विस्तार के भय, पाठकों को लाभदायक न होने के कारण उपेक्षित करता हूँ।

(४७) रूपविपाकादियों से कुशल का समानभाव प्रकाशन

रूपावचर विपाक जो है। वह जैसा कि हाथी, पर्वत, मनुष्यादिकों की छाया हाथी आदि के समान होता है। वैसा रूपावचर कुशलोत्पादित फलभूत विपाक को भी कारण भूत ध्यान के तुल्य पञ्चङ्गिक प्रथम ध्यान विपाक आदि से विभाग किया जाता है। इसलिये समान होता है। आगे आनेवाले अरुप विपाक और लोकोत्तर फल चित्तों में भी इसके समान जानिए।

रूपावचर ध्यान को उद्योग करने से भी सब कोई नहीं पा सकता, त्रिहेतुक वाला ही पा सकता है तो भी कर्मादि पाँच बाधक रहित हो तो पा सकता है। बाधक पाँच निम्न लिखित है, कर्मान्तराय, किलसान्तराय, विपाकान्तराय, उपवादान्तराय, आणा-वितिक्कमान्तराय, मातुघातक, पितुघातक, अर्हन्तघातक, लोहितुप्पादक, बुद्ध में रक्तोत्पादन, संघभेदक, भिक्खुनी-दूसक, यह छः कर्म अन्तराय—बाधक हैं। अर्थात् त्रिहेतुक होते हुए भी माता

आदि हत्या काम किया हो तो, ध्यान नहीं पा सकता। नित्य मिथ्या दृष्टि किलेसान्तराय है। पण्डक, उभयव्यञ्जन, तिरच्छान, अर्थात्, नपुंसक तिर्यक् ही विपाकान्तराय है। भवविमुक्त अर्हन्तादि आर्य्यों में अपवाद करना, उपादान्तराय है। यह तो क्षमा माँगने से मुक्त होता है। बुद्ध भिक्खुओं के लिये विनय विरुद्ध आचरण करना, आणावितिकमान्तरय है। यह भी विनय कर्मानुसार करे तो मुक्त होता है।

(४८) अपना और ध्यान, नाम विभाग का प्रकाशन

कसिणादि गोचर में प्रवेश होने के कारण वितर्क ही अवश्य अपना है। शेष महग्गतु लोकोत्तर जवन चित्त भी वितर्क्क प्रधानता से होने के कारण अपना कहा जाता है। ध्यान जो है वह सामूहिक नाम है। वितर्कादि अवयव ध्यान नहीं। केवल ध्यान के अङ्ग मात्र है। जैसा कि, रथ, घर इत्यादि। ध्यान दो हैं। आरम्भणूपनिज्झान ध्यान, लक्खणूपनिज्झान—ध्यान, इनमें से आठ समापत्ति, आरम्भणूपनिज्झान ध्यान है। विपस्सना, मार्ग और फल लक्खणूपनिज्झान ध्यान है। रूपावचर कुशल में आरम्भणूपनिज्झान ध्यान को ही चाहिए।

(४९) दो पञ्चमध्यान अभिज्ञान का विशेष प्रकाशन

रूपावचर कुशल और क्रिया पञ्चम ध्यान को दो अभिज्ञान जान लीजिए। प्रथम ध्यानादि लब्धमात्र से अभिज्ञान नहीं हो

सकता। पञ्चम ध्यान प्राप्त होने से अभिज्ञान होता है। विशेष अभिज्ञान होने के लिये प्राप्त किये हुए पञ्चम ध्यान का अनेक बार प्रवेशन और उसमें से उपेक्षा, और एकाग्रता को भी मनन, और विचार करने से ही दिव्य चक्षु आदि पाँच या सात अभि-ज्ञान हो सकता है। अभिज्ञान जो है वह पञ्चम ध्यान का शक्ति भाव है। पृथक् कर्म स्थान नहीं किया जाता। वह अभिज्ञान, दिव्यचक्षु, दिव्यश्रोत, ऋद्धिविध, परिचित्त विज्ञानन, पूर्वनिवास, यथा कर्म्मूपग, अनागतंस, भेद से सात हैं। यथा कर्म्मूपग, और अनागतंस, को दिव्य चक्षु में प्रवेश करके, पाँच अभिज्ञान जान लो। अन्य स्थानों में कभी-कभी युतूपपातज्ञान आता है। वह भी दिव्य चक्षु अन्तर्गत है। मनोमयिद्धि ज्ञान को भी इद्धिविध अथवा ऋद्धिविधान ज्ञान में शामिल समझ लो। छः अभिज्ञान का ग्रहण हो तो, आसवक्खयज्ञान को मिला लो। अब इस अभिज्ञान के विषय में तीन विद्या, अथवा आठ, पन्द्रह चरणों को भी जान लेना अवश्य है। इसलिये इन सबको निम्न लिखित क्रम से जान लीजिए।

१ पूर्व निवासज्ञान,
२ दिव्य चक्षुज्ञान, } यह तीन विद्या है।
३ आश्रवक्षयज्ञान,

१ विदर्शनाज्ञान,
२ मनोमयिद्धिज्ञान,
३ चेतोपरियज्ञान, परिचित्त विज्ञाननज्ञान,
४ दिव्यचत्तुज्ञान,
५ पूर्वनिवासज्ञान,
६ दिव्यश्रोतज्ञान,
७ ऋद्धिविधज्ञान
८ आसवत्तयज्ञान,

} यह आठ विद्या है।

१ शीलसंवर,	९ वीर्य
२ इन्द्रियगुप्तद्वार,	१० स्मृति
३ भोजनप्रमाणज्ञान,	११ प्रजा
४ जागरियानुयोग,	१२ रूप प्रथम ध्यान
५ श्रद्धा	१३ द्वितीय ध्यान
६ ह्री	१४ तृतीय ध्यान
७ अपत्तपा,	१५ चतुर्थ ध्यान
८ बहुश्रुत	

} यह पन्द्रह चरण हैं।

दिव्यचत्तु अभिज्ञान	रूपं पस्सामि
दिव्यश्रोत अभिज्ञान	शब्दं श्रुणोमि
इद्धिविध अभिज्ञान	सतं भवामि
परचित्त विजानन	परचित्तं जानामि
पूर्व निवास अभिज्ञान	पूर्व निवुतं जानामि
यथा कम्भूपग अभिज्ञान	अतीतं कम्मं जानामि
अनागतंस अभिज्ञान,	अनागतं खन्धं जानामि
आश्रवत्तय अभिज्ञान	किलेस विमुत्तं जानामि

} आठ अभिजानों में पृथक् २ अधिष्ठान ऐसा किया जाता है।

(५०) सौमनस्य और उपेक्षा के नीच उच्च का प्रकाशन

महग्गत चित्त के विषय में सौमनस्य और उपेक्षा दोनों में से उपेक्षा कुशल शान्त होकर सुख में शामिल हो सकता है इसलिये अभिधर्म और सुत्तन्त, दोनों के ही अनुसार सौमनस्य से उत्तम है।

प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, यह चार ध्यान सौमनस्य हैं। इस लिये, इन चारों का फल भी निम्न लिखित के अनुसार अल्प-संक्षेप है। प्रथम ध्यान, कुशल, तीन प्रथम ध्यान, लोक में ही फल देकर, क्रमशः असंख्य कल्प तिहाई, आधा, एक असंख्य कल्प आयु होता है। द्वितीय और तृतीय ध्यान कुशल, तीन द्वितीय ध्यान लोक में ही फल देकर क्रमशः २ महाकल्प, ४ महाकल्प, ८ महाकल्प आयु प्रमाण है। चतुर्थ ध्यान ध्यान कुशल, तीन तृतीय ध्यान लोक में फल देकर, १६ महाकल्प, ३२ महाकल्प ६४ महाकल्प क्रमशः आयु प्रमाण होता है। रूप पञ्चम ध्यान, उपेक्षा कुशल, फल देने में बड़ा विस्तार होकर, सात चतुर्थ ध्यान लोकों में आयु प्रमाण क्रमशः ५०० महाकल्प, वृहत्फल, असंज्ञसत्त्व, १००० महाकल्प, २०० महाकल्प, ४००० महाकल्प, ८००० महाकल्प, १६००० महाकल्प होता है। वह दिव्य चक्षु अभिज्ञान इत्यादि आठ अभिज्ञानों को भी धारण कर सकता है। इसलिये महग्गत कुशल के विषय में सौमनस्य निकृष्ट है। उपेक्षा उत्कृष्ट है।

(५१) अरूपावचर चित्त की संख्या का प्रकाशन

अरूपचित्त, सौमनस्य और उपेक्षा में से उपेक्षा, सम्प्रयुक्त और विप्प्रयुक्त में से सम्प्रयुक्त, असंखारिक, और ससंखारिक में से ससंखारिक, प्रथमादि ध्यानों में से, पञ्चमध्यान, समझ लीजिए। ४ कुशल, ४ विपाक, ४ क्रियाभेद से १२ होता है। कुशल विपाक, क्रिया, तीनों को मिला कर, ३ आकाशानन्त्यायतन, ३ विज्ञानान्त्यायतन, ३ आकिंचन्यायतन, ३ नैवसंज्ञानासंज्ञायतन, ऐसा भी १२ गिन लो। १५ रूपावचर, १२ अरूपावचर को इकट्ठा कर गिन लेने से २७ महग्गतचित्त होता है। कुशलध्यान ९, विपाक ध्यान ९, क्रियध्यान ९, ऐसा भी २७ महग्गत है। सत्ताईस महग्गत चित्तों को मिलाकर निम्नलिखित कायदे से गिन लीजिए।

सुख होकर सम्प्रयुक्त न होने वाला नहीं, सम्प्रयुत्त होकर सुख न होनेवाला १५, दोनों होनेवाला १२, दोनों न होनेवाला नहीं। सुख होकर विप्पयुक्त न होनेवाला १२, विप्पयुक्त होकर सुख न होनेवाला नहीं। दोनों होनेवाला भी नहीं। दोनों न होनेवाला १५। सुख होकर असंखारिक न होनेवाला १२। असंखारिक होकर सुख न होनेवाला, नहीं। दोनों होनेवाला भी नहीं। दोनों न होनेवाला १५। सुख होकर ससंखारिक न होनेवाला नहीं। ससंखारिक होकर सुख न होनेवाला १५। दोनों होनेवाला १२। दोनों न होनेवाला नहीं। उपेक्षा प्रधान में भी सुखप्रधान माफ़िक, सम्पयुत्त, विप्पयुत्त, असंखारिक,

ससंखारिक, इन चारों को ही प्रवेश कर लो। सम्प्रयुक्त और विप्रयुक्त प्रधान में केवल असंखारिक और ससंखारिक दोनों को ही प्रवेश कर लो।

(५२) आकाशानन्त्यायतनादि ध्यानों के विभाग का प्रकाशन

कुशल, विपाक, और क्रियाभेद से तीन आकाशानन्त्यायतन चित्त आकाश वर्जित, नौक्रमिणों के प्रतिनिमित्त, आकाशप्रज्ञप्ति को मनन = ग्रहण करते हैं। आकाश प्रज्ञप्ति जो है, वह अजटाकाश, परिच्छिन्नाकाश, कसिणोग्घाटिमाकाश, भेद से तीन है। इनमें से यहाँ कशिणोग्घाटिमाकाश को ही चाहिए। आकाशो अनन्तो, २ मनन करके भावना किया जाता है। विज्ञानन्त्यादि तीनों का गोचर है, आकाशानन्त्यायतन, कुशल और क्रियारूपी महग्गत धर्म ही है। विज्ञानं अनन्तं २ मनन किया जाता है। अकिंचन्यायतनादि तीनों का गोचर है, आकाशानन्त्यायतन कुशल और क्रिया के नास्तिभाव प्रज्ञप्ति नास्तिकिञ्चित्‌ मनन किया जाता है। नैवसंज्ञानासंज्ञायतनादि तीनों का गोचर है। आकिंचन्यायतन कुशल क्रियरूपी महग्गत धर्म शान्तमेतं प्रणीतमेतं २ कर्म स्थान भावना मनन है। रूपावचर चित्त के माफ़िक पूर्व-पूर्व अङ्गानतिक्रम से नहीं होता। परस्परारम्भणातिक्रम से चार प्रकार के ध्यान को अरूपावचर चित्त में चाहिए। अरूप चित्त में अङ्ग भेद से उपेक्षा, और एकाग्रता दो

हैं। ऐसा अङ्ग से समानता होते हुए भी क्रमशः एक से एक श्रेष्टतर होते हैं। इस अरूप चित्त में भी गुना करने की विधि है। परन्तु आवश्यक प्रतीत न होने से छोड़ देता हूँ।

(५३) वेदनादि के विभाग का प्रकाशन

अरूप कुशल और क्रियचित्त, एक असंज्ञ सत्तलोक, और चार उपाय लोक से अतिरिक्त २६ लोक में होते हैं। अरूप विपाक चित्त, चार अरूप लोक में ही होता है। तिहेतुकों में ही होता है, अन्य में नहीं होता। सब अरूप चित्त एक उपेक्षा वेदना ही है। अलोभादि तीन हेतु हैं। कुशल और क्रियचित्त एक जवन किच्च-कार्य हैं। विपाक चित्त, प्रतिसन्धि, भवङ्ग-च्युति भेद से तीन कार्य है। कुशल और क्रियचित्त मनोद्वार में होते हैं। विपाक सर्वदा द्वार विमुक्त है। गोचर से प्रज्ञप्ति और महग्गत ही गोचर है। वस्तव्य से कुशल और क्रिय चित्त कभी हृदय वस्तु को आश्रित है, कभी नहीं। विपाक चित्त अरूप लोक में वस्तव्य न होने के कारण सर्वदा अनाश्रित है। अरूप शोभन समाप्त।

(५४) लोकोत्तर चित्त के लोकोत्तीर्ण का प्रकाशन

सत्त्वलोक, संस्कार लोक, ओकासलोक, यह तीन लोक हैं। सोतापत्तिमग्ग, पृथकूजन रूपी सत्त्वलोक से उत्तीर्ण है। सकदागामिमग्ग, सोतापन्न रूपी सत्त्वलोक से, अनागामिमग्ग, सकदागामिरूपी सत्त्वलोक से उत्तीर्ण है। यह सत्त्वलोक से

उत्तीर्ण है। निर्वाण को साक्षात् किये जाने से उपादान का अगोचर स्कन्ध रूपी संस्कार लोक से आसव अगोचर भाव से चार मार्ग पृथक् उत्तीर्ण होते हैं। यह संस्कार लोक से उत्तीर्ण है।

सोतापत्ति मार्ग चार अपाय लोक से, सकदागामिमार्ग, कुछ काम लोकान्तर्गतांश से अनागामिमार्ग, सब काम लोक से, अर्हन्त मार्ग, रूपलोक और अरूपलोक से उत्तीर्ण है। यह ओकास-लोक अर्थात् आधार भूमि-उत्पत्ति स्थानों से उत्तीर्ण है।

(५५) लोकोत्तर चित्त को गुना करने की विधि का प्रकाशन

श्रोतापत्ति मार्ग को सुञ्ञतमार्ग, अप्पणीहत मार्ग, दोनों से गुना करे तो दो होता है। उसको ध्यान के नाम से रख लेने से सिर्फ़ शुद्ध मात्र होता है। दो शुद्ध को ४ प्रतिपदा से गुना करे, तो ९ होता है। ध्यान के नाम से रखे हुए दोनों से मिला ले, तो दश ध्यान होता है। इसके समान, मार्ग नाम, सतिपट्ठान नाम, सम्मप्पधान नाम, इद्धिपाद नाम, इन्द्रिय नाम, बलनाम, बोज्झङ्गनाम, सच्च नाम, समथ नाम, धम्म नाम, खन्ध नाम, आयतन नाम, धातु नाम, आहार नाम, फस्स नाम, वेदना नाम, सञ्ञा नाम, चेतना नाम, चित्त नाम, से उन्नीस १९ है। इन १९ नामों में भी प्रत्येक दश २ है। पहला दश ध्यान नाम से मिला ले तो २०० होता है। उसको चार अधिपति से गुना

करे तो ८०० होता है। पहला वाला २०० मिलाकर १००० होता है। यह श्रोतापत्ति मार्ग का है। चार मार्ग होने के कारण (४०००) होता है। सच्चविभङ्गपालि में अष्टाङ्गिक वार, पञ्चाङ्गिकवार, सर्व संग्राहिकवार भेद तीन हैं। इनमें से अष्टाङ्गिकवार में पाँच भाग होते हैं।

१ तण्हाय पहान''

२ 'तण्हाय च अवसेसानञ्चकिलेसान' पहान''

३ 'तण्हाय च अवसेसानञ्चकिलसान' अवसेसानञ्च अकुसलान' धम्मान' पहान''

४ 'तण्हाय च अवसेसानञ्च किलेसान' अवसेसानञ्चकुसलान' धम्मान' तिण्णञ्च कुशलमूलान' सासवान' पहान''

५ तण्हाय च अवसेसानञ्च किलेसान' अवसेसानञ्च अकुसलान' धम्मान' तिण्णञ्च कुशलमूलान' सासवान' अवसेसानञ्च कुसलान' धम्मान''। इनमें से प्रथम कोट्टास ध्यानाभिनिवेशन में शुद्धिक प्रतिपदा, शुद्धिकसुञ्ञता, सुञ्ञतप्रतिपदा, शुद्धिक अप्पणीहित, अप्पणीहित प्रतिपदा, भेद से पाँच स्थान है। उसको चतुष्क और पञ्चक दोनों से गुना करे तो १० होता है। इसके समान, मार्ग नाम, ० चित्त नाम से १९ हैं। इनमें भी प्रत्येक दश २ होने से पहला दश मिला ले तो २०० होते हैं। उसको चार अधिपति से गुना करे तो ८०० होते हैं। वही दो सौ से मिला ले तो १००० होता है। उसको ४ मार्ग से गुना करे, तो ४००० होता है। उसको भी ५ कोट्टास-भागों से गुना करे तो

२००० होता है। इसको भी तीन वारों से गुना करे, तो ६०००० होता है।

यह चार हजार और साठ हजार भेद से गिनने की विधि है।

इस विधि को अर्थकथा और पालि के अनुसार संख्यामात्र बतलाने के लिये लिख दिया है।

(५६) आर्य पुद्गलों के भेद का प्रकाशन

१ सत्तक्खत्तुपरम सोतापन्न, २ कोलंकोल सोतापन्न, ३ एक वीजी सोतापन्न,	} तीन सोतापन्न,

"सत्तक्खत्तुं सत्तसु वारेसु कामसु गतियं प्रतिसन्धिग्गहणं परमं एतस्सति सत्तक्खत्तु परमो। कुलतो कुलं गच्छतीति कोलं कोलो। एकस्सेव भवस्स बीजं एतस्स अत्थीति एकबीजी"

इन तीनों का विस्तार पाँचवाँ परिच्छेद और नवाँ परिच्छेद में देखिए।

१ इध पत्त्वा इध परिनिब्बायी, २ तत्थ पत्त्वा तत्थ परिनिब्बायी, ३ इध पत्त्वा तत्थ परिनिब्बायी, ४ तत्थ पत्त्वा इध परिनिब्बायी, ५ इध पत्त्वा तत्थ निब्बत्तित्वा इध परिनिब्बायी,	} पाँच सकृतदागामि,

इध, शब्द से मनुष्य लोक, तत्थ, शब्द से देव लोक जान लीजिए। पाँच सकृदागामियों में से पाँचवाँ सकृदागामि को ही लेना चाहिए।

(सुत्तनिपात पालि के अनुसार ५ अनागामि)

अन्तरापरिनिब्बायी अनागामि, उपहच्चपरिनिब्बायी अनागामि, ससंखारपरिनिब्बायी अनागामि, असंखारपरिनिब्बायी अनागामि, उद्धंसोतअकनिट्ठगामी अनागामि,	पाँच अनागामि,

पाँच शुद्धावास लोकों में से किसी में भी हो, अप्पनोत्पत्ति से लेकर उस लोक के आयु प्रमाण को दो भाग करके पूर्वार्द्ध के भीतर ही अर्हत्त प्राप्त करने वाला अनागामी, अन्तरापरिनिब्बायी अनागामी है। शुद्धावासों में से किसी में भी हो, अपनोत्पत्ति लोक में आयु प्रमाण के पूर्वार्द्ध को अतिक्रमण दिन से लेकर अपरार्द्ध के भीतर एक न एक दिन अर्हन्त प्राप्त करने वाला अनागामि, उपहच्च परिनिब्बायी अनागामि।

शीघ्रतिक्त इन्द्रियता से विना अत्यन्त उद्योग के रूपरागादि क्लेशों को हटाया क्षय करा के जिस किसी संस्कार धर्मों को अनित्यतादि विपस्सनारोपन कर भावनामात्र से सुख पूर्वक अर्हत्त फल प्राप्त करने वाला अनागामि, असंखार परिनिब्बायी अनागामी है। इसके प्रतिलोम उलटा अर्हत्त फल प्राप्त करने

वाला अनागामि ससंखार परिनिब्बायी अनागामि है। नीचे चार शुद्धावास लोकों में जहाँ कहीं होकर अपनोत्पत्ति लोक में अर्हत्त फल प्राप्त के असमर्थ होने से क्रमशः शुद्धावास लोकों में रहकर अकनिष्ठ लोक में अर्हत्त फल प्राप्त करने वाला अनागामि, उद्धंसोत अकनिट्ठगामि है। सुत्तनिपति वाला समाप्त।

अन्तरापरिनिब्बायी अनागामि ३
उपहच्चपरिनिब्बायी अनागामि १
उद्धंसोतअकनिट्ठगामि अनागामी १
} पुग्गलपञ्ञत्तिपालि आगत ५ अनागामि,

अविहालोक में उपरिलिखित ५ अनागामि, असंखार और ससंखार से गुना करे, तो दश होता है।

इसी तरह, अतप्पा, सुदस्सा, सुदस्सी, लोकों में भी दश २ है। अकनिट्ठ लोक में उद्धंसोत न होने से आठ ही है। सब मिला लेने से ४९ है। इसके समान प्रथम ध्यान लोक से, शुभ-किण्ण लोक तक नौ रूप लोक में ५ अनागामियों को असंखार और ससंखार से गुनाकर गिन ले तो ९० होते हैं। वेहप्फल लोक में उद्धंसोत न होने के कारण ९ है। कुल १० रूप लोक में ९८ है। नीचे तीन अरूप लोक में प्रत्येक दश २ होने से ३० है। ऊपर नैवसंज्ञानासंज्ञा लोक में उद्धंसोत न होने से ९ है। ४ अरूप लोक में ३८ है। कुल ४८+९८+३८+१८४ होता है। अनागामि का उत्पत्ति लोक पन्द्रह रूप लोक, चार अरूप लोक ऐसा १९ लोक होते हुए भी शुद्धावास को ही क्यों कहा? शुद्धावास लोक जो है वह प्रायः अनागामि फलस्थ,

अर्हत्तमार्गस्थ और अर्हत्तफलस्थ इन तीनों ही का उत्पत्ति लोक है। अन्य रूप और अरूप लोकों में तिहेतुक पृथक् जन, और सोतापन्नादिओं से मिश्रित है। अतः शुद्धावास लोक ही अनागामादि तीनों का अवश्य उत्पत्ति के कारण कहा है।

(५७) उद्धंसोत अनागामि के भेद का प्रकाशन

उद्धंसोत अकनिट्ठगामि, अनागामि
उद्धसोतनअकनिट्ठगामिं, अनागामि
न उद्धंसोत अकनिट्ठगामि, अनागामि
न उद्धंसोत न अकनिट्ठगामि, अनागामि
} ५ शुद्धावास लोक में ४ अनागामि

उद्धंसोत वेहप्फलगामि, अनागामि,
न उद्धंसोत वेहप्फलअनागमि,अनागामि
न उद्धंसोत वेहप्फलअनागामि,अनागामि
न उद्धंसोत न वेहप्फल अनागामि,
अनागामि
} दश रूपलोक में ४ अनागामि,

उद्धंसोतनैवसंज्ञा नासंज्ञायतनगामि, अनागामि,
उद्धंसोत न नैवसंज्ञानासंज्ञायतनगामि,अनागामि
न उद्धंसोतनैवसंज्ञानासंज्ञायतनगामि,अनागामि,
न उद्धंसोतननैवसंज्ञानासंज्ञायतनगामि,अनागामि
} ४ अरूप लोक में ४ अनागामि

(५८) सुत्तनिपात अर्थकथा के आर्य्यपुद्गल भेद का प्रकाशन

एक बीज, कोलंकोल, सत्तक्खत्तुपरम, भेद से तीन सोतापन्नों को ४ प्रतिपदा से गुना करे, तो १२ है। काम, रूप, अरूप तीन सकदागामियों को भी ४ प्रतिपदा से गुना करे, तो १२ है। १ अन्तरापरिनिब्बायी, २ उपहच्चपरिनिब्बायी, ३ असंखारपरिनिब्बायी, ४ ससंखारपरिनिब्बायी, ५ उद्धंसोतअकनिट्ठगामी, भेद से अविहालोक में ५ इसी तरह अतप्पा, सुदस्सा, सुदस्सी, लोक में भी पाँच अकनिट्ठलोक में उद्धंसोत न होने से ४।। कुल २४, १ सुक्खविपस्सक अर्हन्तं, २ छलाभिञ्ञार्हन्त, ४ मार्गस्थ, सब मिला लें तो ५४ है। उसको श्रद्धाधूर, प्राज्ञाधूर से गुना करे तो १०८ होता है। यह सुत्तनिपात का है।

(५९) पुद्गलप्रज्ञप्ति अर्थकथा के आर्य्यपुद्गल भेद का प्रकाशन

एक बीज, कोलंकोल, सत्तक्खत्तु परम, भेद से तीन सोतापन्नों को ४ प्रतिपदा से गुना करे तो १२, उसको समथधूर-प्रधान विपस्सनाधूर, से गुना करे, तो २४।। पाँच सकदागामि में से पाँचवाँ इध पत्त्वा तत्थ निब्बत्तित्वा इध परिनिब्बायी एक ही सकदागामि को सुञ्ञतविमोक्ख, अनिमित्तविमोक्ख, अप्पणिहित विमोक्ख, तीनों से गुना करे, तो ३ उसको ४ प्रतिपदा से

गुना करे तो १२, अविहा लोक में पुग्गल पञ्ञत्तिपालि के अनुसार लिखित ५ अनागामियों को ससंखार दोनों से गुना करे तो १० ऐसा ही अतप्पा में १० सुदस्सा में १० सुदस्सी में १० अकनिट्ठलोक में उद्धंसोत न होने से ८-सब ४८ एक अर्हन्त को ३ विमोक्ख से गुना करे तो ३ उसको ४ प्रतिपदा से गुना करे तो १२ होता है। सबको मिला ले तो ९६ होता है। यह पुद्गल प्रज्ञप्ति का है। सुत्तनिपात और पुद्गलप्रज्ञप्ति अर्थ-कथाओं को पृथक्-पृथक् याद कर लीजिए। दोनों को मत मिलाइए।

(६०) अर्हन्तों के भेद का प्रकाशन

१ सुक्खविपस्सक अर्हन्त २ छडभिञ्ञार्हन्त	} २ अर्हन्त
१ ध्यानिकार्हन्त २ अध्यानिकार्हन्त	} २ अर्हन्त
१ समयानिकार्हन्त २ विपस्सनायानिकार्हन्त	} २ अर्हन्त
१ समथधूरार्हन्त २ विपस्सनधूरार्हन्त	} २ अर्हन्त
१ श्रद्धाधूरार्हन्त २ प्रज्ञाधूरार्हन्त	} २ अर्हन्त

१ सावकपारमीप्राप्ताहन्त २ सावकपारमीअप्राप्ताहन्त	} २ अर्हन्त

(६१) चरमार्गों के क्षिप्रक्रम प्रकाशन

सोतापत्तिमग्ग, अपायगामी, ४ दिट्ठिगतसम्पयुत्तचित्त, १ विचिकित्सा, यह पाँच और इनसे सम्पयुक्त धर्मों को निश्शेष-क्षिप्त है। इससे शेष विप्पयुत्तादि अकुशलों के अपायगामीशक्ति को छेदन भेदन करके दुर्बल कर देता है।

सकदागामिमग्ग, प्रत्यक्षकाल में कठोर फल देने वाले ४ दिट्ठि-गतविप्पयुक्त, २ दोषमूलों को तनुक कर, क्षिप्त कर सकता है। अनागामिमग्ग, वर्तमान समय में सूक्ष्म फल देने वाले कामराग युक्त, ४ दिट्ठिगतविप्पयुत्त, २ दोषमूल, और इन छः अधर्मों से साथ होने वाले सम्पयुक्त धर्मों को भी निश्शेष क्षिप्त है। शेष अकुशलों को भी दुर्बल कर देता है।

अर्हत्तमग्ग, रूपराग और अरूपरागयुक्त ४ दिट्ठिगतविप्पयुक्त, १ औद्धत्त्य, और इन पाँचों से सहोत्पन्न, सम्पयुक्त धर्मों को भी विजली गिरने के माफ़िक निश्शेष क्षिप्त है।

श्रोतापत्ति मार्ग जो है, वह मिथ्या दृष्टि, विचिकित्सा, शील-व्रतपरामर्श, तीन संयोजन, और दिट्ठानुसय, विचिकित्सानुसय, इन पाँच क्लेशों को उत्पत्ति क्षण में ही निश्शेष उत्सर्ग कर देता है।

सकृदागामि मार्ग जो है, वह विकट कामराग, प्रतिघसंयो-जनों को उत्सर्ग करता है। सूक्ष्म को नहीं अनागामि मार्ग जो है, वह शेष सूक्ष्म कामराग, व्यापाद संयोजनों को समूल उखाड़ देता है।

अर्हत्त मार्ग जो है, वह रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य अविद्या संयोजनों को भी उत्पत्ति क्षण में ही बिजली पतन जैसे उत्सर्ग करता है। इसका विस्तार नवाँ परिच्छेद में देखिए।

(६२) लोकोत्तर चित्त में क्रिय चित्तोत्पत्ति न होने का प्रकाशन

मार्ग चित्त का स्वभाव एक चित्त क्षण मात्र ही होता है, तो भी जैसे कि बिजली गिरने से पृथ्वी, पर्वत, वृक्षादि एक दम छिन्न-भिन्न होकर नाश या लुप्त हो जाता है, वैसे वह भी सब अकुशल क्लेशों को समूल निश्शेष उत्पाटन करता है। अतः क्रिया नहीं होता।

(६३) लोकोत्तर चित्त का ४० भेद प्रकाशन

लोकोत्तर चित्त में मुख्यता से चालीस ध्यान नहीं है। परन्तु पादक ध्यानादिओं से समानता के कारण ४० भेद होता जाता है। पादक ध्यान, सम्मसित ध्यान, पुग्गलज्झासय भेद से तीन हैं। उनमें से नव लौकिक ध्यानों को प्राप्त किया हुआ योगी कर्मस्थानिक पुद्गल, मार्ग को इच्छा करके भावना करते समय,

प्राप्त हुए प्रथम ध्यान को प्रवेश करे, तो प्रवेश किया हुआ प्रथम ध्यान, पादक ध्यान होता है। अर्थात् जिस ध्यान को योगी प्रवेश करे, वह पादक ध्यान नहीं है। जिस ध्यान को योगी अनित्यादि को मनन करे अथवा भावना करे, वह सम्मसित ध्यान है। योगी की इच्छा ही पुग्गलज्झासय है। इस लिए पादकादि ध्यानों के समान मार्ग प्राप्त होने के कारण २० मार्ग चित्त, २० फल चित्त विस्तार से लोकोत्तर चित्त ४० होता है, कैसे ?

१	वितक्क	पीति	सुख	एकग्गता	रूपी पञ्च ध्यानाङ्गवाला	सोतापत्तिमग्गचित्त
२	विचार	पीति	सुख	एकग्गता	रूपीचार ध्यानाङ्गवाला	सोतापत्तिमग्गचित्त
३		पीति	सुख	एकग्गता	रूपी तीन ध्यानाङ्गवाला	,,
४			सुख	एकग्गता	रूपी दो ध्यानाङ्गवाला	,,
५			उपेक्खा	एकग्गता	रूपी दो ध्यानाङ्गवाला	सोतापत्तिमग्गचित्त

इसी तरह एकदागामि, अनागामि, अर्हत्तमग्ग चित्त होते हैं। अथवा प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, पञ्चम ध्यानों के अनुसार मार्ग को मिल जाते हैं। जैसे ध्यानाङ्गों के अनुसार २० मग्गचित्त होता है वैसे ही फल चित्त को भी जानिए ऐसा ४० होता है। लौकिक चित्तों से ३ प्रथम ध्यान, ३ द्वितीय ध्यान, ३ तृतीय ध्यान, ३ चतुर्थ ध्यान, १२ अरूप

चित्तों को पञ्चम ध्यान में लेकर १५ पञ्चम ध्यान, लोकोत्तर चित्त में ८ प्रथम ध्यान, ८ द्वितीय ध्यान, ८ तृतीय ध्यान, ८ चतुर्थ ध्यान, लौकिक और लोकोत्तर मिलाकर, ११ प्रथम ध्यान चित्त, ११ द्वितीय ध्यान चित्त, ११ तृतीय ध्यान चित्त, ११ चतुर्थ ध्यान चित्त, २३ पञ्चम ध्यान चित्त होता है। योगी के कल्याण इच्छा ही पुग्गलज्झासय है ध्यान नहीं। पादक और सम्मसित ही ध्यान है।

(६४) १६ प्रकार के मार्ग चित्त के कार्यों का प्रकाशन

सोतापत्तिमग्ग को प्राप्ति के साथ ही दुःख सत्य को परिज्ञान, समुदय सत्य को त्यागना निरोध सत्य को साक्षात् करना, मग्ग-सत्य की भावना करना इस प्रकार चार सत्यों को एक साथ जानता है। इसके समान, सकदागामिमग्ग, अर्हन्तमग्गों के उत्पत्ति क्षण में भी चार सत्यों को एक साथ जानता है अथवा देखता है। इनमें से अर्हत्त मग्ग जो है वह चार सत्यों को साक्षात् करने के बाद निर्वाण तक देखता है लोप नहीं होता। चार मग्गों में प्रत्येक मग्ग पर चार २ होने से १६ होता है। साक्षात् करने में सोतापत्तिमग्ग दृष्ट किये हुए सत्यों को ही सकदागामि आदि मग्ग साक्षात् करते और देखते हैं। रागादि क्लेशों को मार कर निर्वाण गमन करने के कारण मग्ग नाम पड़ता है। निर्वाण को इच्छा करने वालों के द्वारा अन्वेषित किये जाने के कारण भी मग्ग नाम पड़ता है। श्रेष्ठता को करने

वाला, क्लेशों से दूर पवित्र अष्ट-अङ्ग परिपूर्ण धर्म ही मार्ग है। मार्ग धर्म से अन्य मार्गाङ्ग नहीं, मार्गों में अष्टाङ्गिक मार्ग ही श्रेष्ठतर है। सम्यक् दृष्टि आदि आठ अङ्गों से अतिरिक्त दूसरा नहीं। इन आठ अङ्ग समूह को लक्ष करके व्यवहृत नाम ही अष्टाङ्गिक मार्ग है। ऐसा अवश्य जानिए। लोकोत्तर चित्त समाप्त।

(६५) समान जाति और समान स्थान-लोक वालों को मिलाकर संख्या का प्रकाशन

सर्व प्रथम, दो मोमूह चित्त और अठारह अहेतुक चित्त को असंखारिक, फिर १८ अहेतुक चित्त को विप्पयुत्त, रूप और अरूप चित्त को ससंखारिक, लोकोत्तर को सुखोपेक्खा।

अशोभन चित्त	३०	नवासी चित्त है।
शोभन चित्त	५९	
सोमनस्स	३९	लोकोत्तर, सुख और उपेक्षा होने से अग्रहीत ग्रहण विधि से नवासी ही होता है।
दोमनस्स	२	
उपेक्खा	५५	
सम्पयुत्त चित्त	५५	८९ नवासी
विप्पयुत्त चित्त	३४	
असंखारिक	३७	८९
ससंखारिक	५२	

कामचित्त	५४	
महग्गत चित्त	२७	८९
लोकोत्तर	८	

अकुशल	१२	
लोकीय कुशल	१७	
लोकीय विपाक	३२	नवासी
क्रियचित्त	२०	
लोकोत्तर	८	

अहेतुक	१९	८९
सहेतुक	७१	

अहेतुक	१९	
एकहेतुक	२	नवासी
द्विहेतुक	२२	
तिहेतुक	२३	

सुख होके सम्पयुत्त न होनेवाला	११	
सम्पयुत्त होके सुख न होनेवाला	२७	
दोनों होनेवाला	२८	८९
दोनों न होनेवाला	२३	

सुख प्रधान में विप्पयुत्त, असंखारिक, ससंखारिक, इन तीनों को भी प्रवेश कर गिन लो और दुःख प्रधान, उपेक्खा प्रधानों में भी चार २ जोड़कर गिन लो।

अकुशल	१२	१२१
कुशल	३७	
विपाक	५२	
क्रिया	२०	

सुख सहगत	१	१२१
दुःख सहगत	१	
दोमनस्स	२	
सोमनस्स	६२	
उपेक्खा	५५	

दुःखसहगत	३	१२१
सुखसहगत	५५	
उपेक्खा सहगत	५५	

अहेतुक	१८	१२१
एकहेतुक	२	
द्विहेतुक	२२	
तिहेतुक	७९	

अशोभनचित्त	३०	१२१
शोभनचित्त	९१	

अहेतुक	१८	१२१
सहेतुक	१०३	

लोकियचित्त	८१	१२१
लोकोत्तर	४०	

कामचित्त	५४	१२१
महग्गतचित्त	२७	
लोकोत्तरचित्त	४०	

कामावचरचित्त	५४	१२१
रूपावचरचित्त	१५	
अरूपावचरचित्त	१२	
लोकोत्तरचित्त	४०	

सत्ततिंसविधं पुञ्ञं श्लोक के अनुसार संख्या

कामावचर कुशलचित्त	८	३७ कुशल
रूपावचर कुशलचित्त	५	
अरूपावचर कुशलचित्त	४	
लोकोत्तर कुशलचित्त	२०	

लोककिय कुशल	१७	३७ कुशल
लोकोत्तर कुशल	२०	

काम कुशल	८	३७ कुशल
महग्गत कुशल	९	
लोकोत्तर कुशल	२०	

दुहेतुक कुशल	४	३७ कुशल
तिहेतुक कुशल	३३	

सोमनस्स कुशल	२४	३७
उपेक्खा कुशल	१३	
कामावचर विपाक	२३	५२ विपाक
रूपावचर विपाक	५	
अरूप विपाक	४	
लोकोत्तर विपाक	२०	
लोकिय विपाक	३२	५२
लोकोत्तर विपाक	२०	
अकुशल विपाक	७	५२ विपाक
कुशल विपाक	४५	
अहेतुक विपाक	१५	५२ विपाक
सहेतुक विपाक	३७	
अशोभन विपाक	१५	५२ विपाक
शोभन विपाक	३७	
अहेतुक विपाक	१५	५२ विपाक
द्विहेतुक विपाक	४	
तिहेतुक विपाक	३३	
सुखसहगत विपाक	१	५२ विपाक
दुःखसहगत विपाक	१	
सोमनस्सहगत विपाक	२५	
उपेक्खासहगत विपाक	२५	

कुल अकुशल	१२	१२१ एक सौ इक्कीस
,, कुशल	२७	
,, विपाक	५२	
कुल क्रियचित्त	२०	

(६६) चैतसिक परिच्छेद का सारांश

एकुप्पादनिरोधाचापे। मता, इस श्लोक के अनुसार, चित्त के साथ होना, उसके साथ निरुद्ध होना, एकारम्भरण, एकवस्तव्य, होकर चित्त से युक्त बावन-५२-धर्म चैतसिक है।

एकोत्पादादि चार सम्पयोग लक्षणों में से एक निरोधक शब्द से सहजात का जिस रूप और चित्तजरूपों को, एकारम्भरणशब्द से, दो विज्ञप्तिरूप, च्युतिचित्तोपरिस्थित अष्ट अविनिब्योग-रूपों को, निवृत्ति करता है। एक व्यस्तव्य शब्द से पूर्व त्रिल-क्षणपूर्ण चैतसिक अवश्य एकवस्तव्य ही है। ऐसा प्रकाशित करता है। गोचर, चित्त, चैतसिक, तीनों में से गोचर ही प्रथमोत्पत्ति है। एक क्षण में दो चित्त नहीं होता। एक २ चित्त क्षण में सम्पयुक्त नाम स्कन्धादि चैतसिक धर्म एक साथ होता है। ऐसा उत्पन्न चित्त और चैतसिकों को, यह तो स्पर्श है। यह तो वेदना, यह तो संज्ञा, चेतना यह तो चित्त, ऐसा पृथक् २ निश्चय करके पृथक्जन, बुद्धि से समझ लेना दुष्कर है। जैसा कोई मनुष्य नावा से समुद्र में जाकर हाथ से समुद्र के पानी को लेकर जीभ से चाट कर, यह तो गंगा का पानी, यह तो यमुना

का पानी, यह तो सरस्वती का पानी, इत्यादि नदियों के पानी को अलग, २ निश्चय करके जानना, या बतलाना मुश्किल होता है। वैसा इससे भी सौगुना, एक गोचर में इकट्ठे होते हुये चित्त—और चैतसिक नामस्कन्ध धर्मों को, यह फस्स, यह तो वेदना, इत्यादि हिस्सा लगाकर जानने के लिये पृथक्जनों के ज्ञान में मुश्किल है। चैतसिकों का चार लक्षण, काम और १५ रूपलोक को ही उद्देश्य कर कह रहा है। अरूपलोक में आश्रय करने का हृदयवस्तु न होने के कारण तीन ही लक्षण हैं। ऐसा चार लक्षणों से संपूर्ण ५२ चैतसिक, राशि २ से अन्य समान राशि, अकुशल राशि, शोभन राशि, से तीन हैं। उनमें से प्रथम अन्य समान राशि को दिखलाने के लिए स्पर्शादि चैतसिक को कहा। चैतसिक जो हैं, चित्त के समान एक ही गोचर जान स्वभाव मात्र नहीं वह पृथक् २ लक्षण ५२ भेद होने के कारण ५२ लक्षणों को ग्रन्थों के अनुसार पृथक् २ लिखूँगा।

(६७) स्पर्श चैतसिक प्रकाशन

स्पर्श का लक्षणचित्त परिच्छेद में कुछ प्रकाशित किया है, इसलिए यहाँ पर विशेष प्रकाशन इतना समझिए कि खट्टा खाते हुए को देखकर अन्य आदमी के मुँह में जैसे पानी आता है। वैसा स्पर्श जानिए। तिएणं संगतिया फस्सोति अयमत्थो। अट्ठसालिनी। वत्थु=वत्तव्य, गोचर, विज्ञान, इन तीनों के संगम से स्पर्श होता है।

(६८) वेदना चैतसिक का प्रकाशन

रूपादि गोचरों के स्वाद को भोगने वाला चैतसिक, वेदना है। वेदना जो है, वह रूपादि गोचरों के अनुभव लक्षण है। गोचरानुभव कृत्य है। अथवा गोचरों में से इच्छित सुन्दर भाग अनुभव कृत्य है। चित्त में आश्रित, भोगयित स्वभाव से ज्ञानाविर्भाव है। काय और चित्त की प्रधानता से समीप कारण है। वेदना जो है, वह गोचरों के रस को अधिपति भाव से भोगता है। अन्य स्पर्शादि धर्म एक २ अंश भोगते हैं। जैसे राजा अनेक प्रकार की खाद्य वस्तुओं को मनमानी भोगता है, वैसे वेदना भी गोचरों के रसको भोगता है। अन्य चैतसिक जैसे राष्ट्रपति के कर्मकारजन एक २ अंश भोगता है। वैसे ही गोचरों के रसको भोगते हैं। इसलिए, अट्ठसालिनी में एकंसतोपन इस्सरताय सामिभावेन वेदनाव आरम्भणरसं अनुभवति राजावियहि वेदना। सूदोविय सेसधम्मा "कहा है—सारांश, वेदना राजा के समान है। अन्य स्पर्शादि धर्म, रसोई वाले के समान हैं।

(६९) संज्ञा चैतसिक का प्रकाशन

नीलादिगोचरों को लक्ष्य करके जानने वाला चैतसिक संज्ञा है। संज्ञा का लक्षण है लक्ष्य करके जानना, उसका कृत्य है। फिर जाननिमित्तभूत नीलादि लक्षण करना। उसका आकार

आकृति है, ग्रहण किया हुआ लक्षण भाव से सत्यासत्य मनन करने में ज्ञानाविर्भाव करना। उसका प्रधान कारण है, यथोपस्थित गोचर। संज्ञा जो है, वह जैसा तृण खानेवाले मृगगण, तृण कृत पुरिष में पुरिष संज्ञा होता है। वैसा संज्ञा चैतसिक को जान लो। "तिणपुरिसकेसुमिगपोतकानं पुरिसाति उप्पन्न सञ्ञाविय।" अठसालिनी।

तीन प्रकार के जानना है, संज्ञा से ज्ञान, विज्ञान से ज्ञान, प्रज्ञा से ज्ञान। इनमें से संज्ञा जो है। वह जैसा कि लड़का खेलते २ चमकदार सुवर्ण खण्ड को देखकर उठा लेता है। वह यह सुवर्ण और महार्घ है। ऐसा नहीं जानता, फिर अपनी माता के दिखलाने से वह यह सुवर्ण है और महार्घ है। ऐसा जानता है। रत्ती को तो नहीं जानता। सुवर्णकार को दिखलाने से वह सब प्रकार से जानता है। वैसा क्रमशः संज्ञा, विज्ञान, प्राज्ञा, इन तीनों को समझिए। "बाल गामिक हेरञ्ञिकानं कहापणाव बोधनमेत्थ निदस्सनन्ति।" विभावनी टीका

(७०) चेतनाचैतसिक का प्रकाशन

अपने साथ होनेवाले सम्प्रयुक्त धर्मों को गोचर में स्थापन करने वाला, अथवा संस्कृत धर्मों को संस्कृत करने में उद्योग करने वाला चैतसिक, चेतना चैतसिक है। उसका लक्षण है, परस्पर सम्बन्ध करना। उसका कृत्य है सम्प्रयुक्त धर्मों को अपने कार्य में जोड़ना अथवा इकट्ठा करना। उसकी आकृति

है संस्कृत भाव से ज्ञान में आविर्भाव, उसका समीप कारण है विज्ञान, चेतना जो है, वह अपना कार्य, दूसरे के कार्य को साधने वाला ज्येष्ठ शिष्य और ज्येष्ठ मिस्तरी के समान है। इस-लिये अट्ठसालिनी में "सकिच्च परकिच्चसाधका जेट्ठसिस्स महावड्ढकी आदयोविय"। ऐसा कहा है—

(७१) एकाग्रता चैतसिक का प्रकाशन

एक गोचर को लेने वाला चैतसिक एकाग्रता है। उसका लक्षण है, अविच्छिन्नता, उसका कार्य है सहजात धर्मों को इकट्ठा करना। उसकी आकृति है शान्त स्वभावता, उसका प्रधान कारण है सुखशीलता। एकाग्रता जो है, वह वायु रहित स्थान में जलाए हुए दीपक के समान है। अतः अट्ठसालिनी में "निवातेदीपच्चीनं ठितिविय चेतसोठितीति दट्ठब्बो।" कहा है।

(७२) जीवितेन्द्रिय चैतसिक का प्रकाशन

सम्प्रयुक्त धर्मों को जिलाने वाला, अथवा सहजात धर्मों को अनुपालने में अधिपतित्व करनेवाला चैतसिक, जीवितेन्द्रिय है। उसका लक्षण है अनुपालना। उसका कृत्य है, अपने साथ होनेवाले नाम और रूपधर्मों की उत्पत्ति। उसका आकार है सहजात नाम और रूप धर्मों की उत्पत्ति से भङ्ग तक स्थापित धर्म स्वभाव से ज्ञानावीर्भावता। उसका समीप कारण है अपना अनुरक्षित नाम और रूप ही। जीवितेन्द्रिय जो है, वह

जैसे कि कमलदण्डस्थित जल कमल की रक्षा करता है। वैसे अपने साथ होनेवाले नाम और रूपधर्मों का अनुपालन करता है। इसलिए, अट्ठसालिनी में, "अनुपालेति उदकं विय, उप्पलादीनि" कहा है।

(७३) मनसिकार=मनस्कार चैतसिक का प्रकाशन

मन में मनन करने वाला चैतसिक, मनसिकार है। उसका लक्षण है सम्प्रयुक्त धर्मों को अभिमुख दौड़ाना। उसका कृत्य है, सम्प्रयुक्त धर्मों को गोचर में जोड़ना। उसका आकार है, गोचराभिमुख भावता। उसका समीप कारण है, रूपादिगोचर ही।

मनस्कार जो है। वह जैसा कि सारथि—गाड़ीवान घोड़ों को दौड़ाता है वैसा सम्प्रयुक्त धर्मों को गोचर में अभिमुख दौड़ाता है। मनस्कार के तीन भेद है आरम्भण प्रतिपादक मनस्कार, बीथिप्रतिपादक मनस्कार, जवन प्रतिपादक मनस्कार। इन तीन मनस्कारों को क्रमशः मनस्कार चैतसिक, पञ्चद्वारावर्ज्जनचित्त, मनोद्वारावर्ज्जनचित्तों से जोड़ लीजिए। पिछला दो चित्त, पूर्व भवङ्गचित्त से विपरीत वीथिचित्त और जवनचित्तों को करने के कारण मनसिकार नाम पड़ा है। यह सब चित्त साधारण चैतसिक, संक्षेप से नवासी-८९-विस्तार से एक सौ इक्कीस चित्तों में संयोग होने के कारण, सब चित्त साधारण कहा है।

सात सब चित्तसाधारण समाप्त।

एकाग्रता चैतसिक जो है वह एक ही गोचर में स्थित और शान्त होने से चंचलमान और अस्थित औद्धत्त्यचित्त में कैसे संयोग हो सकता है ? लक्षण विरुद्ध है। जैसे कि चण्ड अश्व पर सवार होकर दमन करनेवाला पहले पहल थोड़ा २ अश्व के मन के अनुरूप करके फिर शनै २ अपने वश में लाता है। वैसा एकाग्रता चित्तसिक भी चलायमान औद्धत्त्यचित्त को अधिक चंचल न होने देकर एक दो और तीन वीथि में स्थापित करके संयोग हो सकता है।

(७४) वितक्क चैतसिक का प्रकाशन

गोचराभिमुखारोपन करनेवाला चैतसिक वितर्क है। उसका लक्षण है गोचर में प्रारम्भ लगना। उसका कृत्य है गोचरों को पुनः पुनः मनन करना। उसका आकार है गोचर में चित्त का अभिमुख आकर्षण। उसका समीपकारण है विज्ञान। वितर्क के आश्रय से चित्त, गोचरारोपन होता है। वितर्क और विचार का विशेष यह है कि भेरी—नगाड़ा को बजाने से पहली आवाज़ की तरह वितर्क को समझिए। उसके गूँजने की तरह विचार को जान लीजिए।

(७५) विचार का प्रकाशन

गोचर में चित्त को इधर उधर से गमन करने वाला चैतसिक विचार है। उसका लक्षण है। गोचर को पुनः अनुमार्जना,

या स्पर्श करना। उसका कृत्य है सहजात धर्मों को अभिलक्षण युक्त करना। उसका आकार है गोचर में लगातर उत्पन्न जैसे होना। उसका समीम कारण है विज्ञान।

(७६) अधिमोक्ष चैतसिक का प्रकाशन

गोचर में निर्णय करने वाला चैतसिक, अधिमोक्ष है। उसका लक्षण है गोचरों को निर्णय करना। उसका कृत्य है, स्थिरता से निश्चय करना, उसका आकार है निर्णय कर्त्ता धर्मोति ज्ञानाविर्भावता। उसका प्रधान कारण है, गोचरभूत निर्णीत धर्म हो। अधिमोक्ष जो है, वह तोरण की तरह गोचर में दृढ़ता से स्थित स्वभाव है।

(७७) वीरिय चैतसिक का प्रकाशन

समर्थ-उद्योग भाव ही वीर्य है, उसका लक्षण है अधिक उद्योगता। उसका कृत्य है सहजात धर्मों को अनुग्रहीत करना। उसका आकार है, असंकोच भाव से प्रकट होना उसका समीप कारण है उद्विग्नता, पापों से उद्विग्न होकर मनुष्य, देव और ब्रह्मा भी वीर्य के जरिया दान, शील, और भावनादि अच्छे कर्मों को करता है। वीर्य जो है वह सब मनुष्य, देव और ब्रह्म, सम्पत्तियों का मूल है। वीर्य धर्म से संपूर्ण होने के लिए मेहनत करना चाहिए।

(७८) प्रीति चैतसिक का प्रकाशन

आनन्द, या खुशी को बढ़ाने वाला चैतसिक प्रीति है। उसका लक्षण है। रूपादिगोचरों को अच्छी तरह प्रेम करना। उसका कृत्य है काय और चित्त को तृप्ति या वृद्धि कराना। अथवा उत्तमोत्तम चित्त रूपों से शरीर को प्रसारित कराना, उसका आकार है। ज्ञान में कार्य और चित्त का प्रमोदित भाव से होना। उसका प्रधान कारण है विज्ञान ही।

रोमञ्चमात्र खुश होना	क्षुद्रका प्रीति,	प्रीति पाँच के भेद हैं।
बिजली चमकता जैसे खुश होना	क्षणिका प्रीति	
तरङ्ग की तरह खुश होना	अवक्रान्तिका प्रीति	
गगन गमन की तरह खुश होना	उद्वेगा प्रीति	
रुई में तेल स्पर्श जैसे खुश होना	स्फुरणा प्रीति	

पाँच प्रकार की प्रीति का पुत्र प्रश्रब्धि, प्रश्रब्धि का पुत्र सुख-सुख का पुत्र समाधि है। प्रीति सौमनस्य का विशेष, प्रीति जो है वह प्रसन्न और खुश कारक है। सौमनस्य जो है वह प्रमोद कारक है अथवा कृत्य है। प्रीति सुख का भी विशेष, प्राति संस्कारस्कन्ध है सुख वेदनास्कन्ध।

(७९) छन्द चैतसिक का प्रकाशन

इच्छा मात्र ही छन्द है, छन्द का लक्षण है, कार्य को चाहना मात्र ही, उसका कृत्य है। गोचर का अन्वेषण, उसका आकार

है। इच्छुकताविर्भाव, उसका समीप कारण है। समस्त गोचरही, छन्द दो हैं अकुशल और कुशल इनमें से अकुशल छन्द जो है वह रात्रि में पण्यदौत को चोरी करने के लिए हाथ फैलाने के समान है। कुशल छन्द जो है वह तीर चलाने वालों के अपने चलाये हुये तीरों को उठाने के लिए हाथ पसारने के समान है। लोभ और छन्द, दोनों का फ़र्क, लोभ जो है वह लग्न स्वभाव से इच्छा करता है। छन्द जो है वह लग्नरहित होकर इच्छा करता है।

यह छः प्रकीर्णक चैतसियों का प्रकाशन है।

स्पर्शादि सात, सर्व्व चित्त साधारण चैतसिक और वित-र्कादि छः प्रकीर्णक चैतसिक, इन दोनों को मिलाकर, तेरह अन्य समान चैतसिक कहा जाता है। इसका मतलब हिन्दी अनुवाद में लिखा जा चुका है।

तेरह अन्य समान चैतसिक प्रकाशन समाप्त।

(८०) चौदह अकुशल साधारण चैतसिकों में से मोह चैतसिक का प्रकाशन

गोचरों में भ्रम होनेवाला चैतसिक मोह है। मोह का लक्षण है चित्त को अन्धभाव करना। उसका कृत्य है गोचरों के स्वभाव को छिपाना। उसका आकार है, अन्धकारता से स्थापन करना। उसका प्रधान कारण है अनुचित रीति से

मनस्कार। मोह का स्वभाव है चार आर्य्य सत्य और पतीत्य-समुत्पाद धर्मों के पूर्वकोटि को नज़र न होने तक छिपा देता है। संसार-चक्र के अविद्यादि दण्डों और खानों को दृश्य न पाने तक छिपानेवाला भी मोह ही है। लोक मर्यादा से नैव संज्ञाना-संज्ञायतन लोक तक, धर्म मर्य्यादा से सोतापत्ति मार्ग से पूर्व गोत्रभूतक, पुद्गलमर्यादा से अनागामि तक भी छिपनेवाला है। मोह का विस्तार चित्तपरिच्छेद में लिखा जा चुका है।

(८१) अह्री चैतसिक का प्रकाशन

कायदुश्चरित आदि पापों से अलज्जता ही अह्री है। उसका लक्षण है कायदुश्चरितादिकों से अघृणा। उसका कृत्य है, लज्जा रहितता से पाप करना। उसका आकार है संकोच रहिताविर्भावता। उसका समीप कारण है अपने आप अनादरता। अह्री जो है वह गाँववालों के पाले हुए सूकर के समान है। जैसे कि गाँववालों का पला हुआ सूअर गाँव वालों के मैले से घृणा नहीं करता वैसे अह्री जो है वह पापों से घृणा नहीं करता।

(८२) अनपत्रपा चैतसिक का प्रकाशन

दुश्चरित्र कर्मों से त्रासरहित स्वभाव ही अनपत्रपा है। उसका लक्षण है दुश्चरितों से त्रासरहितता, उसका कृत्य है त्रास रहित भाव से पाप करना। उसका आकार है दुश्चरितों से

असंकोचता । उसका प्रधान कारण है अन्यादाररहितता। अनपत्रपा जो है वह जैसा पतंग आग से भय नहीं होता। वैसा दुश्चरितों से भय नहीं होता। "न भायति अनोत्तपी। सलभोविय पावकाति।"

(८३) औद्धत्य चैतसिक का प्रकाशन

चंचल—अस्थिरता ही औद्धत्य है। उसका लक्षण है चित्त की अशान्तता। उसका कृत्य है, अस्थिरता। उसका आकार है भ्रमताविर्भावता। उसका प्रधान कारण है अनुचित मनस्कारता। औद्धत्य जो है वह पत्थर से मारा हुआ भस्म के तरह है। "पासांणभिघात समुट्ठित भस्मंविय।" अठसालिनी।

(८४) लोभ चैतसिक का प्रकाशन

रूपादि गोचरों में आसक्त भाव ही लोभ है। उसका लक्षण है गोचर-मुग्धता। उसका कृत्य है गोचरलिप्तता। उसका आकार है त्याजनीय को न छोड़ना। उसका प्रधान कारण है। लिप्तता से देखना। लोभ दो है चित्त और चैतसिक, उनमें से चित्त लोभ जो है वह लोभ ही है। चैतसिक लोभ जो है वह लोभ भी है मूल भी। लोभ का विस्तार चित्त परिच्छेद में देखिए।

(८५) दृष्टि चैतसिक का प्रकाशन

हमारा मत सत्य है अन्य का मत व्यर्थ है। इस प्रकार विपरीत देखना ही दृष्टि है। उसका लक्षण है अनुचित मन-

स्कार। उसका कृत्य है अनित्यतादि से अन्य नित्यादि ग्रहण। उसका आकार है मिथ्यता से बारम्बार मनस्काराविर्भावता। उसका समीप कारण है अर्हन्त आर्य्यजनों को आदर्शन कामता ही। दृष्टि जो है वह पागल की थैली या टोकरी के समान है। जैसे पागल अपनी थैली या टोकरी में खाद्य और अखाद्य वस्तुओं को भर लेता है वैसा ही दृष्टि वाला भी कभी नित्य-शाश्वत मत, कभी उच्छेदमत, इस प्रकार बासठ दृष्टिओं में से कुछ न कुछ ग्रहण करता है। दृष्टि का विस्तार दीघनिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त में देखिए। बासठ=६२ दिडियों में से नत्थिक, अहेतुक, और अक्रिय दीट्ठिओं से ही कर्मपथ भेद होता है। अन्य दिट्ठिओं से से नहीं होता। उनमें से भी नस्तिक दृष्टि, विपाक बाधक है। अक्रिया दृष्टि कर्म बाधक है। अहेतुक दिट्ठि उभय बाधक है।

(८६) मानचैतसिक का प्रकाशन

हम ही श्रेष्ठ हैं इत्यादि प्रकार से समझना मानचैतसिक है! उसका लक्षण है अपने को श्रेष्ठ समझना। उसका कृत्य है अपने को सर्वोपरि करना। उसका आकार है। चोटी की तरह इच्छाविर्भावता। उसका मूख्य कारण है दृष्टि सम्प्रयुक्त लोभ ही। मान जो है वह पागल के समान है।

(८७) बारह–१२–सोलह–१६ प्रकार के मानका प्रकाशन

१ हम श्रेष्ठ हैं ऐसा अभिमान होना

२ हम दूसरों के समान हैं ऐसा अभिमान होना
३ हम औरों से नीच हैं ऐसा अभिमान होना
४ श्रेष्ठ होते हुए भी हम श्रेष्ठ हैं ऐसा अभिमान होना
५ श्रेष्ठ होते हुए भी हम औरों के समान है ऐसा० होना
६ श्रेष्ठ होते हुए भी हम औरों से नीच है ऐसा० होना
७ औरों के समान होते हुए भी, हम श्रेष्ठ हैं ऐसा० होना
८ औरों के समान होते हुए भी, समान हैं ऐसा० होना
९ औरों के समान होते हुए भी, नीच हैं ऐसा० होना
१० औरों से नीच होते हुए भी, श्रेष्ठ है ऐसा अभिमान होना
११ औरों से नीच होते हुए भी, समान हैं ऐसा० होना
१२ औरों से नीच होते हुए भी, नीच हैं ऐसा० अभिमान होना

---

१ घमण्ड-अहंकार करना मान है।
२ अधिक घमण्ड अहंकार करना अतिमान है।
३ अहंकार से अहंकार होना मानातिमान है।
४ कुल को आश्रय करके अहंकार होना जाति मान है।
५ गोत्र को आश्रय करके अहंकार होना गोत्त गोत्र मान है।
६ आरोग्यता को आश्रय करके अहंकार होना आरोग्य मान है।
७ युवावस्था को आश्रय करके अहंकार होना योव्वन मान है।
८ दीर्घायुता को आश्रय करके अहंकार होना जीवित मान है।
९ लाभ को आश्रय करके अहंकार होना लाभ मान है।
१० सत्कार अर्चा को आश्रय करके अहंकार होना सक्कार मान है।

११ अन्य पूजनीय अर्चिततता को आश्रय करके अहंकार होना
गरुगारव मान है।

१२ पूर्वांगामिता को आश्रय करके अहंकार होना पुरक्खार मान है

१३ सम्पूर्ण परिवारता को आश्रय करके अहंकार होना
परिवार मान है।

१४ धन, दौलत पूर्णता को आश्रय करके अहंकार होना
भोग मान है।

१५ सुन्दरता को आश्रय करके अहंकार होना वर्ण मान है।

१६ बहुश्रुतता को आश्रय करके अहंकार होना श्रुतमान है।

विद्या, प्राज्ञा, भाग्य, यश, कीर्त्ति, शील, ध्यान आदि अनेक प्रकार का मान है।

(८८) दोष चैतसिक का प्रकाशन

दूषण स्वभाववाला चैतसिक द्वेष है। उसका लक्षण है। कठोरता, उसका कृत्य है। गोचर में अत्यधिक चिन्तन, उसका आकार है। दूषनाविर्भावता, उसका समीप कारण है द्वेषता-पूर्व क्रोधता। इसका विस्तार दोष चित्त में लिखा जा चुका है।

(८९) ईर्षा चैतसिक का प्रकाशन

अन्य की सम्पत्ति में ईर्षा होना ही, ईर्षा चैतसिक है। उसका लक्षण है दूसरों की सम्पत्ति को देखकर डाह होना या असहिष्णुता। उसका कृत्य है परसम्पत्ति में ही अप्रीतिता।

उसका आकार है अन्य सम्पत्ति से विमुख होना। उसका समीप कारण है दूसरों की सम्पत्ति ही। ईर्षा कोई लाभदायक नहीं। अपने हित को नाश करती है। यह बहुत भयानक अकुशल धर्म है। इससे दूर होने के लिए अवश्य उत्साह करना चाहिये।

(६०) मात्सर्य चैतसिक का प्रकाशन

कृपणता ही मात्सर्य है। उसका लक्षण है, अपनी सम्पत्ति को छिपाना। उसका कृत्य है अपनी सम्पत्ति को ही अन्य मिश्रता से अक्षमता। उसका आकार है अमनापता से संकोचाविर्भावता। उसका प्रधान कारण है निवास स्थानादि अपनी सम्पत्ति ही।

१ अपना आश्रम आदि को अपने ही अधीन होने की इच्छा आवासमत्सर है।
२ अपना रिस्तेदार आदि को० कुलमत्सर है।
३ अपने लाभ को० लाभमत्सर है।
४ अपने सकल सूरत अच्छाई को० वर्णमत्सर है।
५ परियत्ति धर्म को दूसरों पर अप्रकाशित होने तक इच्छा करना धर्ममत्सर है।

यह मत्सर अपने को ही अहित कारक है। इन पाँचों में से आवासमत्सर जो है। वह तप्त लोह गृह नरक में फल देता है। कुलमत्सर से गूथ नरक में होता है। लाभ मत्सर से अल्प लाभ होता है। वर्ण मत्सर से कुरूप होता है। धर्म

मत्सर से उष्ण भस्म नरक में होता है। ईर्षा, बाहिर गोचर है मत्सर अभ्यन्तर गोचर है यह दोनों का भेद है।

(९१) कौकृत्य चैतसिक का प्रकाशन

पश्चाताप होना ही कौकृत्य है। उसका लक्षण है फिर से अनुशोचना। उसका कृत्य है, किये हुए पाप और न किये हुए पुण्य में पुनः २ अनुस्मरण और अनुशोचन। उसका आकार है, कलुषित चित्त का अविर्भावता। उसका प्रधान कारण है कतदुश्चरित और अकत सुचरितता। कौकृत्य जो है वह किये हुए अकुशल काम और अकिये हुए कुशल काम ही गोचर होने के कारण अतीत काल है ऐसा अवश्य जानिए।

(९२) स्त्यान चैतसिक का प्रकाशन

चित्त की अक्षमता ही स्त्यान है, उसका लक्षण है उत्साह रहितता। उसका कृत्य है पराक्रम को विनाशना। उसका आकार है सम्पयुक्त धर्मों को संकुचानाविर्भावता। उसका प्रधान कारण है, अनुचित मनस्कारता।

(९३) मिद्ध चैतसिक का प्रकाशन

चैतसिक का अक्षमता ही मिद्ध है, उसका लक्षण है अकर्मण्यता। उसका कृत्य है सम्पयुक्त धर्मों की बन्धनता। उसका आकार है गोचर लेने में सँकुचनाविर्भावता। उसका प्रधान

कारण है, अनुचित मनस्कारता। स्त्यान और मिद्ध, औद्धत्य और कौकृत्य, उद्योग के खिलाफ और समय के विरुद्धता से समान स्वभाव है। स्त्यान जो है वह चित्त का अकर्मण्य लक्षण है। मिद्ध जो है वह वेदना तीन स्कन्धों का अकर्मण्य लक्षण है।

(८४) विचिकित्सा चैतसिक का प्रकाशन

ज्ञान रूपी चिकित्सा से रहित होना ही विचिकित्सा है। उसका लक्षण है सन्देहता, उसका कृत्य है नाना गोचर में चित्त का कम्पन। उसका आकार है अनिश्चयताविर्भावता। उसका प्रधान कारण है अनुचित मनस्कारता। इसका विस्तार चित्त परिच्छेद विचिकिच्छाचित्त प्रकाशन में देखिए। यह १४ अकुशल चेतसिक प्रकाशन समाप्त।

(८५) श्रद्धा चैतसिक का प्रकाशन

बुद्धादि अच्छे गोचरों में प्रसन्न होना ही श्रद्धा है। उसका लक्षण है त्रिरत्न, कर्म और कर्म फल में श्रद्धेयता। उसका कृत्य है। कलुषित धर्मों को हटाकर सम्पयुक्त धर्मों को स्वच्छापना। उसका आकार है, सम्पयुक्त धर्मों के निर्मलता से आवीर्भावता। उसका प्रधान कारण है। बुद्धादित्रिरत्न, कर्म और कर्म फलों में श्रद्धेयता। श्रद्धा वाला ही दान, शील, और भावना, धर्मों को कर सकता है। श्रद्धा जो है वह, हाथ, धन, और बीज के

समान है। जैसा हाथ वाला ही अनेक वस्तुओं को ले सकता है। वैसा श्रद्धा रूपी हाथ वाला अनेक प्रकार के कुशल, ऐश्वर्य, और श्रावक बोधि, प्रत्येक बोधि और सम्यक् सम्बोधि को भी ले सकता है। इसलिए श्रद्धा हाथ के समान है। जैसा धन-वन्त मनुष्य अनेकविध वस्तु को मनोरथ पूरा होने तक ले सकता है। वैसा श्रद्धा वाला, मनुष्य, देव, ब्रह्म सम्पत्ति को भी ले सकता। अतः श्रद्धा धन के समान है। जैसा बीज जो है, वह पेड़, अङ्कुर, फूल, फल, पत्तों का प्रारम्भ प्रधान है। वैसा श्रद्धा भी शेष सत्पुरुषों के धर्म और मनुष्य, देव, और ब्रह्मा, के ऐश्वर्यों के मूल प्रारम्भ हैं। इसलिए श्रद्धा बीज के समान है।

१ आगम श्रद्धा, जो है वह बोधि सत्त्वों के श्रद्धा होने के कारण अनेक प्रकार के जन्म में स्थित है।

२ अधिगम श्रद्धा, जो है वह स्रोतापन्नादि आर्यों की श्रद्धा होने के कारण निर्वाण तक स्थित है।

३ ओकम्पन श्रद्धा, जो है वह ज्ञान सम्पयुक्त होने के कारण जन्म भर दृढ़ होकर स्थित है।

४ प्रसन्न श्रद्धा जो है वह ज्ञान विप्पयुक्त होने के कारण नाशवान् और अस्थिर है।

मिथ्या दृष्टियों के शिष्यगण अपने गुरुओं पर विश्वास करना, मुद्ध प्रसन्न श्रद्धा है। वह स्वभाव से मोह चैतसिक है। अन्य श्रद्धा, श्रद्धा चैतसिक है, ऐसा जान लीजिए।

(९६) स्मृति चैतसिक का प्रकाशन

अच्छे विषयों का स्मरण ही स्मृति चैतसिक है। उसका लक्षण है, गोचरों को दृढ़ रखना। उसका कृत्य है प्रमाद का नाश करना। उसका आकार है चित्त रक्षकता से आविर्भूत होना। उसका प्रधान कारण है दृढ़ संज्ञा। स्मृति जो है वह गोचर में दृढ़ स्थित होने के कारण, तोरण के समान है। अथवा चक्षु-द्वार आदि को अच्छी तरह रक्षक करने के कारण प्रतिहार के समान है।

(९७) ह्री चैतसिक का प्रकाशन

कायदुश्चरितादिश्रों से घृणितता ही, ह्री चैतसिक है। उसका लक्षण है पापों से नफ़रत होना। उसका कृत्य है लज्जनाकारं से पापों को न करना। उसका आकार है पाप से संकोचनता से आविर्भावता। उसका प्रधान कारण है, आत्मगौरवता। ह्री जो है वह कुलीन बहू के समान है। जैसा कि कुलीन बहू बुराइयों से लज्जा करती है वैसा ही पाप और दुश्चरित कर्मों से लज्जा और घृणित है।

(९८) अपत्रपा चैतसिक का प्रकाशन

कायदुश्चरितादि पापों से ही उद्विग्नता अपत्रपा है, उसका लक्षण है। पाप से त्रासता, उसका कृत्य है त्रासता से पापों को

न करना। उसका आकार है पाप से संकोचनता से आवी र्भावता। उसका प्रधान कारण है, परगौरवता। अपत्राप जो है वह जैसा वेश्या पर गौरव के हेतु गर्भ धारण से उद्विग्न होता है। वैसा पाप कर्म से उद्विग्न है। ह्री और अपत्रपा, दोनों में से ह्री जो है वह अपने आत्मा को लक्ष्य करके होने से आठ भेद स्वभाव है। लज्जा होने का कारण।

१ अपना श्रेष्ठ जातिता को विचारना जाति है।
२ अपना वयोवृद्धिता को विचारना वय है।
३ अपना बहादुरता को विचारना सूरभाव है।
४ अपना बहुश्रुतता को विचारना बाहु सच्च है।
५ अपना कुल श्रेष्ठता को विचारना कुल महत्त है।
६ अपना गुरु बुद्ध श्रेष्टता को विचारना सत्थु महत्त्व है।
७ अपना उत्तम उत्तराधिकारिता को विचारना दायज्ज महत्त्व है।
८ अपना श्रेष्ठ मित्रता को विचारना सब्रह्मचारी महत्त्व है

१ अपने आपको अपवाद करना
अत्तानुवादभय,
२ दूसरों से अपने प्रति अपवाद करना
परानुवादभय,
३ राजदण्डादि दशों से अपवाद होना
दशदण्डभय,
४ अपायगति पतन से अपवाद होना
दुग्गतिभय,

} अपत्रपा जो है, वह बाहर को लक्ष्य करके उत्पन्न स्वभाव चार है।

(९९) अलोभ चैतसिक का प्रकाशन

रूपादि गोचरों में अलग्नता ही अलोभ है। उसका लक्षण है गोचर में अलग्नता, उसका कृत्य है अपरिग्रहता, उसका आकार है गोचरों से लग्न रहितता से आविर्भावता। उसका प्रधान कारण है विज्ञान ही। अलोभ जो है, वह कमल पत्र में स्थिर जल, और क्लेश मुक्त अर्हन्त के समान है।

(१००)अद्वेष चैतसिक का प्रकाशन

कठोर-रहित और दोष-रहित होना ही अद्वेष है। उसका लक्षण है, अकठोरता, उसका कृत्य है, द्वेष भाव हटाना, उसका आकार है। सौम्य भाव से आविर्भाव होना। उसका प्रधान कारण है, विज्ञान ही। अद्वेष जो है वह योग्य मित्र, चन्दन खण्ड और पूर्णचन्द्र के समान है। अलोभो दान हेतु। अदोषो शीलहेतु। अमोहो भावना हेतु। "अलोभेन प्रिय विप्पयोग दुक्खं न अदोषेन अपिय सम्पयोग दुक्खं न होति। अमोहेन इच्छितालाभ दुक्खं न होति। अलोभेन जाति दुक्खं न होति अदोषेन जरा दुक्खं। अमोहेन न मरण दुक्खं, अलोभो अरोग्यस्सपच्चयो होति, अदोषो योब्बनस्स। अमोहो दीघायुकताय। अलोभो भोगसम्पत्तिया पच्चयो होति। अदोषो मित्तसम्पत्तिया, अमोहो अत्तसम्पत्तिया, अलोभेन अनिच्चदस्सनं होति। अदोषेन दुक्खदस्सनं अमोहेन अनत्तदस्सनं होति। यह अट्ठसालिनी है।

(१०१) तत्रमध्यत्तता चैतसिक का प्रकाशन

उन २ सभावधर्मों में उदासीनता ही तत्र मध्यत्तता है। उसका लक्षण है बराबर अपने-अपने कृत्य में उत्पन्न कराना। उसका कृत्य है, ऊनाधिक-निवारणता, उसका आकार है मध्यमता से आविर्भावता। उसका प्रधान कारण है प्रतिवियोगता। "समम्पवत्तान' आजानेय्यान' अज्भुपेक्खन' अज्भुपेक्खनसारथिवियदट्ठब्बा।" बराबर गमन करने वाले आजानेय घोड़ों पर गाड़ीवान् जैसा उपेक्षा होता है। वैसा तत्र मध्यत्तता चैतसिक को जानिए। तत्र मध्यत्तता और उपेक्षा, दोनों का लक्षण क्या है? तत्र मध्यत्तता जो है वह चैतसिक का लक्षण है। उपेक्षा, चित्त का लक्षण है।

(१०२) कायप्रश्रब्धि-चित्तप्रश्रब्धि चैतसिकों का प्रकाशन

वेदना, संज्ञा, और संस्कार रूपी तीन-तीन स्कन्धों की प्रश्रब्धि ही काय प्रश्रब्धि है। विज्ञान रूपी विज्ञान-स्कन्ध की प्रश्रब्धि ही चित्त प्रश्रब्धि है। इनका लक्षण हैं काय और चित्त को संतप्त करने वाले औद्धत्य प्रधान क्लेशों को हटवा देना। इनका कृत्य हैं, काय और चित्त को संताप करनेवाले औद्धत्य प्रधान क्लेशों को मर्दनता। इनका आकार है काय चित्तों के संतापन और कम्पन रहित होके शान्ति भाव से ज्ञानाविर्भावता। इनका प्रधान कारण है काय और चित्त ही।

(१०३) कायलघुता चित्तलघुता चैतसिकों का प्रकाशन

वेदना आदि तीन स्कन्धों की लघुता ही कायलघुता है। विज्ञान, स्कन्ध की लघुता ही चित्त लघुता है। इनका लक्षण है काय चित्तों के गुरुत्व से शान्ति। इनका कृत्य है इनके गुरुत्व करनेवाले क्लेशों को मर्दनता। इनका आकार है, अगुरुभाव से आविर्भावता। इनका प्रधान कारण है काय और चित्त ही कायलघुता और चित्त लघुता, यह दो गुरुत्व करनेवाले स्त्यान और मिद्ध, आदि क्लेशों के विरोध होते हैं।

(१०४) कायमृदुता चित्तमृदुता चैतसिकों का प्रकाशन

वेदना आदि तीन स्कन्धों की मृदुता, कायमृदुता चैतसिक है। विज्ञान स्कन्ध की मृदुता चित्त मृदुता चैतसिक है। इन दोनों का लक्षण हैं काय और चित्तों के कठोरता करने वाले दृष्टि और मान प्रधान क्लेशों को हटवा देना। इनका कृत्य हैं काय, चित्तों के कठोरता करनेवाले, दृष्टि, मान प्रधान क्लेशों को मर्दनता। इनका आकार है कठोरता का मर्दन करने के कारण गोचर में अलग्नता से आवीर्भावता। इनका प्रधान कारण है काय और चित्त ही। यह दो चैतसिक, कठोरता करनेवाले दृष्टि, मान, आदि क्लेशों के विरोध है।

(१०५) कायकर्मण्यता, चित्तकर्मण्यता चैतसिकों का प्रकाशन

वेदना आदि तीन स्कन्धों की कर्मण्यता कायकर्मण्यता चैतसिक है। विज्ञान स्कन्ध की कर्मण्यता चित्त कर्मण्यता चैतसिक है। दोनों का लक्षण है दान आदि पुण्य कार्य वस्तु में अकर्मण्य, अनुचित कामच्छन्द प्रधान संक्लेश धर्मों को हटा देना। इनका कृत्य है इन संक्लेश धर्मों को मर्दनता। इनका आकार है, काय, चित्तों के आरम्भणकरणसम्पूर्णता। इनका प्रधान काय और चित्त ही। यह दो चैतसिक, अकर्मण्य करनेवाले शेष नीवरणों के विरोध हैं।

(१०६) कायप्रागुण्यता, चित्तप्रायगुण्यता चैतसिकों का प्रकाशन

वेदना आदि तीन स्कन्धों का सामर्थ्यता, काय प्रागुण्यता चैतसिक है। चित्त की सामर्थ्यता, चित्त प्रागुण्यता चैतसिक है। दोनों का लक्षण हैं रुजाऽभावता और अश्रद्धेय आदि पाप धर्मों की विरुद्धता। इनका कृत्य है काय, चित्तों के रुजाऽभावता और अश्रद्धेय आदि पाप धर्मों की मर्दनता। इनका आकार है निरावद्यता से आविर्भावता। इनका प्रधान कारण है, काय चित्त ही। यह दो चैतसिक पीड़ा करने वाले अश्रद्धेय आदि पाप धर्मों के विरुद्ध हैं।

(१०७) कायऋजुकता, चित्तऋजुकता, चैतसिकों का प्रकाशन

वेदना आदि तीन स्कन्धों का ऋजुता, कायऋजुकता चैतसिक है। चित्त का ऋजुता, चित्तुजुकता चैतसिक है। दोनों का लक्षण हैं, काय चित्तों का सीधापन, इनका कृत्य है काय चित्तों की कुटिलता को मर्दन और नाशन। इनका आकार हैं अकुटिलता से आवीर्भावता। इनका प्रधान कारण है काय, चित्त ही यह दो चैतसिक, काय, चित्तों के कुटिल करनेवाले माया आदि क्लेशों के विरुद्ध हैं।

श्रद्धा से लेकर चित्तजुकता तक उन्नीस चैतसिकों को उनसाट शोभन चित्तों से संयोग होने के कारण शोभन साधारण चैतसिक कहते हैं। शोभन साधारण प्रकाशन समाप्त।

(१०८) सम्यक् वाक् चैतसिक का प्रकाशन

सुन्दर वचन ही सम्यक् वाचा है। उसका लक्षण है सम्प्युक्त धर्मों को परिग्रह करना। उसका कृत्य है मिथ्या वचन से विरमना। उसका आकार है मिथ्यावाणी को त्याग करना ऐसा ज्ञान में आविर्भावता। उसका प्रधान कारण है श्रद्धा, ह्री, अपत्ताप, अल्पिच्छता आदि गुण युक्तता। कुलपुत्रों ने अकस्मात् कथित किया हुआ मृषावाद, पैशुन्यवाद, पारुषा, प्रलाप वचन, यह चारवाक दुश्चरित, जीवन् निर्वाह न होने के कारण मिथ्या वचन है। उनसे विरमन करना सम्यक् वाचा है।

(१०९) सम्यक् कर्मन्त चैतसिक का प्रकाशन

दान, शील आदि कुशल काम ही सम्यक् कर्मन्त है। उसका लक्षण है अच्छे कर्मों को उत्पन्न कराना। उसका कृत्य है मिथ्या कर्मों से वर्जना, उसका आकार है मिथ्या कर्मों को हटा भाव से ज्ञान में अविर्भावता। उसका प्रधान कारण है श्रद्धा, ह्री, अपत्राप, अल्पिच्छता आदि गुण युक्तता। कुल पुत्रों ने कदाचित् किये हुए प्राणातिपात, अदत्तादान, काम मिथ्याचार यह तीन दुश्चरित, पेशा न होने के कारण मिथ्या कर्मन्त हैं। उन मिथ्या कर्मों से विरमना सम्यक् कर्मन्त है। बिना पेशा के चार वाक् दुश्चरितों से विरमना सम्यक् वचन है। विना पेशा के तीन काय दुश्चरितों से विरमना सम्यक् कर्मान्त है।

(११०) सम्यगाजीव चैतसिक का प्रकाशन

कृषि आदि अच्छे कर्मों से पेशा करना सम्यगाजीव है। उसका लक्षण है पेशेवाले को पवित्र करना और सम्पयुक्त धर्मों को पवित्र कराना। उसका कृत्य है योग्यता से जीवन निर्वाह कराना। उसका आकार है मिथ्याऽजीवता को त्याग भाव से ज्ञान में आविर्भावता। उसका प्रधान कारण है श्रद्धा, ह्री, अपत्राप, अल्पिच्छता आदि गुण युक्तता। पेशा के हेतुभूत, कायदुश्चरित, और वाक् दुश्चरितों से विरत भाव से सात प्रकार से सम्यगाजीव है। पहले दो बिना पेशा के विरत करते हैं। पिछला जो है वह पेशा के ख्याल से विरत करता है यह

तीन, विरति चैतसिक है। इन तीनों में सम्पत्त विरति, समादान विरति, समुच्छेद विरति, भेद से प्रत्येक तीन-तीन होने के कारण नव-नौ विरति है। सन्मुख पहुँचे हुए वस्तुओं से विरत करने को सम्पत्तविरति, गुरुजनों से स्वीकृत वस्तुओं से विरत करने को समादान विरति, स्रोतापत्ति-मार्गादिओं से समूल छिन्न-भिन्न करके एक दम विरत करने को समुच्छेद विरति, कहते हैं। तीन विरति चैतसिक, जैसा, फलते हुए आम के पेड़ को काट देने से वर्तमान और अनागत फलों का काटना, या मारना, कहा जाता है। वैसा वर्तमान और अनागत, दुश्चरितों से विरत होता है। अतीत का विरत नहीं हो सकता। बिना पेशा के किया हुआ प्राणातिपातादि काम दुश्चरित है। पेशा के लिये किया हुआ प्राणातिपातादि काम दुराजीव है।

(१११) करुणा चैतसिक का प्रकाशन

दुःख पीड़ितों पर दया होना करुणा है। उसका लक्षण है दुखियों को दुःख से बचाने की इच्छा, उसका कृत्य है अन्य दुःख को अक्षमता, उसका आकार है प्राणियों को अहिंसता से ज्ञान में आविर्भावता। उसका प्रधान कारण है अनाथता दर्शन, करुणा जो है वह हिंसकता को विनाशता है।

(११२) मुदिता चैतसिक का प्रकाशन

सुखितों को देखकर प्रसन्न या खुश होना मुदिता है। उसका लक्षण है दूसरों के ऐश्वर्य सम्पत्ति से पूर्णता को प्रमोदना, उसका

कृत्य है ईर्षारहितता, उसका आकार है अन्य सम्पत्ति में अरतिया अप्रीति को घातकता। उसका प्रधान कारण है अन्य सम्पत्ति पूर्णता को उचित मनस्कारता। यह दो अप्रमाण है, इसमें दूसरे चैतसिकों जैसा संख्या क्यों नहीं लगाई? यह दो ही नहीं, नवाँ परिच्छेद में, चतस्सो अप्पमञ्ञायो, कहेंगे। इसलिए यदि इस परिच्छेद में चार गिन लेना चाहें, तो अदोष चैतसिक को मेत्ता, तत्र मध्यत्तता चैतसिक को उपेक्खा, गिन लीजिए। पाली अनुवाद में देखिए।

(११३) प्रज्ञा चैतसिक का प्रकाशन

सब प्रकार से अनित्यतादि सत्य स्वभाव को जानना प्रज्ञा है। उसका लक्षण है स्वभाव धर्म को अविपरीत जानना। उसका कृत्य है सत्यता को छिपाने वाले मोहान्धकार को नाश करना। उसका आकार है गोचर में मोह से रहित होकर ज्ञान में आविर्भावता। उसका प्रधान कारण है समाधि-एकाग्रता, अमोह चैतसिक को ही प्रज्ञा, तथा प्रज्ञेन्द्रिय कहते हैं। प्रज्ञेन्द्रिय चैतसिक जो है वह अनित्यतादि धर्मों को अवबोधन और अधिपति लक्षण है। दृष्टि; और प्रज्ञा, दोनों का जानना क्या अन्तर है? दृष्टि जो है वह विपरीत भाव से अवबोध होता है, प्रज्ञा जो है वह अविपरीतता से अवबोध होता है। तीन प्रकार के जानना, संज्ञा चैतसिक, प्रकाशन में देखिए।

१ सात्थक, संप्रज्ञ, हिताहित को जानता है,
२ सप्पाय, संप्रज्ञ, उचितानुचित को जानता है,
३ गोचर, संप्रज्ञ, उचिताऽनुचित गमन को जानता है,
४ असम्मोह, संप्रज्ञ ४० कर्म स्थानों को मोह रहित जानता है,

} ४ प्रकार के प्रज्ञा।

इनमें से गोचर संप्रज्ञ में, वड़ी युवती, पण्डक हिजड़ा, ताड़ी खाना, वेश्या, पति रहित स्त्री, विधवा, भिक्षुणी, यह छः अगोचर गमन करने अयोग्य है। श्रद्धा से प्रज्ञा तक पचीस चैतसिक, शोभन चित्तों में युक्त होने के कारण शोभन साधारण चैतसिक हैं। शोभन चैतसिक समाप्त।

प्रकाशित—५२ चैतसिक, चित्त के साथ होना, साथ निरोधना, समान गोचर, समान वस्तव्य, कहने के विषय में सम्पयोग और सङ्गह, दो भागों से विभाजित है। चैतसिक में चित्त को संख्या लगाकर प्रकाशित करना, सम्पयोग है। चित्त में चैतसिक को संख्या लगाकर प्रकाशित करना सङ्गह है।

तेरह अञ्ञसमान चैतसिकों में से सात सबचित्तसाधारण चैतसिक, सब नवासी चित्तों में नित्य युक्त होते हैं। छः पकिण्णक चैतसिकों में से वितक्क चैतसिक, दश पञ्चविज्ञान वर्जित ४४ कामचित्त, ग्यारह प्रथम ध्यान चित्त, कुल ५५ चित्तों में युक्त हैं। विचार चैतसिक, वितक्क युक्त, ५५ चित्तों में ग्यारह द्वितीय ध्यान चित्त को प्रवेश करके ६६ चित्तों में युक्त है। अधिमोक्ख

चैतसिक, दश पञ्चविज्ञान एक विचिकित्सा, वर्जित। ७८ चित्तों में युक्त है। प्रीतिचैतसिस, दो दोषमूल, ५५ उपेक्षा सहगत, दो कायविज्ञान, ग्यारह चतुर्थध्यान चित्त, कुल ७० वर्जित ५१ चित्रों में युक्त है। छन्दचैतसिक, १८ अहेतुक, दो मोमूह वर्जित ६९ चित्तों में युक्त है। १३ अञ्ञसमान चैतसिकों में सात सब्बचित्त साधारण चैतसिकों को एक साथ लेकर ६ पकिण्णक चैतसिकों को क्रमशः पृथक् २ लेकर सात सम्पयोगनय हैं।

(११४) ६ प्रकीर्णक चैतसिकों का भाव प्रकाशन

वितक्क, विचार, प्रीति, यह तीन ध्यान के अङ्ग रूपी चैतसिक होकर विस्तार १२१ चित्तों में युक्त है। वाकी तीन चैतसिक ध्यान के अङ्ग न होने के कारण संक्षेप ८९ चित्तों में युक्त हैं। वितक्क चैतसिक, दशपञ्चविज्ञानों में क्यों नहीं होता है? दश पञ्चविज्ञानों के स्वभाव से अवितक्क होने के कारण अथवा ध्यानाङ्गों से रहित होने के कारण नहीं होता। द्वितीयादि ध्यानों में भावना के बल से नहीं होता। अधिमोक्ख चैतसिक, दश पञ्चविज्ञान और विचिकित्सा में क्यों नहीं होता? दश पञ्चविज्ञान, निश्चय स्वभाव रहित है, विचिकित्सा अधिमोक्ख के ख़िलाफ़ है, इसलिये, इन दोनों में नहीं होता।

वीर्य चैतसिक, पञ्चद्वारावज्जन, दश पञ्चविज्ञान, सम्पतिच्छन, सन्तीरण, चित्तों में बलरहित होने के कारण नहीं होता। प्रीतिचैतसिक, २ दोषमूल, ५५ उपेक्षा में न होना तो उचित है।

दो कायविज्ञान, ग्यारह चतुर्थध्यान चित्तों में क्यों नहीं होता? सुख बेदना के कायिक सुख होने के कारण, मानसिक रूपी प्रीति उसमें (सुखसहगत कायविज्ञानचित्त) नहीं होता, सुखसहगत कायविज्ञानचित्त, रूपकाय सुख को भोगता है। प्रीति नामकाय सुख को भोगता है। ग्यारह चतुर्थध्यानचित्तों में भावना के बल से प्रीति नहीं होता? छन्द चैतसिक, अठारह अहेतुक और दो मोमूह चित्तों में क्यों नहीं होता? इन चित्तों में स्वभाव से छन्दरहित है, अतः नहीं होता।

(११५) ६ प्रकीर्णक चैतसिकों के स्वरूप का प्रकाशन

(१) प्रीति से ही युक्त होकर विचार से नयुक्तचित्त, नहीं, विचार से ही युक्त होकर प्रीति से नयुक्त ग्यारह द्वितीय ध्यान चित्त, दोनों से युक्त ५५ दोनों से नयुक्त ५५—१२१ होता है।

(२) वितक्क से ही युक्त होकर अधिमोक्ख से न युक्त, एक विचिकित्सा, अधिमोक्ख से युक्त होके वितक्क से न युक्त, ५६ चित्त। दोनों युक्त ५४, दोनों से न युक्त, दशचित्त। १२१ होता है।

(३) वितक्क से ही युक्त होकर वीर्य से न युक्त ६ चित्त, वीरिय से युक्त होके, वितक्क से न युक्त, ५६ चित्त, दोनों से युक्त ४९, दोनों से न युक्त, दश।

(४) वितक्क से ही युक्त होकर प्रीति से न युक्त २६, प्रीति से युक्त होके वितक्क से न युक्त २२ चित्त, दोनों से युक्त २९, दोनों से न युक्त ४४।

(५) वितक्क से ही युक्त होकर छन्द से न युक्त, दश, छन्द से युक्त होके वितक्क से न युक्त ५६, दोनों से युक्त २९, दोनों से न युक्त ४४।

इसी तरह विचार प्रधान में अधिमोक्ख को प्रवेश कर लो। अधिमोक्ख प्रधान में वीर्य को प्रवेश कर लो। वीर्य-प्रधान में प्रीति को प्रवेश कर लो, प्रीति प्रधान में छन्द को प्रवेश कर लो। अञ्ञसमान सम्पयोग समाप्त।

(११६) अकुशल सम्प्रयोग का प्रकाशन

चौदह अकुशल चैतसिकों में से मोह, अह्री, अनपत्राप, औद्धत्य, यह चार चैतसिक बारह अकुशल चित्तों से युक्त होने के कारण सब्बा कुशल साधारण हैं। लोभ चैतसिक, आठ लोभमूल चित्तों में ही युक्त है। दिट्ठिचैतसिक, चार दिट्ठिगत सम्पयुक्त चित्तों में ही युक्त है। मान चैतसिक चार दिट्ठिगत विप्पयुक्त चित्तों में युक्त है। दोष, ईर्षा, मत्सर, कौकृत्य यह चार दोषमूल चित्तों में ही युक्त हैं, स्त्यान और मिद्ध पाँच ससंखारिक चित्तों में युक्त है। विचिकित्सा चैतसिक, विचिकित्सा सहगत चित्त में ही युक्त है। १२ अकुशल चित्तों में युक्त चैतसिक ४, आठ लोभ मूल चित्तों में ही युक्त चैतसिक ३,

२ दोषमूलचित्तों में ही युक्त चैतसिक ४, ५ ससंखारिक चित्तों में ही युक्त चैतसिक २, विचिकित्सा सहगत चित्त में ही युक्त चैतसिक १ इस प्रकार पुनः २ मनन कीजिए।

॥ अकुशल सम्पयोग समाप्त ॥

(११७) शोभन सम्प्रयोग का प्रकाशन

२५ शोभन चैतसिकों में से उन्नीस शोभन साधारण चैतसिक उनसठ शोभनचित्तों में युक्त हैं। तीन विरति चैतसिक, उन २ दुश्चरित, दुराजीवों को वर्जित किये जाने से आठ लोकोत्तर चित्तों में नित्य युक्त हैं। आठ महाकुशल चित्तों में कभी २ अलग २ युक्त हैं। केवल इन १६ चित्तों में ही युक्त हैं गोचर के भिन्न होने के कारण पृथक् २ युक्त है ऐसा जानिए। दो अप्पमञ्ञा चैतसिक, पञ्चमध्यान वर्जित, १२ रूपावचर, आठ महाकुशल, आठ महाक्रिया, कुल २८ चित्रों में ही युक्त हैं, गोचर भेद से पृथक् २ कभी २ युक्त समझिए।

(११८) केचित् वाद और समान वाद का प्रकाशन

कोई २ आचार्यगण, कामावचर उपेक्षा चित्तों में अप्पमञ्ञा चैतसिक युक्त नहीं हो सकता ऐसा कहते हैं। समानवाद आचार्यगण, कामावचर उपेक्षा चित्तों में अप्पमञ्ञा चैतसिक, अप्पनावीथि के पूर्व भाग परिकर्म के विषय में युक्त हो सकता है

ऐसा कहते हैं। पञ्ञा-प्रज्ञा चैतसिक, महाकुशल, विपाक और क्रिया १२ ज्ञान सम्पयुक्त, पन्द्रह रूपावचर, बारह अरूपावचर, आठ लोकोत्तर कुल ४७ चित्तों में युक्त है। शोभन सम्पयोग समाप्त।

(११६) ग्यारह अनियत चैतसिकों का प्रकाशन

इस्सामच्छेरकुक्कुच्चा विरतिकरुणादयो नानाकदाचिमानोच थिनिमिद्धं तथासह। इस श्लोक के अनुसार, ईर्षा मत्सर आदि चैतसिक, इस प्रकार अलग २ होते हैं। जब दूसरे का उत्कर्ष न सहन होने की वृत्ति है तब ईर्षा होता है। मत्सर कौकृत्य नहीं होते। जब अपनी सम्पत्ति को छिपाता है तब मत्सर होता है अन्य दो नहीं होते। जब किये हुए दुश्चरित और न किये हुए सुचरितों में पश्चताप होता है तब कौकृत्य होता है। अन्य दो नहीं होते। यह अलग २ होने का भाव है। कभी २ होने को इस तरह जानिए पराई सम्पत्ति में डाह होते समय ईर्षा होता है। अन्य समय नहीं होता, मत्सर और कौकृत्यों में भी इसी तरह समझ लीजिए। यह कभी २ होने का भाव है। तीन विरति चैतसिकों का पृथक् २ होने को इस प्रकार जान लीजिए। बिना पेशा के कत्त, चार वाक् दुश्चरितों से विगत करते समय सम्यक् वाचा होता है। अन्य दो नहीं होते, बिना पेशा के ख्याल से कततीनकायदुश्चरितों से विरत करते समय सम्यक् कर्मन्त होता है। अन्य दो नहीं होते, पेशा के

ख्याल से कत चार वाक् दुश्चरित और तीन कायदुश्चरितों से विरत करते समय सम्यक् आजीव होता है अन्य दो नहीं होते। यह पृथक् होने का भाव है, कभी होने को ऐसा जानिए। पेशा के ख्याल के बगैर कतवाक् दुश्चरितों से विरत समय सम्यक् वचन होता है। न विरत समय नहीं होता, शेष दोनों में भी इसी तरह समझिए। यह कदाचित् होने का भाव है। अप्प मञ्ञा चैतसिकों का पृथक् होने को ऐसा जानिए। दुःखितों को मनन करके दया होते समय करुणा होता है। मुदिता नहीं, सुखितों को मनन करके प्रमोद होते समय मुदिता होता है; करुणा नहीं, यह पृथक् होने का भाव है। कभी होने को ऐसा जानिए। दुःखितों पर दया होते समय करुणा होता है। दया न होते समय नहीं। सुखितों को देखकर प्रमोद होते समय मुदिता होता है। न होते समय नहीं, यह कदाचित् होने का भाव है।

मान चैतसिक अपने को अहंकार करते समय होता है। अहंकार न करते समय नहीं होता। यह कदाचित् का भाव है, लोभमूल विप्पयुक्त २ ससंखारिक चित्त में स्त्यान, मिद्ध के साथ मान चैतसिक, सह, और नाना, दोनों प्राप्त है। चार नाम स्कन्धों के मलीन और अयोग्य होते समय स्त्यान, मिद्ध, होता है। इसके विपरीत-उलटा समय नहीं होता। इन दोनों को कदाचित और सह, चैतसिक भी कह सकते हैं। चित्त और चैतसिक का मलीनता ही भेद है।

(१२०) नियत योगी, अनियत योगी—नित्य युक्त अनित्य युक्त चैतसिकों का प्रकाशन

यथावुत्तानुसारेन सेसा नियत योगिनो। इस श्लोक के अनुसार, दोषमूल चित्त के साथ उत्पन्नारह चैतसिकों में से, ईर्षा, मत्सर, कौकृत्य, यह तीन चैतसिक नित्य युक्त न होने के कारण अनियत योगि शेष १७ चैतसिक, नित्य युक्त होने के कारण नियत योगि हैं। कामावचर कुशल चित्त के साथ उत्पन्नारह चैतसिकों में से तीन विरति चैतसिक, नित्य युक्त न होने के कारण अनियत योगि, शेष ३५ चैतसिक, नित्य युक्त होने के कारण नियत योगि हैं। पञ्चम ध्यान वर्जित १२ रूपावचर चित्त, कामावचर कुशल, सहेतुक कामावचर क्रिया, इन चित्तों के साथ उत्पन्नारह चैतसिकों में से करुणा और मुदिता, चैतसिक, नित्य न युक्त होने के कारण अनियत योगि, शेष ३३ चैतसिक, नित्य युक्त होने के कारण नियत योगि हैं। लोभमूल दिट्ठिगत विप्पयुक्त चित्तों के साथ उत्पन्नाऽरह चैतसिकों में से मान चैतसिक, नित्य न युक्त होने के कारण अनियत योगि, शेष १७ चैतसिक, नित्य युक्त होने के कारण नियत योगि हैं। लोभ-मूल और दोषमूल-ससंखारिक चित्तों के साथ उत्पन्नाऽरह चैतसिकों में से, स्त्यान, मिद्ध, चैतसिक, नित्य न युक्त होने के कारण अनियत योगि, शेष १९ चैतसिक नित्य युक्त होने के कारण नियत योगि हैं। नियतानियत योग प्रकाशन समाप्त।

सोलह प्रकार का सम्पयोग समाप्त

(१२१) लोकोत्तर चित्त का संग्रह प्रकाशन

लोकोत्तर चित्तों में से, आठ प्रथम ध्यान चित्तों में १३ अञ्ञ समान, अप्पमञ्ञावर्जित २३ शोभन, चैतसिक, ऐसा ३६ लब्ध है। आठ द्वितीय ध्यान चित्तों में ३६ चैतसिकों में से वितक्क वर्जित ३५ लब्ध है। आठ तृतीय ध्यान चित्तों में ३५ में से वितक्क, विचार वर्जित ३४ लब्ध है। आठ चतुर्थ ध्यान चित्तों में ३४ में से प्रीति वर्जित ३३ लब्ध है। आठ पञ्चम ध्यान चित्तों में ३३ में से सुख को हटाकर और उपेक्षा को प्रवेश कर ३३ ही लब्ध है। लोकोत्तर चित्त, निर्वाण गोचर है। अप्पमञ्ञा प्रज्ञप्ति गोचर हैं। अतः लोकोत्तर में, अप्पमञ्ञानं सत्तारम्भणत्ता, लोकौत्तरानञ्च निर्वाणारम्भणत्ता वुत्तं अप्पमञ्ञावर्जितानि। विभावनी टीका पर कहा है। ५ लोकोत्तर संग्रह समाप्त।

(१२२) महग्गत चित्त का संग्रह प्रकाशन

२७ महग्गत चित्तों में से ३ प्रथम ध्यान चित्तों में १३ अञ्ञसमान, विरतिवर्जित २२ शोभन चैतसिक, ऐसा ३५ लब्ध है। ३ द्वितीय ध्यान चित्तों में ३५ में से वितक्क वर्जित ३४ लब्ध है। ३ तृतीय ध्यान चित्तों में ३४ में से विचार वर्जित ३३ लब्ध है। ३ चतुर्थ चित्तों में से प्रीति वर्जित ३२ लब्ध है। २५ पञ्चम ध्यान चित्तों में ३२ में से अप्पमञ्ञावर्जित ३० चैतसिक लब्ध है।

गोचर के असमान होने के कारण विरति चैतसिक, महग्गत चित्तों में युक्त नहीं हो सकता। विरति चैतसिक का गोचर है दुश्चरित और दुराजीव, महग्गत चित्त का गोचर है प्रज्ञप्ति और महग्गत, इसी तरह गोचर भिन्न होने के कारण युक्त नहीं। पञ्चम ध्यान के उपेक्षा होने के कारण अप्पमञ्ञा वर्जित है। विरति और अप्पमञ्ञा, यह पाँच ब्रह्माओं में नहीं लब्ध है। कामावचर कुशलादि से युक्त करके, लब्ध है ऐसा अवश्य समझिए।

(५) महग्गत संग्रह समाप्त।

(१२३) कामावचर संग्रह का प्रकाशन

२४ कामावचर शोभन चित्तों में से महाकुशल प्रथम दुक में १३ अञ्ञसमान, २५ शोभन चैतसिक, ऐसा ३८ चैतसिक प्राप्त हैं। द्वितीय दुक में ३८ में से प्रज्ञेन्द्रिय को छोड़कर ३७ प्राप्त है। तृतीय दुक में ३७ में से प्रज्ञेन्द्रिय को प्रवेश करके और प्रीति को हटाकर ३७ ही प्राप्त है। चतुर्थ दुक में ३७ में से प्रज्ञेन्द्रिय को छोड़कर ३६ प्राप्त है। यह महाकुशल चित्त में युक्त विधि है। विरति और अप्पमञ्ञा के युक्त होने में एक साथ नहीं, कदाचित् और पृथक् समझिए, महाक्रिया प्रथम दुक में ३८ में से विरति को छोड़कर ३५ मिलता है, द्वितीयदुक में प्रज्ञेन्द्रियों को छोड़कर ३४ मिलता है। तृतीयदुक में ३४ प्रज्ञे-न्द्रियों को प्रवेश करके और प्रीति को छोड़कर ३४ ही मिलता

है। चतुर्थ दुक में ३४ में से प्रज्ञेन्द्रिय को छोड़कर ३३ मिलता है, यह महा क्रिया चित्त में युक्त विधि है। महाविपाक चित्त, प्रथम दुक में महाक्रिया प्रथम में प्राप्त ३५ चैतसिकों में से अप्पमञ्ञा को वर्जित करके ३३ मिलता है। द्वितीय दुक में ३३ में से प्रज्ञेन्द्रियों को वर्जित करके ३२ मिलता है। तृतीय दुक में भी प्रज्ञेन्द्रिय को प्रवेश करके और प्रीति को हटा कर ३२ मिलता है। चतुर्थ दुक में ३२ में से प्रज्ञेन्द्रिय को छोड़कर ३१ मिलता है। यह विपाक की विधि है।

(१२४) विरति और अप्पमञ्ञाओं का विशेष प्रकाशन

महाविपाक चित्त का अवश्य कामगोचर होने के कारण अप्पमञ्ञा धर्मों के प्रज्ञप्ति गोचर होने के कारण, विरति धर्मों के भी अवश्य कुशल होने के कारण महाविपाक चित्त में विरति और अप्पमञ्ञा, दोनों को वर्जित है। विरति चैतसिकों के अवश्य कुशल स्वभाव होने के कारण अव्याकृत धर्मों में सम्भव नहीं। इसलिए महाक्रिय चित्त में विरति नहीं। अगर महाक्रिय चित्त में विरति युक्त नहीं है, तो बुद्ध भगवान् के धर्मोपदेश करते समय सम्यक् वचन कैसे होगा? सम्यक् वचन न कहकर सुभाषित वाचा कहा जाता है। बारह प्रकार के कामावचर संग्रह समाप्त ॥

न विज्जन्तेत्थ विरति आदि श्लोक, अनुत्तरेझानधम्मा आदि श्लोक के अनुसार, महाक्रिया और महग्गत चित्तों में विरति

युक्त नहीं होते, महाविपाक चित्त में विरति और अप्पमञ्ञा दोनों युक्त नहीं। आठ लोकोत्तर चित्तों में वितक्क, विचार, प्रीति, सुख, महग्गत चित्त में अप्पमञ्ञा, विरति, प्रज्ञेन्द्रिय, प्रीति युक्त नहीं हो सकता, अतः इन चैतसिकों को विशेषकारक कहा है।

(१२५) अकुशल संग्रह का प्रकाशन

बारह अकुशल चित्तों में से प्रथम असंखारिक चित्त में १३ अञ्ञसमान, मोह, अहिरीक, अनोत्तप्प, उद्धच्च, लोभ, दिट्ठियों के साथ १९ चैतसिक मिलता है। द्वितीय असखारिक चित्त में दिट्ठि वर्जित, मान प्रवेश १९ चैतसिक है। तृतीय असंखारिक चित्त में १९ में से प्रीति और मान को हटा कर दिट्ठि को प्रवेश करके (१८) मिलता है, चतुर्थ असंखारिक चित्त में दिट्ठि को छोड़ कर मान को प्रवेश करके १८ मिलता है। पाँचवाँ दोषमूल असंखारिक चित्त में १८ में से लोभ और मान को छोड़कर दोष, इस्सा, मच्छरिय, कुक्कुच्च को प्रवेश करके २० मिलता है। लोभमूल, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, असंखारिक इन पाँच असंखारिकों में क्रमशः प्रकाशित, १९-१९-१८-१८-२० चैतसिकों में से पाँच ससंखारिक चित्तों में क्रमशः थिन और मिद्ध को प्रवेश करके, २१-२१-२०-२०-२२ समझिए। उद्धच्च सहगत चित्त में छन्द और प्रीतिवर्जित ११, अञ्ञसमान, मोह, अहिरीक, अनोतप्प, उद्धच्च, ऐसा १५ है। विचिकिच्छा सहगत

चित्त में १५ में से अधिमोक्ख को छोड़कर और विचिकित्सा चैतसिक को लेकर पन्द्रह ही है। सात अकुशल संग्रह समाप्त।

(१२६) अहेतुक चित्त संग्रह का प्रकाशन

अठारह अहेतुक चित्तों में से हसितुप्पाद चित्त में छन्द वर्जित १२ अञ्ञसमान चैतसिक प्राप्त है। मनोद्वारावज्जन चित्त में छन्द और प्रीतिवर्जित ११ अञ्ञसमान चैतसिक प्राप्त है। सौमनस्यसन्तीरणचित्त में छन्द और वीरिय, वर्जित ११ अञ्ञसमान० है। एक पञ्चद्वारावज्जन दो सम्पत्तिच्छन, और दो उपेक्षा सन्तीरण, इन पाँच चित्तों में छन्द प्रीति और वीर्य वर्जित, दशअञ्ञसमान चैतसिक प्राप्त है। चक्षुविज्ञानादि दश विज्ञान चित्तों में सात सब्बचित्त साधारण चैतसिक प्राप्त है। अहेतुक में चार संग्रह समाप्त। अकुशल में ७, अहेतुक में ४, कामशोभन में १२, महग्गत में ५, लोकोत्तर में ५, इन पाँचों में तैंतीस संग्रह हैं। ३३ संग्रह संपूर्ण।

(१२७) चित्तेन समसुद्धि से वाक्य का भाव प्रकाशन

चैतसिक, चित्त के समान है। अर्थात् जितने चित्तों में युक्त है। उतने ही चैतसिक गिना जाता है। फस्स स्पर्श चैतसिक, संक्षेप से ८९ चित्त, विस्तार से १२१ चित्त में युक्त होने के कारण, ८९ स्पर्श और १२१ स्पर्श होता है। इसके समान, वेदना, सञ्ञा, चेतना, एकग्गता, जीवितिन्द्रिय, मन-

सिकार, चैतसिकों को भी क्रमशः संक्षेप से ८९ विस्तार से १२१ समझिए। शेष, वितक्कादि चैतसिक अपना २ युक्त चित्तों के अनुसार भेद होता है। कैसा भेद होता है? नबासी चित्त को, सात सब चित्त साधारण चैतसिकों से गुना करे तो ६२३ होता है। उनमें ५५ वितक्क चैतसिक, ६६ विचार चैतसिक, ७८ अधिमोक्ख चैतसिक, ७३ वीर्य चैतसिक, ५१ प्रीति, ७० छन्द चैतसिकों से मिला ले तो १०१५ है। १२१ चित्त को सात सब चित्त साधारण चैतसिकों से गुना करे तो ८४७ है। उनमें ५५ वितक्क चैतसिक, ६६ विचार अधिमोक्ख विस्तार १०१ वीर्य विस्तार १०५, ५१ प्रीति, छन्द विस्तार १०१ चैतसिकों से मिला ले तो १३३५ होता है। बारह अकुशल चित्त को, मोह, अहिरीक, अनोत्तप्प, उद्धच्च, इन चारों से गुणा करे तो ४८ होता है। उनमें ८ लोभ चैतसिक ४ दिट्ठि चैतसिक, ४ मान चैतसिक २ दोष चैतसिक, २ इस्सा, २ मच्छरिय, २ कुक्कुच्च, ५ थिन, ५ मिद्ध, १ विचिकिच्छा चैतसिक से मिला ले तो ८३ होता है।

संक्षेप शोभन ५९ चित्त को उन्नीस १९ शोभन साधारण चैतसिकों से गुना करे तो ११२१ होता है उनमें ४८ विरति, ५६ अप्पमञ्ञा, ४७ प्रज्ञिन्द्रिय चैतसिकों से मिला ले तो १२७२ होता है। विस्तार ९१ शोभन चित्त को १९ शोभन साधारण चैतसिकों से गुना करे तो १७२९ होता है। उनमें १४४ विरति, ५६ अप्पमञ्ञा, संक्षेप प्रज्ञिन्द्रिय ७९ चैतसिकों को मिला ले तो २००८ होता है। ऐसा भेद होता है।

(१२८) कथित संक्षेप और विस्तार को मिलाकर प्रकाशन

संक्षेप अन्यसमान, १०१५ अकुशल चैतसिक, ८३ संक्षेप शोभन चैतसिक, १२७२ कुल २३७० होता है।

विस्तार अन्यसमान, १३३५ अकुशल चैतसिक ८३ विस्तार शोभन चैतसिक २००८ कुल १४२६ होता है।

चैतसिक परिच्छेद समाप्त।

प्रकीर्णक संग्रह

(१२९) वेदना संग्रह का प्रकाशन

इस प्रकीर्णक संग्रह में कहे हुए सब चित्त विषयों को जानने में एकही स्वभाव होने के कारण आलम्बन विषय विज्ञान में एक ही है। ५२ चैतसिक के पृथक् २ लक्षण होने के कारण ५२ ही गिना जाता है। इस लिए, नाम-धर्मस्वभाव लक्षण से ५३ समझ लो। उनको वेदना, हेतु, कृत्य, द्वार, आलम्बन, वस्तु, भेद से ६ किया गया है। इनमें से अहेतु से अन्य धर्मों को हेतु-संग्रह में प्रकाशित किया गया है। द्वार विमुक्तों से अन्य चित्तों को द्वार-संग्रह में प्रकाशित किया गया है। ४ अरूप-विपाक चित्त से वाकी चित्तों को वस्तु-संग्रह में प्रकाशित किया गया है। वेदना-संग्रह, कृत्य-संग्रह, आलम्बन-संग्रह में अप्रकाशित चित्त चैतसिक नहीं हो सकता; सब शामिल है।

इस ६ में से वेदना के विषय में सुख-वेदना, दुःख-वेदना सौमनस्य-वेदना, दौर्मनस्य-वेदना, उपेक्षा-वेदना, इस प्रकार इन्द्रिय-भेद से वेदना के ६ भेद हैं। फिर, सौमनस्य-वेदना को सुख में और दौर्मनस्य-वेदना को दुःख में प्रवेश करके सुख वेदना, दुःख वेदना और उपेक्षा वेदना इस प्रकार अनुभव

लक्षण से तीन हैं। (१) सुख-वेदना चैतसिक जो है वह कुशल-विपाक सुख सहगत काय विज्ञान चित्त से ही युक्त है। (२) दुःख वेदना जो है वह अकुशल-विपाक दुःख-सहगत काय विज्ञान चित्त से ही युक्त है। (३) सौमनस्य वेदना जो है वह विस्तार से १२१ चित्तों में से ६२ चित्तों से ही युक्त है। (४) दौर्मस्य वेदना जो है वह २ द्वेष-मूलक चित्तों से ही युक्त है। (५) उपेक्षा-वेदना जो है वह विस्तार से १२१ चित्तों में से ५५ उपेक्षा-सहगत चित्तों से युक्त है। यह पाँच इन्द्रिय भेद से होता है।

सुख-सहगत कायविज्ञान एक ही चित्त से ६२ सौमनस्य सहगत चित्तों को मिला के ६३ सुख-सहगत चित्तों से युक्त वेदना को सुख-वेदना कहलाता है।

एक दुःख-सहगत कायविज्ञान चित्त और दो द्वेष-मूल चित्तों से मिला के इन तीनों से युक्त वेदना को दुःख-वेदना कहते हैं। उपेक्षा-वेदना जो है सो इन्द्रिय-भेद से प्रकाशित के अनुसार ५५ चित्त में युक्त वेदना ही है। १२१ चित्तों को सुख सहगत चित्त एक, दुःख-सहगत चित्त एक, दौर्मनस्य-सहगत चित्त दो, और सोमनस्य सहगत चित्त बासठ, उपेक्षा-सहगत चित्त ५५, यह इन्द्रिय भेद से गिनने का तरीका है। और सुख-सहगत चित्त ६३, दुःख-सहगत चित्त तीन; उपेक्षा-सहगत चित्त ५५, यह अनुभव-लक्षण से गिनने का तरीका है। जैसा चित्तों को गिना जाता है वैसा ही चैतसिकों को भी सात सर्वचित्त

साधारण चैतसिकों में से वेदना चैतसिक को छोड़कर ६ सुख-सहगत चैतसिक, ६ दुःख सहगत चैतसिक ऐसा गिन लो। द्वेष, ईर्ष्या, मात्सर्य, कौकृत्य, विचिकित्सा, वेदना को छोड़कर सौमनस्यसहगत चैतसिक ४६ गिन लो। द्वेष-मूल चित्त में युक्त २२ चैतसिकों में से वेदना को छोड़कर २१ दौर्मनस्य-सहगत चैतसिक गिन लो। द्वेष, ईर्ष्या, मात्सर्य, कौकृत्य, प्रीति वेदना को छोड़ कर ४६ उपेक्षा-सहगत चैतसिकों को गिन लो। प्रीति-चैतसिक जो है वह एक ही सौमनस्य वेदना युक्त है। द्वेष, ईर्ष्या, मात्सर्य, कौकृत्य यह चार एक ही दौर्मनस्य वेदना से युक्त है। विचिकित्सा चैतसिक जो है वह एक ही उपेक्षा-वेदना से युक्त है। २५ शोभन चैतसिक लोभ, दृष्टि, मान यह २८ चैतसिक सौमनस्य वेदना और उपेक्षा वेदना दोनों से युक्त है। वितर्क, विचार, आधिमोक्ष, छन्द, प्रीति, मोह, अह्रीक, अनपत्रपा, औद्धत्य, स्त्यान-मृद्ध, यह सब तीनों वेदना से युक्त है। ७ सर्वचित्त साधारण चैतसिकों में वेदना को छोड़कर बाकी ६ चैतसिक पाँचों वेदनाओं से युक्त हैं। वेदना को छोड़ने का कारण यही है, कि उसी अंगुली से उसी को छुआ नहीं जा सकता। ऐसे ही वेदना वेदना से युक्त नहीं हो सकता।

(१३०) उपेक्षा वेदना का विशेष प्रकाशन

उपेक्षा वेदना १० प्रकार का है। (१) षडङ्गोपेक्षा, (२) ब्रह्मविहारोपेक्षा, (३) बोध्यङ्गोपेक्षा, (४) वीर्योपेक्षा, (५)

संस्कारोपेक्षा, (६) वेदनोपेक्षा, (७) विदर्शनोपेक्षा, (८) तत्र मध्यत्वोपेक्षा, (९) ध्यानोपेक्षा, (१०) परिशुद्धयोपेक्षा।

इनमें से जो अर्हन्त लोग इष्ट और अनिष्ट गोचरों में न खुशी है और न अप्रसन्न। केवल उपेक्षित रहता है। इस लिए उनकी उपेक्षा षडङ्गोपेक्षा कहलाती है। "सब्बेसत्ता कम्मासक्का" ऐसा उपेक्षा करने को ब्रह्मविहारोपेक्षा कहलाता है। "उपेक्खा-संबोज्भङ्गं भावेति" ऐसा भावना करना बोध्यङ्गोपेक्षा है। बहुत उत्साह से वीर्य करना वीर्योपेक्षा कहलाता है। संस्कार-धर्मों को उपेक्षा करना ही संस्कारोपेक्षा है। इस वेदना-संग्रह में अदुःख-असुख वेदना ही वेदनोपेक्षा है। विदर्शना-ज्ञान ही विदर्शनोपेक्षा है। सह-जात धर्मों को समान-भाव से धारण करनेवाला चैतसिक ही तत्रमध्यत्वोपेक्षा है। "उपेक्ख को विहरति" इत्यादि से तृतीय-ध्यान-सुख को भोगना ही ध्यानोपेक्षा है। चतुर्थ ध्यान-सुख उपेक्षा करना परिशुद्-ध्योपेक्षा है।

षडाङ्गोपेक्षा, विदर्शनोपेक्षा, और संस्कारोपेक्षा यह तीन कामावचर है। ब्रह्मविहारोपेक्षा, ध्यानोपेक्षा, परिशुद्ध्योपेक्षा, यह तीन रूपावचर है। वेदनापेक्षा, वीर्योपेक्षा, तत्रमध्यत्वोपेक्षा, यह तीन चातुभूमिक है। बोध्यङ्गोपेक्षा, कामावचर और लोकोत्तर है। यह भूमि-निश्चय है। षडङ्गोपेक्षा अर्हन्तों में होता है। बाकी उपेक्षा पृथक् जन, शैक्ष्य, अर्हन्त इन तीनों में होता है। यह पुद्गल-निश्चय है। और षड़०, बोधि०, वीर्य०,

संस्कार०, विदर्शना०, तत्रमध्य०, यह ६ सौमनस्य, सहगत चित्त और उपेक्षा सहगत चित्त में संप्रयुक्त है। ब्रह्म०, वेदना, परिशु०, यह तीन उपेक्षा सहगत चित्तों से संप्रयुक्त है।

एक ध्यानोपेक्षा सौमनस्य-सहगत चित्त में युक्त है। यह चित्त निश्चय है। षडङ्ग०, वीर्य०, संस्कार०, वेदना०, विदर्शना०, तत्रमध्य०, यह छः गोचरों को ग्रहण करता है। ब्रह्म०, ध्यान०, परिशुद्ध०, यह तीन धर्मावलम्बन को ग्रहण करता है। एक बोध्यङ्गोपेक्षा निर्वाण को ही ग्रहण करता है। यह आलम्बन निश्चय है। वेदनोपेक्षा वेदना-स्कन्ध में शामिल है। शेष नव उपेक्षा संस्कार-स्कन्ध में शामिल हैं। यह स्कन्ध निश्चय है। धर्म स्वभाव षडङ्ग०, ब्रह्म०, बोध्य०, ध्यान०, पारिशु० तत्र०, यह छः तत्रमध्यत्व चैतसिक ही है। एक साथ उत्पन्न नहीं होते। एक होने से दूसरे नहीं हो सकते। संस्कार०, विदर्शना०, यह दो धर्म्म-स्वभाव से प्रज्ञा-चैतसिक ही है। यह भी एक साथ नहीं होते। वेदनो०, वीर्य०, यह दो एक क्षण में वेदना से वीर्य, प्रज्ञा, तत्रमध्यस्थता, वेदना से वीर्य प्रज्ञा, बोध्यङ्गोपेक्षा, वेदना से वीर्य, प्रज्ञा, षडङ्गोपेक्षा, इस तरह से हो सकता है। यह क्षण-निश्चय है। षडङ्गोपेक्षा, अव्याकृत धर्म में गिना जाता है। शेष आठ ब्रह्मविहारादि अकुशल और अव्याकृत दोनों में गिना जाता है। केवल एक वेदनोपेक्षा ही कुशल, अकुशल और अव्याकृत तीनों में गिना जाता है। कुशलत्रिक निश्चय। खासकर दश उपेक्षा जो है वह परमार्थ

धर्म स्वभाव से वीर्य, बेदना, तत्रमध्यस्थता, प्रज्ञा यह चार ही है। यह धर्म-स्वभाव निश्चय है।

(१३१) हेतु-संग्रह का प्रकाशन

हेतु-संग्रह में लोभ, द्वेष, मोह, अलोभ, अद्वेष, अमोह, ऐसा लक्षण से हेतु के छ भेद हैं।

कुशल हेतु ३ अकुशल हेतु ३ अव्याकृत हेतु ३	जाति भेइ से ९ हैं
कुशल हेतु ३ अकुशल हेतु ३ विपाक हेतु ३ क्रिया हेतु ३	जाति भेद से १२ हैं
काम लोक में १२ रूप लोक में ११ अरूप लोक में ११	लोक भेद से हेतु ३४ हैं
अहेतुक १८ सहेतुक ७१	अहेतुक-सहेतुक भेद से ८९ हैं
एक हेतुक २ द्विहेतुक २२ त्रिहेतुक ४७	सहेतुक चित्त से ७१ हैं

१८ अहेतुक चित्त में युक्त होनेवाला हेतु न होने से कारण न होने के कारण अहेतुक चित्त कहलाता है। दो मोमूह चित्त में मोह रूप एक हेतु होने के कारण एक हेतुक चित्त है। अलोभ-मूल दो द्वेष-मूल इनमें लोभ-मोह, द्वेष-मोह, दोनों हेतु होने के कारण महाकुशल, महाविपाक, महाक्रिय चार २ ज्ञान विप्रयुक्त चित्त इन १२ चित्तों में भी अलोभ, अद्वेष दो २ हेतु होने के कारण यह २२ चित्त द्विहेतुक है। महाकुशल, महाविपाक और महाक्रिया चार २ ज्ञान-संप्रयुक्त कुल १२,। १५ रूपावचर और १२ अरूपावचर, ८ लोकोत्तर, इन सैंतालिस चित्तों में अलोभ, अद्वेष, अमोह, तीन २ हेतु होने के कारण त्रिहेतुक चित्त है। जैसा चित्तों को हेतु के भेद से गिना जाता है वैसा ही चैतसिकों को भी गिनना चाहिए।

लोभ-हेतु ८, द्वेष-हेतु २, मोह-हेतु १२, ऐसा २२ होता है। महाकुशल ज्ञान विप्रयुक्त ४ में अलोभ हेतु ४, अद्वेष हेतु ४, महाकुशल ज्ञान संप्रयुक्त ४ चित्तों में अलोभ-हेतु ४, अद्वेष-हेतु ४, अमोह-हेतु ४; महग्गत कुशल ९ चित्तों में अलोभ-हेतु ९, अद्वेष हेतु ९, अमोह-हेतु ९, बीस मार्ग चित्तों में अलोभ-हेतु २०, अद्वेष-हेतु २०, अमोह हेतु २०, कुल हेतु को मिलाने से १०७ है। महाविप्पाक ज्ञान विप्रयुक्त ४ चित्रों में अलोभ-हेतु ४, अद्वेष-हेतु ४, महाविपाक ज्ञान संप्रयुक्त ४ चित्तों में अलोभ हेतु ४, अद्वेष-हेतु ४, अमोह-हेतु ४, महग्गत विपाक ९ चित्तों में अलोभ-हेतु ९, अद्वेष-हेतु ९, अमोह-हेतु ९; २० फल चित्तों में

अलोभ-हेतु २०, अद्वेष हेतु २०, अमोह-हेतु २०, इन हेतुओं को मिलाने से पहले जैसा १०७ है। महाक्रिय-ज्ञान विप्रयुक्त ४ चित्तों में अलोभ-हेतु ४, अद्वेष हेतु ४, महाक्रिया ज्ञान-संप्रयुक्त ४ चित्तों में अलोभ-हेतु ४, अद्वेष हेतु ४, अमोह-हेतु ४, महग्गत क्रिया ९ चित्तों में अलोम-हेतु ९, अद्वेष-हेतु ९, अमोह-हेतु ९, सब को मिला के ४७ हेतु है। दो मोमूह चित्तों में युक्त होने वाले १५ चैतसिकों में से एक मोह-हेतु, १८ अहेतुक चित्तों में युक्त होने वाले छन्द-वर्जित १२ अन्य समान चैतसिक, यह १३ चैतसिक एक चित्त के तीन क्षण में युक्त होते समय एक साथ होने वाला कोई चैतसिक न होने के कारण अहेतुक चैतसिक कहलाता है। दो मोमूह चित्त में बाकी १५ और लोभ-मूल, द्वेष-मूल चित्तों में लोभ, द्वेष और मोह तीन हेतु ज्ञान विप्रयुक्त चित्तों में अलोभ अद्वेष दो हेतु यह २० चैतसिक एक चित्त के तीन क्षण में युक्त होने वाला एक हेतु होने के कारण एक-हेतुक चैतसिक है। ८ लोभ-मूल में बाकी २० चैतसिक ईर्ष्या, मात्सर्य, कौकृत्य, ज्ञान विप्रयुक्त चित्त में बाकी २२ शोभन चैतसिक त्रिहेतुक चित्तों में यह ४८ चैतसिक एक चित्त के तीन क्षण में एक साथ युक्त होने वाला दो हेतु होने के कारण द्विहेतुक चैतसिक है। ज्ञान-सम्प्रयुक्त चित्तों में बाकी ३५ चैतसिक एक चित्त के तीन क्षण में अलोभ, अद्वेष, अमोह तीन हेतुओं से युक्त होने के कारण त्रिहेतुक चैतसिक हैं।

(१३२) कहे गये चैतसिकों को छोड़कर स्वभाव प्रकाशन

लोभ, द्वेष, विचिकित्सा, यह तीन एक-हेतुक चैतसिक हैं। ईर्ष्या, मात्सर्य, कौकृत्य, मोह, दृष्टि, मान, अलोभ, अद्वेष, अमोह, यह ९ द्विहेतुक चैतसिक है। अह्री, अनपत्रपा, औद्धत्य, स्त्यान-मृद्ध, २२ शोभन चैतसिक यह २७ चैतसिक त्रिहेतुक है। प्रीति चैतसिक द्वेष हेतु को छोड़कर शेष ५ हेतु से युक्त होने के कारण पंच-हेतुक चैतसिक है। सर्वचित्त साधारण चैतसिक ७, वितर्क, विचार आधिमोक्ष, छन्द, वीर्य, यह १२ चैतसिक छ हेतुक चैतसिक है। एक हेतुक चैतसिक ३, द्विहेतुक ९, त्रिहेतुक २७, पंच हेतुक १, छहेतुक १२, कुल ५२ चैतसिक होता है। १४५ चित्त-चैतसिकों में एक हेतुक आदि भेद होते हुए भी पुद्गल-भाव से एक हेतुक नहीं है। अहेतुक, द्विहेतुक, त्रिहेतुक, ऐसे व्यवहार करना प्रतिसन्धि चित्त से युक्त हेतुओं को लेकर ही हो सकता है। एक हेतुक जो है वह प्रतिसन्धि चित्त नहीं है। इस लिए एक-हेतुक पुद्गल नहीं है। असंज्ञ-सत्त्व, पुद्गल जो है, वह चित्त रूपी नाम-धर्म न होने के कारण हेतु नहीं है। पूर्व-द्वीप, उत्तर-द्वीप, पश्चिम द्वीप यह तीन द्वीप वाले अपने २ द्वीपों में बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध और अर्हन्त नहीं होते। वे लोग वहाँ जाकर धर्मोपदेश नहीं करते। इस लिए, इन द्वीप वालों को निर्वाण प्राप्त होनेवाले धर्म रूपी हेतु न होने के कारण हेतु नहीं है। उनको निर्वाण को तो छोड़ दें, ब्रह्म लोक तक पहुँचने वाला धर्म भी नहीं है।

(१३३) कृत्यसंग्रह प्रकाशन

४ पृथक् जन और ८ आर्य पुद्गल, इनमें यथानुरूप चित्तों के होने से अपने २ कृत्य के अनुसार होते हैं। वह कृत्य, प्रति सन्धि कृत्य, भवङ्ग-कृत्य, आवर्जन-कृत्य, दर्शन-कृत्य, श्रवण-कृत्य, घ्राणकृत्य, आस्वादन-कृत्य, स्पर्श-कृत्य, सम्प्रतिच्छन्न कृत्य, संतीर्ण-कृत्य, वोट्ठवन-कृत्य, जवन-कृत्य, तदालम्बवन-कृत्य, च्युति-कृत्य, ऐसा १४ है। उन कृत्य वाले चित्तों के स्थान भेद से प्रतिसन्धि-स्थान, भवङ्ग-स्थान, आवर्जन-स्थान, पंचविज्ञान स्थान, सम्प्रतिच्छन्न-स्थान, संतीर्ण-स्थान, वोट्टवन-स्थान, जवन-स्थान, तदालम्बन-स्थान, च्युति-स्थान, ऐसा दश है। १९ प्रति-सन्धि चित्त प्रतिसन्धि के उत्पन्न होने के क्षण में प्रतिसन्धि-कृत्य, और प्रवृति क्षण में भवङ्ग-कृत्य और नाश-क्षण में च्युति-कृत्य, इस प्रकार से ३ कृत्य हैं। दो आवर्जन चित्त आवर्जन-कृत्य ही होता है। १० पञ्चविज्ञान प्रत्येक दर्शन-कृत्य, श्रवण-कृत्य, घ्राण-कृत्य, आस्वादन-कृत्य, स्पर्श-कृत्य होते हैं। दो सम्प्रति-च्छन्न चित्त प्रत्येक का सम्प्रतिच्छन्न कृत्य होते हैं। और तीन संतीर्ण चित्त प्रत्येक संतीर्ण कृत्य होते हैं। कहे हुए दो आव-र्जन चित्तों में मनोद्वारावर्जन चित्त ही पंचद्वार-वीथि में वोट्ठब्बन कृत्य होता है। १२ अकुशल चित्त, २१ कुशल चित्त, २ आव-र्जन चित्तों को छोड़कर १८ क्रिय चित्त, ४ फलचित्त, यह ५५ चित्त जवन-कृत्य हैं। ८ महाविपाक चित्त, तीन संतीर्ण चित्त,

यह ११ चित्त ददालम्बन कृत्य है। एक उपेक्षा-सहगत संतीर्ण चित्त प्रतिसन्धि, भवङ्ग, च्युति ददालम्बन संतीर्ण कृत्य भेद से ५ कृत्य और स्थान होता है। ८ महाविपाक चित्त प्रतिसन्धि ० भेद से ४ कृत्य और ४ स्थान होता है। ९ महग्गत विपाक चित्त प्रतिसन्धि ० भेद से ३ कृत्य और ३ स्थान होता है।

एक सौमनस्य-संतीर्ण चित्त संतीर्ण, तदालम्बन भेद से दो कृत्य और दो स्थान मनोद्वारावर्जन चित्त वोट्ठबन और आवर्जन भेद से दो कृत्य और दो स्थान होनेवाला यही दो चित्त है। जवन-कृत्य और जवन स्थानवाला ५२ आवर्जन कृत्य वाला एक ही पंचद्वारावर्जन चित्त क्रमशः दर्शन, श्रवण ० कृत्यवाला १० पञ्चविज्ञान कृत्य है। २ संप्रतिच्छन चित्त एक ही सम्प्रतिच्छन कृत्य होता है, इस प्रकार पंचकृत्य और पंच स्थानवाला दो चित्त और ४ कृत्य और ४ स्थान वाला ८ चित्त और ३ कृत्य और ३ स्थान वाला ९ चित्त, २ कृत्य और २ स्थान वाला दो चित्त, एक कृत्य और एक स्थान वाला ६८ चित्त है।

(१३४) चैतसिकों के स्वरूप का प्रकाशन

जैसा चित्तों को गिना जाता है वैसा चैतसिकों को भी गिन लेना चाहिए। अकुशल चैतसिक १४ वृति चैतसिक ३, यह १७ चैतसिक एक ही जवन-कृत्य में होते हैं। २ अप्रमाण कृत्य अप्रमेय चैतसिक कहलाता है। प्रतिसन्धि, भवङ्ग, च्युति, जवन, इस प्रकार ४ कृत्य में होते हैं। १९ शोभन साधारण

चैतसिक प्रज्ञेन्द्रिय चैतसिक छन्द चैतसिक यह २१ चैतसिक प्रतिसन्धि, भवङ्ग, च्युति, तदालम्बन, जवन, इस पाँच कृत्य में होते हैं। एक ही प्रीति-चैतसिक प्रतिसन्धि, भवङ्ग, च्युति, संतीर्ण, तदालम्बन, जवन, इस प्रकार ६ कृत्यों में होते हैं। एक वीर्य चैतसिक प्रतिसन्धि, भवङ्ग, च्युति, आवर्जन, वोट्ठबन, जवन, तदालम्बन, इस प्रकार छः कृत्यों में होते हैं। वितर्क, विचार अधिमोक्ष यह तीन चैतसिक प्रतिसन्धि भवङ्ग, च्युति, आवर्जन, सम्प्रतिच्छन, संतीर्ण, वोट्ठबन, जवन, तदालम्बन, इस प्रकार नव कृत्यों में होते हैं। ७ सर्वचित्त साधारण चैतसिक १४ कृत्यों में होते हैं। कुल ५२ चैतसिकों को ऐसा गिनना चाहिए।

(१३५) कृत्य और स्थानों के भेद का प्रकाशन

बीते हुए जन्म से वर्तमान जन्म को ६१ जोड़ने वाला परमार्थ-स्वभाव वाला जो धर्म है वही प्रतिसन्धि कृत्य है। उसी कृत्य से लक्षित किया हुआ जो १९ प्रतिसन्धि चित्त है, उनमें से एक न एक चित्त प्रतिसन्धि स्थान है। १९ प्रतिसन्धि चित्तों की उत्पत्ति को प्रतिसन्धि-कृत्य, और च्युति, तथा भवङ्ग के बीच को स्थान समझिये।

इस कृत्य-संग्रह में स्थान भेद सामान्य से १० ही आया, और विशेष संक्षेप टीकाकार ने २५ वतलाया है। प्रतिसन्धि स्थान एक, भवङ्ग-स्थान छः, आवर्जनस्थान दो, पंचविज्ञान-स्थान, सम्प्रतिच्छन-स्थान, संतीर्ण-स्थान, प्रत्येक एक २ है। वोट्ठबन-

स्थान दो, जवन-स्थान छः, तदालम्बन-स्थान दो, च्युति-स्थान तीन, ऐसा २५ होता है। और विस्तार से दूसरा तरीका ऐसा गिन लेना चाहिये। च्युति, और भवङ्ग के बीच को प्रतिसन्धि स्थान, प्रतिसन्धि और आवर्जन के बीच, तदालम्बन और आवर्जन के बीच जवन और आवर्जन के बीच, वोट्ठवन और आवर्जन के बीच, तदालम्बन और च्युति के बीच, जवन और च्युति के बीच, १९ भवङ्ग के स्थान हैं। भवङ्ग और विज्ञान के बीच, को दो आवर्जन स्थान जान लो। आवर्जन और सम्प्रति-च्छन्न बीच को पंच विज्ञान के स्थान समझ लो। पंच विज्ञान और संतीर्ण के बीच को एक सम्प्रतिच्छन्न स्थान समझ लो। सम्प्रतिच्छन्न और वोट्ठवन के बीच को तीन संतीर्ण-स्थान जान लो। संतीर्ण और जवन के बीच सतीर्ण और भवङ्ग के बीच को दो वोट्ठवन स्थान समझ लो। वोट्ठवन और तदालम्बन, वोट्ठवन और भवङ्ग वोट्ठवन और च्युति, आवर्जन और तदा-लम्बन आवर्जन और भवङ्ग, आवर्जन और च्युति के बीच छ जवनों का स्थान जान लो। जवन और भवङ्ग, जवन और च्युति के बीच को तदालम्बन स्थान जान लो। तदालम्बन और प्रति-सन्धि, जवन और प्रतिसन्धि, भवङ्ग और प्रतिसन्धि के बीच को च्युति के तीन स्थान समझो।

(१३६) द्वार संग्रह प्रकाशन

चित्त चैतसिकों के निकलने और प्रवेश करने के कारण यह द्वार कहा जाता है। वह द्वार चक्षु-द्वार, श्रोत्र-द्वार, घ्राण-द्वार,

जिह्वा-द्वार, काय-द्वार, मनो-द्वार, इस प्रकार छः है। इनमें से चक्षु-प्रसाद रूप चक्षु-द्वार है। इसके समान श्रोत-प्रसाद रूप श्रोत-द्वार है, क्रमशः घ्राण-प्रसाद रूप को घ्राण-द्वार समझिए। जिह्वा-प्रसाद रूप जिह्वा-द्वार है। काय-प्रसाद रूप काय द्वार हैं। यह पाँच रूप-द्वार है। १९ भगङ्ग के उच्छेद को मनो-द्वार कहते हैं। यह नाम-द्वार है।

चक्षु-प्रसाद रूप के चक्षु-द्वार कहने के विषय में चक्षु दो प्रकार के हैं। मांस-चक्षु और ज्ञान-चक्षु। इस विषय में मांस-चक्षु को ही लेना चाहिए। मांस-चक्षु के भी दो भेद हैं प्रसाद-चक्षु और ससम्भार चक्षु। उनमें सात तहों के बीच जो जौ के शिरके प्रमाण प्रसाद-चक्षु है। ऊपर के हिस्से के बनावट को ससम्भार चक्षु कहते हैं। ज्ञान-चक्षु भी दिव्य-चक्षु, प्रज्ञा-चक्षु, धर्म-चक्षु, बुद्ध-चक्षु, समन्त-चक्षु भेद से पाँच है। उनमें कुशल और क्रिया दो अभिज्ञान दिव्य-चक्षु है। अर्हत्-मार्ग ज्ञान प्रज्ञा-चक्षु है। और बाकी मार्ग-ज्ञान धर्म-चक्षु है। आशयानुसया-ज्ञान और इन्द्रिय परोपरियत्ति ज्ञान यह ही बुद्ध-चक्षु है। सर्वाज्ञयुत ज्ञान समन्त चक्षु है।

(१३७) छ द्वारों में उत्पन्न होनेवाले चित्त का प्रकाशन

कहे गये छः द्वारों में, एक पंचद्वारावर्जन चित्त, दो चक्षु-विज्ञान चित्त, दो सम्प्रतिच्छन्न चित्त, तीन संतीर्ण चित्त, एक

वोट्ठबन चित्त, २९ कामावचर जवन चित्त, आठ तदालम्बन महाविपाक चित्त, यह ४६ चित्त चक्षु-द्वार में होते हैं। इसी तरह अन्य द्वारों के विषय में समझ लें; विज्ञान का केवल उन २ द्वारों के साथ योग कर ले।

मनोद्वारावर्जन चित्त एक जवन चित्त ५२ और तदालम्बन चित्त ११, यह ६ चित्त मनोद्वार में होते हैं। यह तो मुख्य होनेवाले चित्त हैं।

दश पंचविज्ञान चित्त, २६ महग्गत लोकोत्तर जवन चित्त, यह ३६ चित्त एक ही द्वार में होते हैं। पंचद्वारा वर्जन चित्त एक सम्प्रतिच्छन्न चित्त २, यह तीन चित्त मनोधातु कहलाता है। यह पाँच द्वारों में होता है। सौमनस्य-सन्तीर्ण एक वोट्ठबन चित्त एक २९ कामावचर जवन चित्त यह ३१ चित्त छः द्वारों में होते हैं। उपेक्षा सहगत सन्तीर्ण चित्त १, महाविपाक चित्त ८, यह दश चित्त सन्तीर्ण और तदालम्बन कृत्य होने के समय में ६ द्वार में होकर प्रतिसन्धि, भवङ्ग और च्युति कृत्य होने के समय में छ द्वारों से विमुक्त है। ९ महग्गत विपाक चित्त प्रति-सन्धि भवङ्ग और च्युति और कृत्य तीनों में होने के कारण सर्वदा द्वार विमुक्त है। २६ अर्पण जवन चित्त पंचद्वार में नहीं होता। १० पंचविज्ञान चित्त तीन मनोधातु चित्त, एक वोट्ठबन चित्त यह १४ मनोद्वार में नहीं होते।

चक्षुद्वार में ही होकर श्रोत्र-द्वार में न होनेवाला दो चक्षु-

विज्ञान चित्त, इसके समान ही श्रोत-द्वार में ही होकर चक्षु-द्वार में न होनेवाला दो श्रोत्र-विज्ञान चित्त, चक्षु और श्रोत्र दोनों में होनेवाला ४६ चित्त, दोनों में न होनेवाला ४१ चित्त, ऐसा किया जाय तो ८९ चित्त हो जाता है। चक्षु-द्वार में होकर मनोद्वार में न होने वाला एक पंचद्वारावर्जन चित्त दो चक्षुविज्ञान चित्त, दो सम्प्रतिच्छन्न चित्त, यही पाँच हैं। मनोद्वार में ही होकर चक्षु-द्वार में न होनेवाला २६ अर्पण जवन चित्त, और दोनों में होने वाला ४१ चित्त, दोनों में न होनेवाला १७ चित्त, ऐसा भी चार हिस्सा किया जाय तो ८९ ही होता है। इसी तरह, श्रोत्र-द्वार, घ्राण-द्वार इत्यादि में गिन लो। जैसा चित्त उनको द्वारों में प्रवेश करके गिना जाता है, ५२ चैतसिकों में से ९ महग्गत विपाक चित्तों में ३५ चैतसिक जो होते हैं, वह ३ क्षण के लिए द्वार विमुक्त होता है। परन्तु सचमुच से छः द्वार विमुक्त चैतसिक कोई नहीं है। चक्षुद्वार से लब्ध नाम वाले प्रसाद-रूप में आठअविनिभोग रूप चक्षु-प्रसाद, जीवितेन्द्रिय, यह दश कलाप रूप और काय-प्रसाद रूप, स्त्री हो तो स्त्रीभाव-रूप पुरुष हो तो पुम्भाव रूप, सम्भव-रूप, संस्थान रूप, इस प्रकार १४ होता है। सम्भव और संस्थान रूपों का भेद ऐसा है कि स्त्री पुरुषों के १४, १५ या १६ वर्ष की अवस्था में राग से लिप्त होने के कारण जो वीर्य होता है उसे सम्भव-रूप कहते हैं। परमार्थ रूपों को एकत्र करके चक्षु से देखने योग्य कोई आकृति को संस्थात्र रूप कहते हैं।

(१३८) आलम्बन संग्रह का प्रकाशन

चक्षुद्वार में उत्पन्न चित्तों का गोचर ६ है। रूप गोचर शब्द-गोचर, गन्ध-गोचर, रस-गोचर वर्ण-गोचर, धर्म-गोचर। चक्षुविज्ञान से देखने योग्य काला, नीला, पीला इत्यादि रूप-गोचर है। श्रोत्र विज्ञान से सुनने योग्य भाँति २ के आवाज शब्द २ गोचर है। घ्राण विज्ञान से सूंघने योग्य नाना प्रकार के गन्ध गन्ध-गोचर है। जिह्वा विज्ञान से चखने के योग्य भाँति २ के रस रस-गोचर है। काय-विज्ञान से स्पर्श करने योग्य पृथ्वी, तेज, वायु यह तीन भूत के साथ बन २ के स्पष्ट वस्तु स्पर्श-गोचर है। मनोविज्ञान से जानने योग्य पाँच प्रसाद रूप, १६ सूक्ष्म रूप, ८९ चित्त, ५२ चैतसिक, निर्वाण, प्रज्ञप्ति, यह ६ धर्म-गोचर है। उनमें से वर्त्तमान रूप-गोचर चक्षुद्वार में उत्पन्न ४६ चित्तों का गोचर है। इसके समान वर्त्तमान शब्द-गोचर, गन्ध-गोचर, रस-गोचर, स्पर्श गोचर, क्रमशः श्रोत-द्वार, घ्राण-द्वार, जिह्वा-द्वार, काय-द्वार में उत्पन्न ४० चित्तों का है। वर्त्तमान और भूत और भविष्य और काल-विमुक्त, पंचालम्बन, और धर्मालम्बन, यह सब गोचर मनोद्वार में उत्पन्न ६७ चित्तों का यथार्थ गोचर है।

(१३९) पृथक् २ गोचरों का प्रकाशन

चक्षु विज्ञानादि दश विज्ञान-चित्त वर्तमान में उत्पन्न रूपादि पाँच गोचर है। पंचद्वारावर्जन चित्त, दो सम्प्रतिच्छन्न चित्त,

यह तीन मनोधातुक चित्त, वर्तमान में उत्पन्न पाँच गोचरों को लेते हैं। तीन संतीर्ण चित्त, ८ महाविपाक चित्त, १ हसितोत्पाद चित्त, इन १२ चित्तों के गोचर वर्तमान, भूत भविष्य ५४ काम चित्त, ५२ चैतसिक, २८ रूप, ऐसा छः गोचर है। १६ अकुशल चित्त, ज्ञान विप्रयुक्त कामावचर कुशल ४ और ४ क्रिया, यह आठ जवन चित्त है। इन २० चित्तों का गोचर २ लोकोत्तर चित्त, १ निर्वाण को छोड़कर सब गोचर है। ४ ज्ञान संप्रयुक्त महाकुशल जवन चित्त, १ पंचम ध्यान अभिध्या कुशल चित्त, इन पाँचों का गोचर अर्हत् मार्ग और फल को छोड़ कर सब है। ज्ञान सम्प्रयुक्त, ४ महाक्रिय जवन चित्त, १ मनोद्वारावर्जन चित्त, पंचम ध्यान एक क्रिया अभिज्ञान चित्त, इन छ चित्तों का गोचर सब है। १५ रूपावचर चित्त, ३ आकाशानन्तायतन चित्त, आकिञ्चन्यायतन चित्त, इन २१ चित्तों का गोचर कसिनादि प्रज्ञप्ति है। ३ विज्ञानाभत्यापतन चित्त, ३ नैवसंज्ञायतन चित्त, ६ चित्तों का गोचर महग्गत धर्म ही है। ८ लोकोत्तर चित्तों का गोचर निर्वाण ही है।

(१४०) १९ द्वार-विमुक्त चित्तों के गोचर का प्रकाशन

१९ प्रतिसन्धि, भवङ्ग, च्युति चित्तों का गोचर पूर्वजन्म में छः द्वारिक जवन चित्त ने ले लिया है। ऐसा भी कह सकते हैं—छः द्वारिक मरणासन्न जवन चित्तों लिया हुआ वर्तमान,

भूत, प्रज्ञप्ति रूपी क्रम-निमित्त, गति निमित्त, यह तीन ही है। उनमें से कर्म जो है वह अतीत धर्म गोचर ही है। इसको मनोद्वार से ही ले सकते हैं। गति-निमित्त जो है वह वर्तमान रूप गोचर ही है।

उसको भी मनोद्वार से ले सकते हैं। कोई २ प्रतिसन्धि और भवङ्ग चित्त कभी वर्तमान और कभी अतीत गोचर हैं। और कोई भवङ्ग और च्युति अतीत ही गोचर हैं। इन तीनों का खास गोचर प्रतिसन्धि हो तो क्रम-गोचर ही भवङ्ग और च्युति भी प्रतिसन्धि के समान है। यदि प्रतिसन्धि चित्त कर्म-निमित्त को ले लें तो भवङ्ग और च्युति भी उसको लेता है। यदि प्रतिसन्धि-चित्त गतिनिमित्त को लें तो भवङ्ग, और च्युति भी उसी को लेतें हैं। इस लिए प्रतिसन्धि भवङ्गञ्च तथा च्यव नमानसं एकमेव तथैवेक विसयञ्चेक जातियं।" ऐसा कहा है।

(१४१) ९ महग्गत प्रतिसन्धि चित्तों के गोचर का प्रकाशन

इनमें प्रथम ध्यान विपाक प्रतिसन्धि, भवङ्ग और च्युति चित्तों का गोचर, दश कसिन, दश अशुभ कायगता स्मृति के गोचर केशादि अंश-प्रज्ञप्ति, आनापान स्मृति के गोचर आश्वास प्रस्वास-प्रज्ञप्ति, मैत्री, करुणा, मुदिता यह तीन ब्रह्मविहार का गोचर अनन्त अगणित सत्त्व-प्रज्ञप्ति, यह २५ ही है। यह

क्रम निमित्त धर्म गोचर प्रज्ञाप्ति ही है। इसको मनोद्वार से ही लिया जाता है। द्वितीय ध्यान; तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, विपाक प्रतिसन्धि, भवङ्ग और च्युति का गोचर दश कसिन आनायान स्मृति का गोचर आस्वास-प्रस्वास प्रज्ञप्ति, मैत्री, करुणा, मुदिता तीन ब्रह्मविहार के गोचर अनन्त अगणित सत्त्व-प्रज्ञप्ति यह १४ प्रज्ञप्ति धर्म क्रम निमित्त धर्म गोचर है। मनोद्वार से लिया जाता है। पंचम ध्यान विपाक प्रतिसन्धि, भवङ्ग और च्युति चित्तों के गोचर १० कसिन, अनापान स्मृति के गोचर आस्वास-प्रस्वास प्रज्ञप्ति, उपेक्षा ब्रह्मविहार के गोचर अनन्त अगणित सत्त्व-प्रज्ञप्ति, यह १२ प्रज्ञप्ति, कर्मनिमित्त धर्म-गोचर मनोद्वार से लिया जाता है। आकास-कसिन वर्जित नव कसिनों में से एक न एक को हटा के लब्ध आकास-प्रज्ञप्ति कर्म निमित्त धर्म गोचर को आकाशानन्त्यायतन ध्यानविपाक प्रतिसन्धि, भवङ्ग और च्युति ने लिया है। यह भी मनोद्वार ही है। पूर्व जन्म आत्मा में उत्पन्न आकाशानन्त्यायतन कुशल भूत कर्म निमित्त महगात धर्मगोचर को विज्ञानानन्त्यायतन ध्यान विपाक प्रतिसन्धि, भवङ्ग और च्युति ने लिया है। द्वार भी मनोद्वार ही है। आकाशानन्त्यायतन कुशल के अभाव प्रज्ञप्ति-कर्म निमित्त धर्म गोचर को आकिञ्चान्यायतन ध्यानविपाक प्रति-सन्धि, भवङ्ग और च्युति ने लिया है। उसको भी मनोद्वार से ही लिया है। पूर्वजन्म के आत्मा में उत्पन्न आकिञ्चन्यायतन कुशल महग्गत कर्म निमित्त धर्म गोचर तो नैवसंज्ञानासञ्ज्ञायतन

ध्यान विपाक प्रतिसन्धि, भवङ्ग और च्युति के ही है। इसको भी मनोद्वार से ही लिया गया है।

(१४२) रूपारूप कुशल क्रियाओं के गोचर भेद का प्रकाशन

दश कसिन, दश अशुभ, कायगता स्मृति के विषय के साथ ही काय-अंश प्रज्ञप्ति, आनापान स्मृति के विषय आश्वास-प्रश्वास प्रज्ञप्ति, मैत्री, करुणा; मुदिता, तीन ब्रह्मविहार के विषय अनन्त अगणित सत्त्व प्रज्ञप्ति, यह २५ धर्म-गोचर प्रथम ध्यान, कुशल और क्रिया के हैं। दश कसिन, अनापान स्मृति के विषय आश्वास प्रश्वास प्रज्ञप्ति, मैत्री, करुण, मुदिता, तीन ब्रह्मविहार के विषय अनन्त अगणित सत्त्व प्रज्ञप्ति, यह १४ धर्म-गोचर द्वितीय ध्यान कुशल और क्रिया, तृतीय ध्यान कुशल और क्रिय, चतुर्थ ध्यान कुशल और क्रिया, इन छ ध्यानों की ही है। दश कासिन आनापान स्मृति की विषय आश्वास प्रश्वास प्रज्ञप्ति उपेक्षा ब्रह्म-बिहार के विषय अनन्त अगणित सत्त्व-प्रज्ञप्ति यह १२ धर्म-गोचर पंचम ध्यान कुशल और क्रिया के है। दस कसिनों में आकाश कसिन वर्जित ९ कसिनों में से एक न एक को हटा के लब्ध आकाश प्रज्ञप्ति धर्म-गोचर आकाशानन्त्यायतन कुशल के हैं। आकाशानन्त्यायतन कुशल रूपी पूर्वजन्म आत्मा में उत्पन्न महग्गत धर्म गोचर तो विज्ञानानन्त्यायतन कुशल के हैं। आकाश० कुशल के नास्ति-भाव प्रज्ञप्ति धर्म गोचर आकिञ्चन्या-

यतन कुशल के है। इस जन्म और पूर्वजन्म आत्मा में उत्पन्न आकिञ्चन्यायतन कुशल रूपी महग्गत धर्म गोचर ही नैव-संज्ञाना संज्ञायतन कुशल के है। आकाशानन्त्यायतन क्रिया के भी वही गोचर है जो कुशल ने लिया है। विज्ञान० क्रिया के भी इस जन्म और पूर्वजन्म में उत्पन्न आकाश० कुशल और इस जन्म में उत्पन्न आकाश० क्रिया रूपी महग्गत धर्म-गोचर ही है। आकिञ्चन्यायतन क्रिया के गोचर नास्ति-भाव प्रज्ञप्ति धर्म-गोचर ही है। नैवसंज्ञानासंज्ञायतन क्रिया के भी इस जन्म और पूर्व जन्म आत्मा में लब्ध आकिञ्चन्यायतन कुशल और इस जन्म में ही उत्पन्न आकि० क्रिया रूपी महग्गत धर्म ही है।

(१४३) पञ्चम ध्यान के विषय में अभिज्ञान के गोचर का प्रकाशन

दिव्य-चक्षु विज्ञान का गोचर है दूर, छिपा हुआ, मुलायम, और सूक्ष्म प्रत्यक्ष रूप ही है। दिव्य श्रोत विज्ञान का गोचर है, दूर, छिपा हुआ, मुलायम, सूक्ष्म वर्तमान शब्द ही है। ऋद्धिविध विज्ञान का गोचर है त्रिकालिक रूपावचर पंचम-ध्यान शत-सहस्रादि निर्मित रूप रूपी ६ गोचर है। परचित्त विज्ञान अभिज्ञान के गोचर बीते हुए सप्ताह से लेकर आने वाले सप्ताह के बीच त्रिकालिक अर्हत् मार्ग और फल को छोड़ कर दूसरों के ८७ चित्त धर्म गोचर है। यह गोचर कुशल अभिज्ञान के हैं। पूर्वनिवास-स्मृति के गोचर पूर्वनिवास में किये गये अर्हत् मार्ग

और फल को छोड़कर ८७ धर्म गोचर और यदि क्रिय अभिज्ञान हो तो ८९ चित्त धर्म्म गोचर और ५२ चैतसिक, २८ रूप, इसमें अन्तर्गत पंच-स्कन्ध से अनुसार क्रमशः जानने योग्य निर्वाण नाम गोत्रादि प्रज्ञप्ति रूपी छ गोचर है। यथा कम्मुयगा अभि-ज्ञान के गोचर अतीत काल में उत्पन्न और लौकिक कुशल और अकुशल कर्म-धर्म गोचर है। अनागतांश अभिज्ञान के गोचर भविष्य में होनेवाला अर्हत् मार्ग और फल को छोड़कर ९७, यदि क्रिया हो तो ८९, और ५२ चैतसिक, २८ रूप, इनसे संगृहीत पंच स्कन्धों के अनुसार जानने योग्य निर्वाण नाम-गोत्र इत्यादि प्रज्ञप्ति रूपी ६ गोचर है।

(१४४) विशेष मनन करने का विषय

१ मनोद्वारावर्जन चित्त ४ महाकुशलज्ञान संप्रयुक्त चित्त और ४ महाक्रिया ज्ञान सम्प्रयुक्त, २ अभिज्ञान, यह ११ चित्त कभी २ निर्वाण गोचर को लेते हैं। परन्तु इनमें से महाकुशल जो है हर महाकुशल को नहीं लेना चाहिए। कूछ को ही लेना चाहिए जो मार्ग चित्त के पूर्वभाव में गोत्रभू कृत्य करे। वह कुशल चित्त भी प्रत्यक्ष भाव से ही निर्वाण रूपी गोचर को ले सकता है। ५२ चैतसिकों में से १४ अकुशल चैतसिक जो है वह लौकिक गोचर को ही लेता है महग्गत, लोकोत्तर को नहीं लेता है। ईर्ष्या चैतसिक जो है वह अपने के सिवा दूसरे बाहर के सत्व रूपी-गोचर को लेता है। मात्सर्य चैतसिक तो अपने

भीतर ही होता है। तीन विरति चैतसिक विरमित वस्तुओं के साथ लौकिक-धर्म नाम और रूप वर्त्तमान, भविष्य ही गोचर है। अप्रमाण चैतसिक कालविमुक्त प्रज्ञप्ति को ही ग्रहण करता है। शेष ३३ चैतसिक सब विषयों को ग्रहण करता है।

वस्तु संग्रह

(१४५) स्वरूप प्रकाशन

चित्त और चैतसिकों के अधार और आश्रय को ही वास्तव्य कहते हैं। वह छ प्रकार का है। चक्षु-वास्तव्य, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, और हृदयवास्तव्य। इन सब को ११ काम लोक में ही लब्ध हैं। इसमें भी परिपूर्ण इन्द्रिय वालों को छः वास्तव्य सम्पूर्ण होता है। विकलेन्द्रिय वालों की चक्षु, श्रोत और घ्राण इनमें से कोई न कोई विकल हो जाय तो पाँच ही लब्ध है। चक्षु श्रोत, चक्षु घ्राण, श्रोत-घ्राण ऐसा दो २ विकलाङ्ग वालों को ४ ही लब्ध है। यदि चक्षु श्रोत और घ्राण तीनों का विकलाङ्ग हो तो तीन ही लब्ध है। इसलिए अभिधर्मसंग्रह पाली में कामलोके पन सब्बनिपिनलब्भन्ति' ऐसा कहते हुए भी "अपि" शब्द के योग से कुल छः को ही नहीं लेना चाहिए, पाँच चार और तीन को भी लिया जाता है। इसमें "अपि" शब्द का विशेष यह है कि अंधा, बधिर इत्यादि सत्वों के अनुसार किसी का असम्भव

होता है। १५ रूपलोक में चक्षु श्रोत और हृदय वस्तु को ही लब्ध है। अन्य घ्राणादि को लब्ध नहीं है। ४ अरूप लोक और एक असंज्ञा सत्त्व लोक में बिलकुल छः वास्तव्य नहीं है। रूप ब्रह्मलोक में घ्राण जिह्वा और काय यह तीन प्रसाद रूप स्त्रीन्द्रिय, पुरुषेन्द्रिय यह दो भाव रूप इन पाँचों को छोड़कर शेष २३ रूपों के होने के कारण कर्मज रूप और चित्तज रूप, ऋतुज रूप, इन तीनों में अन्तर्गत है। ओज, और गन्ध होने के कारण ब्रह्मा में गन्ध तो है किन्तु उस गन्ध को लेनेवाला घ्राण-प्रसाद और रस को ग्रहण करनेवाला जिह्वा-प्रसाद और स्पश को लेनेवाला काय-प्रसाद नहीं है। इसलिए इसी ग्रन्थ में ही "रूपलोके पन घ्राणादित्तयं नत्थि" लिखा है। यदि अर्हन्त हो तो उसको ससम्भार घ्राण-जिह्वादि तो है, किंतु वीतराग होने के कारण उनके विषयों के प्रति अशक्ति नहीं है, इसी तरह रूप-ब्रह्मलोक में भी ससम्भार घ्राण-जिह्वादि तो है किंतु उसके भोगने की तृष्णा नहीं है।

रूप ब्रह्मलोक में कर्म के अनुभाव से उद्यान और विमान इत्यादि बाहर वाले भाँति २ के खुशबू इत्यादि है। केवल ब्रह्माओं में ही उस खुशबू को लेने की तृष्णा नहीं है। अरूप लोक में मनायतन और धर्मायतन में अन्तर्गत चित्त चैतसिक राशि मात्र को ही भगवान् ने कहा है। विशेष कर किसी तरह स्थित है ऐसा कोई उपमा से वर्णित किया हुआ कोई प्रमाण नहीं है। अट्ठकथा के मत से अनुमान से लिया गया है कि उन

ब्रह्माओं के कर्म के अनुभाव से ही गगन में सुन्दराकार से भावना की ऋद्धि से स्थित है। इस अरूप ब्रह्मलोक में पहला आर्य-पुद्गल नहीं है। कारण इसमें बुद्ध के श्रावक बुद्ध और प्रत्येक बुद्धों के उत्पन्न न होने के कारण धर्म-श्रवण नहीं हो सकता। मनुष्य लोक को छोड़कर दूसरे लोक में बुद्ध प्रत्येक-बुद्ध और श्रावक नहीं होते।

(१४६) ८८ चित्तों के धातु भेद से स्वरूप का प्रकाशन

दो चक्षुविज्ञान चित्त चक्षुविज्ञान धातु है। दो श्रोतविज्ञान चित्त श्रोतविज्ञान धातु है। दो घ्राणविज्ञान चित्त घ्राणविज्ञान धातु है। दो जिह्वाविज्ञान चित्त जिह्वाविज्ञान धातु है। दो काय-विज्ञानचित्त काय विज्ञन धातु है। इनको पंच विज्ञान धातु कहते हैं। मनोद्वारा वर्जन चित्त और दो सम्प्रतिच्छन चित्त मनो धातु है। शेष २१ कुशल १२ अकुशल, २४ विपाक, १९ क्रिय, यह ७६ चित्त मनोविज्ञान धातु है। इन धातु में उत्पन्न चित्तों को मिला लें तो ८९ चित्त हो ही जाता है। उनमें से दो चक्षु-विज्ञान धातु चक्षुवास्तव्य को ही आश्रित करके होता है। दो श्रोत विज्ञान धातु श्रोत वास्तव्य को ही०। दो घ्राण विज्ञान धातु घ्राण-वास्तव्य को ही०। दो जिह्वा विज्ञान धातु०। दो कायविज्ञान धातु०। यह तो पाँच विज्ञान धातुओं का आश्रय है मनो धातु त्रिक, दो द्वेषमूल, तीन सांतीर्ण, एक हसितोत्पाद, ८ महाविपाक,

१५ रूपावचर, यह ३३ मनोविज्ञान धातु चित्त अवश्य ही हृदय वास्तव्य को अश्रित करके होता है। ८ लोभ-मूल, दो मोहमूल, एक मनोद्वारावर्जन, ८ महाकुशल, ८ महाक्रिय, अरूप कुशल और क्रिया १ श्रोतापत्ति मार्ग से अतिरिक्त सात लोकोत्तर, यह ४२ मनोविज्ञान धातु पंचवोकार भूमि में होते समय हृदय वास्तव्य को आश्रय करते हैं हैं। चतुवोकार भूमि में होते समय विना वास्तव्य को आश्रित किए हुए होते हैं। चार अरूप विपाक चित्त अरूप-भूमि में होने ही के कारण वास्तव्य को विना आश्रित किए हुए होते हैं। ऐसा सप्त धातुओं से भूमि को गिनने से भी ८९ चित्त ही लब्ध है। काम-लोक में ६ वास्तव्य को आश्रय करके होने वाला सात विज्ञान धातु असंज्ञासत्त्व को छोड़कर शेष १५ रूप लोक में चक्षु वास्तव्य, श्रोतावास्तव्य, हृदयवास्तव्य, इन तीनों को आश्रय करके होने वाले चक्षुविज्ञान धातु, श्रोत्र विज्ञान धातु, मनोधातु और मनोविज्ञान धातु यह चार ही है। चार अरूप लोक में एक मनोविज्ञान धातु ही वास्तव्य के विना आश्रय के होता है।

(१४७) आश्रय और अनाश्रय का प्रकाशन

८९ चित्तों में से वास्तव्य को आश्रय करके होनेवाला ४३ चित्त और वास्तव्य को आश्रय और अनाश्रय होके होनेवाला ४२ चित्त, बिलकुल अनाश्रय होके होनेवाला ४, इस प्रकार ८९ चित्त गिना जाता है। दश पंचविज्ञान धातु और तीन मनो

धातु और तीन संतीर्ण, आठ महाविपाक, दो द्वेषमूल, प्रथम मार्ग, हसितोत्पाद, रूपावचर चित्त, यह नव विज्ञान धातु, इस प्रकार ४३ चित्त, पंच वोकार में ही होते हैं। १० अकुशल चित्त मनोद्वारावर्जन, महाकुशल और महाक्रिय रूपकुशल और रूप-क्रिय, प्रथम मार्ग से अतिरिक्त सात लोकोत्तर चित्त, इस प्रकार ४२ मनोधातु पंचवोकार और चतुवोकार दोनों भूमि में होते हैं। ४ अरूप विपाक चित्त अपने उत्पन्न होने वाले अरूप भूमि को छोड़कर अन्य भूमि में नहीं होते। प्रत्येक विपाक अपने २ ही अरूप-भूमि में होते हैं।

(१४८) चैतसिकों के आश्रय तथा अनाश्रय होने का प्रकाशन

सात सर्वचित्त साधारण चैतसिक पंचवोकार भूमि में होते समय छ वास्तव्य को होते हैं। रूप लोक में तीन वास्तव्य को आश्रय होते हैं। अरूप लोक में आश्रय होनेवाला वास्तव्य नहीं है। द्वेष, ईर्ष्या, मात्सर्य, कौकृत्य, यह चार चैतसिक अवश्य ही हृदय वस्तु को आश्रित होते हैं। शेष ४१ चैतसिक कभी २ हृदय वस्तु को आश्रित होते हैं। अरूप लोक में होते समय विना आश्रय के होते हैं।

---

(१४९) वीथि परिच्छेद का सारांश

भूमि-लोक, लोक में उत्पन्नहोनेवालों से उपलक्षित करके दर्शित प्रवृत्ति संग्रह नामक वीथि संग्रह को प्रथम लिखित पालि, और हिन्दी अनुवाद के अनुसार सुबोध के लिये यथा शक्ति प्रकाशित करता हूँ। पृथक्जन, मार्गस्थ, फलस्थ,-वश बारह पुद्गल हैं। इनमें से चार पृथक्जन, (दुर्गति अहेतुक, सुगतिअहेतुक, द्विहेतुक, त्रिहेतुक) स्रोतापत्तिफलस्थ, सकृदागामिफलस्थ, अनागामि फलस्थ, यह सात प्रतिसन्धि, पुनर्जन्म होते हैं। चार पृथक्जन, चार फलस्थ, यह आठ च्युति-मरण भी होते हैं। चार मार्गस्थ, प्रतिसन्धि-जन्म, च्युति-मरण भी नहीं होते। निरोध समापत्तिस्थिति, और असंज्ञसत्त्व पुद्गलों के अतिरिक्त, तीस लोक में उत्पन्नवाले गोचर, गोचरग्राहिक होते हैं। अर्थात् लाल, नील, पीला आदि गोचर, उनको ग्रहण करनेवाले गोचर ग्राहिक—चित्त तीस लोक वालों को होते ही हैं। असंज्ञसत्त्वों को छोड़कर बाकी तीस लोक में उत्पन्नवालों के आत्मा में पाँच नियाम—प्राकृतिक-नैसर्गिकों में से चित्त नियाम-वश गोचर रूपी छः कारणों को लक्ष्य करके चक्षु आदि छः द्वारों में उत्पन्न चित्तों का प्रवृत्ति मनुष्यों के आने जाने के रास्ता से तुल्य होने के कारण वीथि-पथ, सड़क, मार्ग नाम से पालि भाषा में प्रसिद्ध है। वह

वीथि, वत्थु, द्वार, गोचर, विज्ञान, वीथि, विषय वश छः है ऐसा समझ लीजिए। उनमें से वत्थु, द्वार, गोचर, इन तीनों को तृतीय प्रकीर्णक आरमण संग्रह में देखिए। चक्षुविज्ञान वीथि, श्रोतविज्ञान वीथि, घ्राणविज्ञान वीथि, जिह्वाविज्ञान वीथि, कायविज्ञान वीथि, मनःविज्ञान वीथि, ऐसा विज्ञान वश छः चक्षुद्वार वीथि, श्रोत०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मनःद्वार वीथि, ऐसा द्वार-वश छः, अति-महन्तारमण, महन्तारमण, परित्तारमण, अतिपरित्तारमण, ऐसा पाँचद्वार-वश चार,, विभूतारमण, अविभूतारमण, ऐसा मनः द्वार-वश दो, इस प्रकार छः विषय हैं। इनमें से चक्षुद्वार पर एक अतिमहन्तारमण, दो महन्तारमण, छः परित्तारमण, छः अतिपरित्तारमण, ऐसा पन्द्रह हैं। इसके समान, श्रोतद्वार में पन्द्रह, घ्राणद्वार में पन्द्रह, जिह्वाद्वार में पन्द्रह, कायद्वार में पन्द्रह, इस प्रकार पाँचद्वार में प्रत्येक पन्द्रह होने के कारण पछत्तर-७५-वीथि हैं। अतिमहन्तारमण वीथि के प्रवृत्तिक्रम, रूपगोचर, और चक्षु प्रसाद रूप इन दोनों के अभिमुख उत्पत्ति से आरम्भ करके अतीत भवङ्ग, भवङ्गचलन, भवङ्गोपच्छेद, पञ्चद्वारा वर्जन, चक्षुविज्ञान, सम्प्रतिच्छन, सन्तीरण, वोट्ठबन, सातवारजवन दो तदारमण, बाद भवङ्ग यथा योग्य होकर रूप गोचर और चक्षुप्रसाद रूप सत्तरह चित्तक्षण आयु पूरा होने से दूसरा तदारमण के भङ्ग के साथ होके विरुद्ध होता है। यह अतिमहन्तारमण वीथि है। अतिमहन्तारमण वीथि का उत्पत्ति क्रम निम्नलिखित नकशा से समझ लीजिए।

कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्त　　　　　प्रत्यक्ष रूपगोचर

भवङ्ग १३ ती　न　द ❀ प　च　सं　ण
ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo-
उथिभ　उथिभ　उथिभ　उथिभ　उथिभ　उथिभ　उथिभ　उथिभ

वो　ज　ज　ज　ज　ज　ज　ज　त
ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo
o　o　o　o　o　o　o　o　o

त　भवङ्ग
ooo—ooo—यथोचित होकर निरोध होता है।
o　उथिभ

ऊपर लिखित नकशा का मतलब यह है कि 'ती' शब्द से अतीत भवङ्ग, 'न' शब्द से भवङ्गचलन, 'द' शब्द से भवङ्गुपच्छेद, '❀' यह निशान अतीत भवङ्ग के आगे-तेरह-१३-निशान से लेकर 'द' तक भवङ्ग चित्त, कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्त ही गोचर है। ऐसा बताता है। फिर आगे 'प' शब्द से पञ्च द्वारावर्ज्जन चित्त, 'च' शब्द से चक्षुविज्ञान, 'स' शब्द से सम्प्रतिच्छन्न, 'ण' से सन्तीरण, 'वो' से वोट्ठव्वन-मनोद्वारावर्ज्जन चित्त, 'ज' से जवन चित्त, 'त' से तदारमण चित्त, जान लीजिए। यह तो हुआ शून्य—बिंदुओं के ऊपर निशानों का! और नीचे के उ, थि, भ, यह तीनों में से, 'उ' शब्द से उत्पत्ति 'थि' से स्थिति, 'भ' से भङ्ग। "उप्पाद, स्थिति, भङ्ग वसेन खणत्तयं एक चित्तक्खणं नाम।" पालि, के अनुसार तीन बिंदु लिख कर तीनों बतलाया है।.. पञ्चद्वारावर्ज्जन से तदारमण तक सब चित्तों का प्रत्यक्ष रूप ही गोचर है। यह रूप गोचर

''ती ''

"

००० अतीत भवङ्ग के उत्पत्ति से दूसरा तदारमण ००० के भङ्ग तक सत्तरह--१७-चित्त क्षण एक्कावन ५१ अवयव क्षण पूरा आयु होता है। यह वीथि तदारमण के अन्त होने के कारण तदारमणवार कहलाता है। आगे भी जितने नकशा लिखे जायेंगे। इस तरह निशान मात्र ही रखकर केवल विशेष समझाने के विषयों पर ही ध्यान किये जायेंगे।

दो अतीत भवङ्ग या तीन अतीत भवङ्ग बीतकर तदारमण न होकर सात जवन के बाद पहला भवङ्ग के भङ्ग से अथवा सातवाँ जवन भङ्ग से बराबर होकर निरोध वाला दो वीथि महन्तारमण हैं। दोनों महन्तारमणों की वीथि निम्न लिखित नकशा से जान लीजिए।

कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्त प्रत्यक्ष रूपगोचर

भवङ्ग ''ती ती न द ॐ प च सं

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—००० -

उथिभ

ण वो ज ज ज ज ज ज ज

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००

भवङ्ग '' भवङ्ग

०००—०००—यह प्रथम महन्तरमण वीथि है।

उथिभ

कर्म कर्मनिमित्त, गतिनिमित्त प्रत्यक्ष रूपगोचर

''ती ती न द ॐ प च सं ण

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

उथिभ

वो ज ज ज ज ज ज ज भवङ्ग

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००

भवङ्ग

०००—यह द्वितीय महन्तारमण वीथि है।

उथिभ

यह दो वीथि न कम न ज्यादा वीथिचित्त होने के कारण महन्तारमण है। जवन चित्त के आखिर होने से जवन वार है। चार अतीत भवङ्ग, ५-६-७-८-नौ अतीत भवङ्ग बीत कर दो-या तीन बार वोट्ठब्बन होकर बिना जवन के भवङ्ग चित्त होके पाँचवाँ भवङ्ग, ४-३ प्रथम भवङ्ग के भङ्ग के या दूसरा वोट्ठब्बन, तृतीया वोट्ठब्बन के साथ निरोध वाला छः विथि परित्तारमण है! छः परित्तारमण वीथियों का नकशा निम्न लिखित है।

कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्त प्रत्यक्ष रूपगोचर

''ती ती ती ती न द ॐ प च

१—०००—०००—०००—०००—०००—०००—००० — ०००—

सं ण वो वो भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग

०००—०००—०००—०००—००१—०००—०००—०००—०००

पहला परित्तारमण वीथि।

कर्म-०-गतिनिमित्तों में एक न एक प्रत्यक्ष रूप गोचर

'' ती ती ती ती ती न द ❀ प
२—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

च सं ण वो वो भवङ्ग भवङ्ग
०००—००० —०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००

दूसरा परित्तारमण वीथि।

कर्म-०-गतिनिमित्त प्रत्यक्ष रूप गोचर

'' ती ती ती ती ती ती न द ❀
३—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

प च सं ण वो वो भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००

०००—तीसरा परित्तारमण वीथि।

कर्म-०-निमित्त प्रत्यक्ष रूप गोचर

'' ती ती ती ती ती ती ती ती
४—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

न द ❀ प च सं ण वो वो भवङ्ग
००० —०००—०००—०००—०००—००० —०००—०००—०००

भवङ्ग '' भवङ्ग
०००—०००—चौथा परित्तारमण वीथि।

कर्म-०- प्रत्यक्ष रूप गोचर

'' ती ती ती ती ती ती ती ती
५—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

न द ❀ प च सं ण वो वो भवङ्ग ''
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००

भवङ्ग
०००—पाँचवाँ परित्तारमण वीथि।

कर्म० प्रत्यक्ष रूप गोचर

''ती ती ती ती ती ती ती ती
६—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

ती न द॰ प च सं ण वो वो''
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००

भवङ्ग
०००—छठवाँ परित्तारमण वीथि।

यह छः परित्तारमण वीथि, वोट्ठब्बन मात्र ही वीथिचित्तों के अल्पायु होने से परित्तारमण नाम पड़ा। जवन चित्तों के अवकाश न होने से वोट्ठब्बन ही दो या तीन वार होता है। जिस वीथि में जवन चित्त नहीं होता उसमें वोट्ठब्बन चित्त, एक वार न होकर दो-या तीन बार होना उसका स्वाभाविक है। वोट्ठब्बन के अन्त होने से वोट्ठब्बन वार है। यह तो वोट्ठब्बन चित्त के दो बार का हुआ, यदि तीन वार करना चाहे तो रूप गोचर का आयु चार अतीत भवङ्ग चित्तों में से प्रथम अतीत भवङ्ग के उत्पत्ति से लेकर तीन वोट्ठब्बन के बाद चतुर्थ भवङ्ग चित्त के भङ्ग तक सत्तरह चित्त क्षण, अवयव एकावन क्षण पूरा होके निरुद्ध होता है। यह पहला परित्तारमण वीथि हुआ, इस तरह, तृतीय भवङ्ग चित्त०, द्वितीय भवङ्ग चित्त०, प्रथम भवङ्ग चित्त, तृतीय वोट्ठब्बन चित्त०, द्वितीय वोट्ठब्बन चित्त के भङ्ग तक सत्तरह चित्तक्षण, अवयव एकावन क्षण पूरा होके निरुद्ध होता है। इस तरीके से नकशा बना लें तो तीन बार वोट्ठब्बन वाला परित्तारमण वीथि पाँच होता है।

(१४४) दश अतीत भवङ्ग, ११-१२-१३-१४-पन्द्रह अतीत भवङ्ग चलन होके वीथि चित्त के अवसर न पाकर दूसरा भवङ्ग चलन के बाद पाँचवाँ भवङ्ग, चौथा भवङ्ग, तीसरा भवङ्ग, दूसरा भवङ्ग, पहला भवङ्ग चलन के भङ्ग के साथ होकर निरोध वाला छः अति परित्तारमण की वीथि क्रमशः निम्नलिखित नक्शा से समझ लीजिए।

कर्म-कर्मनिमित्त गतिनिमित्तों में एक-न-एक

''ती ती ती ती ती ती ती ती

१—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

उथिभ

ती ती न न भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००

०००—प्रथम अतिपरित्तारमण वीथि।

उथिभ

कर्म-कर्मनिमित्त गतिनिमित्त

''ती ती ती ती ती ती ती ती

२—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

उथिभ

ती ती ती न न भवङ्ग भवङ्ग''

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००

उथिभ

०००—द्वितीय अति परित्तारमण वीथि।

कर्म-कर्मनिमित्त गतिनिर्मित्त

''ती ती ती ती ती ती ती ती
३—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—
उथिभ

ती ती ती ती न न भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग''
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००
उथिभ

०००—तृतीय अतिपरित्तारमण वीथि ।

कर्म-कर्मनिमित्त गतिनिमित्त

''ती ती ती ती ती ती ती ती
४—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—
उथिभ

ती ती ती ती ती न न भवङ्ग भवङ्ग''
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००
उथिभ

०००—चतुर्थ अतिपरित्तारमण वीथि ।

कर्म-कर्मनिमित्त गतिनिमित्त

''ती ती ती ती ती ती ती ती
५—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—
उथिभ

ती ती ती ती न न भवङ्ग''
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००
उथिभ

०००—पञ्चम अतिपरित्तारमण वीथि ।

कर्म-कर्मनिमित्त गतिनिमित्तों में एक-न-एक

'' ती ती ती ती ती ती ती ती
६—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—
उथिभ

ती ती ती ती तो ती न न''
०००—०००—००:—०००—०००—०००—००० —०००—०००
उथिभ

भवङ्ग
०००—षष्ट छठा अति परित्तारमण वीथि।

यह छः वीथि अत्यन्ताल्प गोचर होने के कारण अतिपरित्तारमण है। इनमें वोट्ठब्बन चित्त के दो या तीन बार होने का अवकाश न होने से भवङ्गुपच्छेद न होकर भवङ्गचलन ही होता है।

भवङ्गुपच्छेद का यह स्वभाव है कि, वीथि चित्त होने से होता है, नहीं तो नहीं होता।

यह वार वीथि चित्त के एक मात्र भी न होने के कारण मोघरिक्त वार है। पन्द्रह प्रकार के चक्षु-द्वार वीथि समाप्त। श्रोतद्वार, घ्राणद्वार, जिह्वाद्वार, कायद्वारों में भी चक्षुद्वार के समान पन्द्रह २ नकशा अलग २ बना लीजिये। विशेष इतना ही है कि नकशा में 'च' शब्द के स्थान पर 'श्रो' अर्थात् श्रोत विज्ञान, शब्द-आवाज़ गोचर, 'घ्रा' अर्थात् घ्राण विज्ञान, गन्धगोचर 'जि' अर्थात् जिह्वा विज्ञान रस-स्वाद गोचर, 'का' अर्थात् कायविज्ञान, स्पर्शगोचर, पञ्चद्वार में प्रत्यक्षु गोचर को ही जोड़ लीजिए।

(पञ्चद्वारोत्पन्न ७५ वीथि समाप्त)

(१५०) वीथिक्रम के भावार्थ को पृथक् २ प्रसिद्ध करना

रूपगोचर के आयु प्रमाण को प्रकाश करने वाले सत्तरह चित्त समूहों में से प्रथमोत्पन्न "भवङ्ग चित्त को रूपगोचर के चक्षुद्वार पर स्पर्श होने के पहले निरोध पहुँचने के कारण अतीत भवङ्ग कहा है।" बीत जाने से नहीं, अर्थात् रूपगोचर के चक्षुप्रसाद पर प्रगट होने के पहले ही लोप हो चुका था। इसलिए अतीत भवङ्ग नाम पड़ा। इसका मतलब विगत-लुप्त होना कोई किसी को बीतने को नहीं। रूप गोचर अतीत भवङ्ग के तीन क्षणों में उत्पत्तिक्षण के साथ होते हुए भी प्रगट भाव पहुँचते नहीं। भवङ्ग चलन के उत्पत्ति क्षण मात्र और रूप के स्थिति पर प्रगट है ऐसा समझिए। प्रगट का मतलब है अभिमुख-आमने-सामने होना। रूप गोचर जो है चक्षुद्वारिक वीथि चित्तों के उत्पत्ति के पहले से ही उन्होंकी प्रतीक्षा भाव से आठ क्षण काल से जाहिर है। वीथि चित्ततो

'ती'	'न'	'द'	
अतीतभवङ्ग	भवङ्गचलन	भवङ्गुपच्छेद	अतीत भवङ्ग के स्थिति क्षण
'०००	—०००	—०००'	
उथिभ	उथिभ	उथिभ	

से, भवङ्गुपच्छेद के भङ्गक्षण तक आठ अवयव क्षणों के बाद होता है।

(१५१) भवङ्गचलन और भवङ्गोपच्छेद का निश्चय

इन दोनों का भेद यह है कि चक्षुप्रसाद में लगता हुआ रूप गोचर लगन के प्रभाव से भवङ्ग के प्रवाह को काटने की इच्छा होते हुए भी जैसा कि दौड़ता हुआ आदमी एक दम खड़ा नहीं हो सकता; दो या तीन कदम चलकर खड़ा हो सकता है वैसा ही अतीत भवङ्ग इसके बाद कम्पनाकार से होने के कारण भवङ्ग चलन लब्ध संज्ञा वाला भवङ्गचलन होकर ही भवङ्गोपच्छेद होता है। इन दोनों को कम्पनाकार से होने के कारण भवङ्ग-चलन, छेदनाकार से होने के कारण भवङ्गापच्छेद कहते हैं।

(१५२) पञ्चद्वारावर्ज्जनादि वीथि चित्तों का नाम

इन वीथि चित्तों में से जो पञ्चद्वार में रूपादि गोचरों को मनन करता है। उसका नाम है पञ्चद्वारावज्जन चित्त दूसरे का नाम है चक्षुप्रसाद में आश्रय होने के कारण चक्षुविज्ञान चित्त, तीसरे का नाम है चक्षुआदि, पञ्चविज्ञानों का देखा हुआ रूप गोचर। सुना हुआ शब्द गोचर, सूंघा हुआ गन्ध गोचर, चाटा हुआ रस गोचर, छुआ हुआ स्पर्श गोचरों को ग्रहण करने के कारण सम्प्रतिच्छन्न"। चौथे का नाम है सम्प्रतिच्छन्न चित्त ग्रहण किये हुए पञ्चगोचरों को जाँच करने के कारण सन्तीरण पाँचवाँ का नाम है। सन्तीरण चित्त जाँचे हुए गोचरों को याद करने के कारण वोट्ठब्बन छठवाँ का नाम है।

वोट्ठब्बन चित्त याद किये हुए गोचरों को अनेक वार भोगने के कारण अथवा अनेक बार होने के कारण जवन"। सातवाँ का नाम है। जवन घित्त के गोचरानुसार अथवा अनुकरण करके जवन चित्त के भुगते हुए गोचरों को लेने के कारण तदारमण।

सात वीथिचित्तों का नाम समाप्त

पञ्चद्वार में जितने वीथि चित्त होते हैं। सब के सब चौवन काम चित्त ही हैं। गोचर-वश वीथि चित्तों के आगे पीछे दश कामभवङ्गचित्त कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्तों में से एक न एक ही गोचर है। अगर वीथि चित्तों के आगे पीछे रूप भवङ्ग चित्त हो तो कर्मनिमित्त ही गोचर है। पञ्चद्वारावर्ज्जनादि वीथि चित्तों का गोचर तो रूपादि पाँच गोचर हैं। आश्रय भाव से चक्षुविज्ञानादि दश चित्त, प्रत्येक, चक्षुप्रसादादि पाँच वस्तुओं को आश्रय करते हैं। शेष वीथि चित्त हृदय वस्तु को आश्रय करते हैं।

भूमि-लोक मर्यादा से ग्यारह कामलोक में पाँच द्वारोत्पन्न वीथियों का अनुत्पन्न वीथि नहीं। असंज्ञ ब्रह्मलोक से शेष पन्द्रह रूपलोक में चक्षुद्वार और श्रोतद्वार तीस वीथियों में से दो अति महन्तारमण वीथि के अतिरिक्त अट्ठाईस वीथि लब्ध हैं। असंज्ञ ब्रह्म लोक में छः विज्ञानों के न होंने के कारण वीथि चित्त नहीं हो सकता। अरूप लोक में पाँच विज्ञानों के न होने से पाँचद्वार वीथि नहीं। मनोद्वार वीथि ही है। यह

सब वीथि चित्त पुद्गल भेद से चार पृथक्जन और चार फलस्थ, इन आठों में हैं। कामलोक, कामसत्त्व हो तो दश काम भवङ्ग को ही चाहिए। दुर्गति अहेतुक सत्त्व हो तो अकुशल विपाक उपेक्षा सहगत सन्तीरण भवङ्ग को ही चाहिए। रूप पुद्गल हो तो पाँच रूप भवङ्ग को ही चाहिए। तदारमण तो कामलोक, कामगोचर, कामसत्त्व में ही अवश्य होता है ऐसा नित्यरूप से समझिए।

(१५३) मन्दामन्दमध्यायुक तीनों का पृथक् २ करके दिखलाना

अतीत भवङ्ग पहले या नीचे तेरह भवङ्ग और अवयव से तीस क्षण में स्थित सैंतीस चक्षुप्रसादें दूसरा तदारमण-निरोध होने के पहले निरोध होकर रूपगोचर से कम आयु होने के कारण मन्दायुक हैं। अतीत भवङ्ग-के स्थिति से पञ्चद्वारावर्ज्जन के भङ्ग तक ग्यारह क्षणों में स्थित ग्यारह चक्षुप्रसाद दूसरा तदारमण के निरोध के बाद निरोध होकर रूपगोचर से ज्यादा आयु होने के कारण अमन्दायुक हैं। अतीत भवङ्ग के उत्पत्ति में स्थित चक्षुप्रसाद दूसरा तदारमण के भङ्ग क्षण समान काल होके रूपगोचर से समानायु होने से सध्यामायुक हैं।

चित्त का आयु या नामधर्म का आयु, उत्पत्ति, स्थिति, भङ्ग-वश तीन क्षण मात्र है। रूप धर्मों का आयु सत्तरह चित्तक्षण और उत्पत्ति, स्थिति, भङ्ग, अवयव एकावन क्षण है। दो

विज्ञप्ति रूप और चार लक्षण रूपों से अतिरिक्त बाईस रूपों का ही दो विज्ञप्ति एक चित्त क्षण मात्र ही आयु है। चार लक्षण रूपों में से अनित्यता रूप चित्त के भङ्ग क्षण मात्र आयु है। जरता रूप ऊनचास चित्तक्षण प्रमाण आयु है। उपचय और सन्तति, यह दो जाति रूप चित्त के उत्पत्ति क्षण के समान आयु होकर सत्तरह तो है, परन्तु सम्पूर्ण आयु न होने के कारण वर्जित है। आकाश धातु और लहुतादित्रय, स्वभाव रूप तो नहीं। क्यों वर्जित नहीं किया गया? स्वभाव रूप न होते हुए भी स्वभाव रूप धर्मों के प्रादुर्भाव होने तक सत्तरह चित्त-क्षण की आयु की तरह होकर वर्जित नहीं किया गया।

(१५४) भवङ्ग चित्त में अपवाद

चक्षुद्वार वीथि के विषय में रूपगोचर के चक्षुप्रसाद में संघटन होने से चक्षुप्रसाद रूप के आश्रयभूत महाभूत ही हिलना चाहिए। हृदयवस्तु में आश्रित भवङ्ग क्यों हिलता है? महाभूत और हृदय वस्तु दोनों के परस्पर एकाबद्ध होने के कारण हृदय वस्तु में आश्रित भवङ्ग भी हिलता है। जैसे कि एक भेरी नगाड़ा के दोनों मुँह में से एक तरफ़ में गुड़ लगा के दूसरी तरफ़ से बजाया जाय तो अन्य तरफ़ गुड़ में बैठा हुआ मक्खी भी उड़ जाता है। एकाबद्ध होने से अन्य तरफ भी हिल जाता है। ऐसा समझिए।

(१५५) पाँच नियाम-प्राकृतिक-नैसर्गिक-स्वभावों के प्रवृत्ति क्रम

ऋतु नियाम, बीजनियाम, कर्म्मनियाम, धर्म्मनियामों के तरह इस पञ्चद्वार वीथि के विषय में वीथि चित्त के उत्पत्ति क्रम, चित्त नियाम-वश भवङ्गुपच्छेद के बाद पञ्चद्वारावर्ज्जन चित्त, इसके बाद चक्षुविज्ञान चित्त, इसके बाद सम्प्रतिच्छन, इसके बाद सन्तीरण० वोट्ठब्बन० सातवार जवन चित्त दोवार तदारमण तक क्रमशः एक के बाद एक होते हैं। नियाम-नैसर्गिकोत्पत्ति क्रम। उन २ ऋतु-मौसिमों में उन २ वृक्षों-पेड़ों के एक साथ फूल, फल, अंकुर, पत्ते, शाखादिओं के उत्पत्ति ऋतुनियाम है। सूर्य्याभि-मुख फूलने वाले पुष्पों के सूर्य्याभिमुख फूलना, आम के बीज से अपना समान फल को होना इत्यादि बीजनियाम है। नारीयल के फल के अन्दर पानी का होना इमली और सरीफ़ा फल के अन्दर बीज का काला होना आदि भी बीजनियाम ही है। अकुशल-पाप कर्मों का ऐब के साथ दुःख का फल होना। कुशल कल्याण कर्मों का ऐब रहित सुख का फल देना या होना कर्म-नियाम है।

अन्तिम देह वाले बोधि सत्त्वों के मातुकुच्छि प्रवेश अर्थात् गर्भाधान के समय, बुद्धत्त्व प्राप्ति समय, धर्मचक्र सूत्र कथित समय, आयु संस्कार विसर्जन समय, परिनिर्वाण समयादियों में दश हज़ार चक्रवाल कम्पनादि धर्मनियाम है। पञ्चद्वारावर्ज्जन चित्त के बाद पाँच विज्ञानादिओं का होनादि चित्त नियाम है।

(१५६) वीथि चित्तों का प्रारम्भोत्पत्ति

इन पञ्चद्वारावर्ज्जनादि सात वीथि चित्तों के उत्पन्न होने का कारण क्या यह सात वीथि चित्त प्राकृतिक से स्थित है ? या कोई करने वाला करने से पैदा होता है। ऐसी शंका उत्पन्न हो तो, दर्पण, पत्थर, ईंधन, इन तीनों के परस्पर समागम होने से आग, चिनगारी, ज्वाला, उत्पन्न जैसे वस्तु गोचरादि कारण धर्मों के सम्पूर्णता से समागम होने से पञ्चद्वारावर्ज्जनादि वीथि चित्त होते हैं या आही जाते हैं। ऐसा समझना चाहिए।

चक्षुविज्ञान चित्त चक्षुवस्तु, रूपगोचर, आलोक, मनस्कार; श्रोतविज्ञान चित्त श्रोतवस्तु, शब्दगोचर, आकाश धातु, मनस्कार; घ्राणविज्ञान चित्त, गन्धगोचर, वायोधातु, मनस्कार; जिह्वाविज्ञान चित्त, जिह्वावस्तु, रसगोचर, आपोधातु मनस्कार; कायविज्ञान चित्त, कायवस्तु, स्पर्शगोचर, पृथ्वीधातु, मनस्कार; ऐसा चार कारण धर्मों के एकीभूत समागम होकर ही प्रत्येक वीथि चित्त होते हैं। खास बात यह है कि चक्षुप्रसाद रूप चक्षुविज्ञान चित्त को, निस्सय, पुरेजात, इन्द्रिय, विप्पयुत्त, अत्थि, अविगत इन छः कारणों से उपकार करता है। रूपगोचर चक्षु विज्ञान चित्त को आरम्भण, पुरेजात, अत्थि, अविगत, इन चार कारणों से उपकार करता है। आलोक, चक्षुविज्ञान चित्त को एक उप-निस्सय, कारण से उपकार करता है। मनस्कार, चक्षुविज्ञान चित्त को अनन्तर, समनन्तर, अनन्तररूपनिस्सय; नत्थि,

विगत, इन पाँच कारणों से उपकार करता है। श्रोतविज्ञान चित्तादिओं में भी चक्षुविज्ञान के समान यथोचित समझ लेना चाहिये। अति महन्तारमण वीथिमें तदारमण के वाद भवङ्ग का पतन है ऐसा कहा है। मतलब यह है कि वीथि चित्त न होकर भवङ्ग-वश होने को ही भवङ्ग पतन कहा है। एक भवङ्ग चित्त आकर गिरने को नहीं कहा जाता।

अतिमहत्तारमण वीथि का सारांश समाप्त।

(१५७) दो महन्तारमण वीथि का सारांश

जैसा अतिमहन्तारमण वीथि में तदारमण होता है। वैसा महन्तारमण वीथि में तदारमण क्यों नहीं होता? रूप गोचर के एक चित्त क्षण प्रमाण आयु होते हुए भी मृत्यु के आसन्न मनुष्य के माफ़िक अति दुर्बल होने के कारण तदारमण नहीं हो सकता। रूपगोचर में एक बार तदारमण हो सकता है। परन्तु तदारमण का स्वभाव है कि होने से दो बार, एक वार नहीं। इसी लिए जवन चित्त के वाद भवङ्ग चित्त ही होता है। तदारमण न होकर जवन के अन्त होने के कारण जवन वार है।

(१५८) छः परित्तारमण वीथि का सारांश

इस परित्तारमण वीथि में वोट्ठब्बन चित्त के बाद छः प्रमाण चित्तक्षण आयु वाले रूपगोचर के होते हुए भी जवन चित्त क्यों

नहीं होता ? ऐसा होते हुए भी रूपादिगोचर के अति कमज़ोर होने से दो तीन ही वोट्ठब्बन होता है। जवन चित्त नहीं हो सकता।

कामावचर जवन चित्तों का स्वभाव है कि प्राकृतिक काल में सात वार से कम नहीं। मूर्च्छाकाल में छः वार, मरणासन्न काल में पाँच वार, अप्पना के पूर्वकाल में तीन या चार वार, यमक प्रातिहारिय काल में ४ या ५ वार ही होता है। इसमें सात-वार होने के अवकाश न मिलने से वोट्ठब्बन ही दो या तीन बार होता है। वोट्ठब्बन का स्वभाव है कि जवन वार में एक वार जिसमें जवन नहीं। उसमें दो या तीन वार होता है। यह वोट्ठब्बन अन्त होने से वोट्ठब्बन वार है।

(१५९) अतिपरित्तारमण वीथि का सारांश

इसमें परित्तारमण वीथि की तरह वीथि चित्त न होकर भवङ्ग चलन ही क्यों होता है ? दो या तीन वोट्ठब्बन चित्त होने के लिए मौका न पाने के कारण भवङ्ग चलन मात्र ही होता है। यह बिलकुल वीथिचित्त न होने से मोघवार है।

(१६०) गर्भाशय वालों में वीथिचित्तोत्पत्ति का सारांश

पहले सांस न लेने वाले आठों को समझ लेना चाहिए। आठ यह है गर्भाशय-मातु कोख स्थित वाला, पानी में गोता मारने

वाला, चतुर्थ ध्यान स्थितिवाला असंज्ञसत्त्व रूपध्यानस्थित ब्रह्मा अरूप ध्यान स्थित ब्रह्मा, निरोध समापत्ति स्थित वाला, मूर्च्छित वाला। मातु कोख में चक्षुविज्ञान के चार कारणों में आलोक न होने से चक्षुद्वार वीथि नहीं होता। श्रोतद्वार वीथि तो होता है। कारण, गर्भाशय वाले के कान माँ के पेट में आँत, आँत-गुणादि एकाबद्ध होने के कारण पेट का शब्द पेट को पीटने मारने की आवाज़ को ले सकता है। इसलिए श्रोतद्वार वीथि होता है। घ्राणद्वार वीथि नहीं होता। कारण साँस न लेने वालों में गर्भाशय वाला शामिल है। माँ के पेट से पैदा होकर पहिला सूक्ष्म वायु निकलता है। बाद शान्त सूक्ष्म वायु प्रवेश होता है। इत्यादि से पारी पारी होकर अश्वास प्रश्वास होते समय घ्राणद्वार वीथि होता है। कायद्वार वीथि तो बाहर और भीतर दोनों में होता है। अतः गर्भाशय में चक्षु और श्रोतद्वार वीथि नहीं होता, बाकी, घ्राण, जिह्वा, कायद्वार स्वीथि होता है। इसमें से जिह्वाद्वार तो मुँह, तालु जीभ में लार, थूक स्थित होने के कारण मा के पेट में होता है।

(१६१) पञ्चद्वार में विशेष सारांश

"रूपं प्रथम चित्तेन, तीतंदुतियचेतसा नामं ततियचित्तेन अत्थं चतुत्थचेतसा। इस श्लोक के अनुसार प्रत्येक पञ्चद्वार वीथि के आखिर में यथा योग्य तदनुवत्तक मनोद्वार वीथि, शुद्ध, मनोद्वार वीथि होते हैं। ऐसे ही चक्षुविज्ञान एक वीथि, अतीत

को मनन कर तदनुवत्तक मनोद्वार एक वीथि, नाम प्रज्ञप्ति को मनन करके शुद्ध मनोद्वार एक वीथि, अर्थ, द्रव्य-अर्थ प्रज्ञप्ति को मनन करके शुद्ध मनोद्वार एक वीथि, से चौथी वीथि में ही गोचर को निश्चय किये जाने के कारण प्रत्येक चक्षुद्वार वीथि में तीन २ मनोद्वार वीथि मिला लीजिए। इन चारों में से पहली और दूसरी वीथि परमार्थ गोचर है। तृतीय और चतुर्थ, प्रज्ञप्ति गोचर है। पञ्चद्वार में (३००) वीथि है।

"शब्दं प्रथम चित्तेन, तीतं द्वितीय चेतसा, नामं तृतीय चित्तेन, अर्थं चतुर्थ चेतसा।" इस श्लोक से एक अक्षर वाला 'गो' शब्द को सुना हुआ आदमी चौथी शुद्ध मनोद्वार में बैल या गाय रूपी अर्थ प्रज्ञप्ति को जानता है। प्रत्यक्ष 'गो' शब्द को मनन कर एक श्रोतद्वार वीथि। अतीत को मनन करके तदनुवत्तक मनोद्वार वीथि। नाम प्रज्ञप्ति को मनन कर शुद्ध मनोद्वार वीथि। अर्थ प्रज्ञप्ति को मनन कर शुद्ध मनोद्वार वीथि, यह तो हुआ एक अक्षर वाला 'गौ' शब्द की वीथि। यदि 'दान' भावना, पत्तिदान कुशलकम्मा इत्यादि दो, तीन, चार, पाँच अक्षर वालों में भी क्रमशः छः आठ, दश, बारह, दो २ बढ़ाकर अन्तिम वीथि से ही स्वभावार्थ को जानता है। नमूना यह है कि प्रत्यक्ष 'दा' शब्द को मनन कर श्रोतविज्ञान वीथि अतीत 'दा' शब्द को मनन कर तदनुवत्तक मनोद्वार वीथि, प्रत्यक्ष 'न' शब्द को मनन कर श्रोत विज्ञान वीथि, अतीत 'न' शब्द को मनन कर तदनुवत्तक मनोद्वार वीथि, 'दान' नाम प्रज्ञप्ति को मनन कर मनोद्वार

वीथि, दान शब्द की अर्थ प्रज्ञप्ति को मनन कर छठवाँ मनोद्वार वीथि होता है। इनमें से पहला चार वीथि परमार्थ गोचर है। आखिर दो वीथि प्रज्ञप्ति गोचर है। इस विषय में बुद्धि आवश्यक है। क्योंकि एक चुटकी में सौ हज़ार करोड़ चित्त-क्षण होते हैं। बहुत चिरकाल मत मानिए।

(१६२) कण्ठस्थ करने का श्लोक

"रूपसद्दाअनेकावासकठानापदिस्सरे, न पनसमुदायेन, अक्खिनेकापिसेसका पसादापि च एकापि होन्तिविञ्ञाननिस्सया चक्खुं-पटिच्चरूपेच उप्पज्जतीतिपाठतो।" संक्षेप मतलब यह है कि विभङ्ग पालि में एक वचन चक्षु शब्द और बहुवचन रूपगोचर शब्द से कहने के कारण पाँच गोचरों में से रूप और शब्द गोचर अपनी जगह पर स्थित होकर "पालकी-उठान" न्याय से चक्षु-विज्ञान चित्त में आ पहुँचते हैं। रूपगोचर से पालकी उठाने-वाले, पालकी से चक्षुप्रसाद, पालकी पर चढ़ने वाले से चक्षु-विज्ञान जोड़कर उपमा और उपमेय जानिए। गन्ध, रस, और स्पर्श गोचर अपने २ आश्रय प्रसाद में 'जोंक जैसे' लग्न होकर ही प्रगट होते हैं। परमार्थ स्वभाव से अवयव को छोड़कर समूह धर्म नहीं। अवयव रूप गोचर ही एकत्र होकर पालकी उठान न्याय से चक्षुविज्ञान चित्त को आरम्भणपच्चय शक्ति से उपकार करता है। "नहिपुरमत्थतो समुदायो नाम कोचि अत्थि।" यह हुआ आचार्य बुद्ध घोश का मत।

(१६३) महाअट्ठ कथा का मत

दोनों मतों का विशेष यह है कि रूपादि पाँच गोचरों में से रूप और शब्द अप्राप्त गोचर, शेष, गन्ध, रस और स्पर्श प्राप्त गोचर, यह बुद्ध घोश का है। सब पाँच गोचर प्राप्त ही है। यह महा अट्ठकथा का है। इसका विस्तार छठवाँ रूप परिच्छेद में आ जायगा।

(१६४) मनोद्वार वीथि का सारांश

काम जवन वार वीथि और अपना जवन वार वीथि ऐसा दो भेद है। उनमें से काम जवन वार वीथि जो है। वह सत्तरह क्षण आयु प्रमाण वाले बाईस रूपों को मनन करके पाँच विभूता रमण वीथि, दो अभिभूतारमण वीथि, और सत्तरह क्षण आयु प्रमाण अपूर्ण वाले शेष रूप, नाम और प्रज्ञप्तियों को मनन करके, एक विभूता रमण, और एक अविभूतारमण, ऐसा नौ भेद हैं। उनमें से प्रत्यक्ष बाईस रूपों के उत्पत्ति क्षण से प्रारम्भ करके एक, दो, तीन, चार, पाँच अतीत भवङ्ग होकर भवङ्ग चलन, भवङ्गो पच्छेद, मनोद्वारावज्जंन, सात वार जवन, दो तदामरण, इसके बाद यथोचित होकर प्रत्यक्ष बाईस रूप सत्तरह क्षण आयु पूरा होने से चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम भवङ्ग, द्वितीय तदारमण से समान काल, निरोध वाला पाँच वीथि, विभूतारमण है। इन पाँचों विभूतारमणों की वीथि निम्न-

लिखित नक्शा से समझ लेना चाहिये। समान काल का मतलब यह है कि सत्तरह क्षण आयु के बराबर होकर अपनी २ ठौर पर निरोध होने को कहते हैं एक साथ मिल जुल कर नहीं। सत्तरह क्षण आयु वाले सब वीथियों में ऐसा ही जानिए।

(प्रथम विभूतारमण वीथि)

कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्त प्रत्यक्ष बाईस रूप

'' ती न द ॐ म ज ज ज ज

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—
उथिभ

ज ज ज त त भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००
उथिभ

भवङ्ग
०००—इसमें 'म' शब्द से मनोद्वारावज्जन चित्त समझ लो।

कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्त प्रत्यक्ष २२ रूप

'' ती ती न द ॐ म ज ज ज

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—
उथिभ

ज ज ज ज त त भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००
उथिभ

भवङ्ग
०००—द्वितीय विभूतारमण वीथि।

कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्त प्रत्यक्ष २२ रूप

''ती ती ती न द ❀ म ज
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

ज त त भवङ्ग भवङ्ग
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००
उथिभ

भवङ्ग
०००—तृतीय विभूतारमण वीथि।

कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्त प्रत्यक्ष २२ रूप

''ती ती ती ती न द ❀ म ज
१—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

ज त त भवङ्ग''
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००
भवङ्ग उथिभ

०००—चतुर्थ विभूतारमण वीथि।

कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्त प्रत्यक्ष २२ रूप

''ती ती न द ❀ म
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—
उथिभ

ज ज त त''भवङ्ग
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—
भ

ज ज
०००—०००

पञ्चम विभूतारमण वीथि।

दो अविभूतारमण वीथि

विभूतारमण वीथि की तरह छः अतीत भवङ्ग, सात अतीत भवङ्ग होकर बिना तदारमण के भवङ्ग चित्तों में से पहला भवङ्ग और सातवाँ जवन से समान काल में निरोधवाला दो वीथि अविभूतारमण है। नकशा निम्नलिखित है।

कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्तों में एक न एक प्रत्यक्ष २२ रूप

' ' ती ती न द ॐ म

००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ००० —

उथिभ

ज ज ज भवङ्ग 'भा' भवङ्ग

००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ०००

उथिभ

प्रथम अविभूतारमण वीथि।

कर्म-कर्मनिमित्त गतिनिमित्त० प्रत्यक्ष २२ रूप

' ' ती ती न

००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ००० —

उथिभ

द ॐ स ज ज ' '

००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ००० — ०००

उथिभ

भवङ्ग

००० — द्वितीय अविभूतारमण वीथि।

प्रत्यक्ष रूप गोचर में जैसे पञ्च विभूतारमण वीथि होती है। वैसे ही प्रत्यक्ष शब्द गोचर, प्र० गन्धगोचर, प्र० रस-गोचर, प्रत्यक्ष स्पर्श गोचर, प्रत्यक्षधर्म गोचर में भी पाँच २ होता है। इसीलिये तीस वीथि, और प्रत्यक्ष रूप गोचर में दो अवि-भूत प्राप्त है। इसके समान शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, धर्मगोचर में भी दो २ प्रत्येक होता है। इसीलिये बारह, कुल विभूत और अविभूत ब्यालीस ४२ होता है।

(१६५) अपूर्ण सत्तरह क्षण आयुवाला विभूत और अविभूत का सारांश

अपूर्ण० आयुवाला त्रिकालिक कामचित्त, चैतसिक, दो विज्ञप्ति रूप चार लक्षण रूप, अतीत, अनागत, द्विकालिक शेष बाईस रूपों को मनन कर बिना अतीत भवङ्ग के पहले की तरह उन गोचरों को मनन कर अभिमुखीभूत प्रगट भवङ्ग के बाद भवङ्ग चलन, फिर भवङ्गोपच्छेद, मनोद्वारावर्ज्जन, सात जवन, दो तदारमण के बाद यथा योग्य भवङ्ग होके निरोध वाला एक विभूतारमण वीथि, त्रिकालिक, नवासी चित्त, (बावन) चैतसिक, दो विज्ञप्ति रूप, चार लक्षण रूप, अतीत, अनागत शेष बाईस (२२) रूप, कालविमुक्त निर्वाण, प्रज्ञप्ति को मनन कर बिना तदारमण के पहले के समान जवन चित्त के बाद भवङ्ग चित्त-वाला अविभूतारमण वीथि, ऐसा दो होते हैं। इनमें गोचर

का निरोध, अमुक चित्त के साथ होकर अमुक चित्त के समान काल हुआ ऐसा दिखला नहीं सके तो नकशा में देखिए।

कर्म० त्रिकालिक कामचित्तादि गोचर

न द म ज
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

ज त त भवङ्ग भवङ्ग
०००—०००—०००—०००—०००—०००—विभूतारमण वीथि, इसमें उत्पत्ति, निरोधादि का विभाग नहीं।

कर्म० त्रिकालिक नवासी चित्त आदि गोचर

न द म ज
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

ज भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग
०००—०००—०००—०००—०००—०००—अविभूतारमण वीथि—इसमें भी उत्पत्ति आदि का निश्चय नहीं।

सत्तरह क्षण आयुवाला रूप बाईस है। रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श-अर्थात् पृथ्वी, तेज, वायु, चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा, काय, आप, स्त्री भाव, पुम्भाव, हृदयवस्तु, जीवितेन्द्रिय, ओजा, परिच्छेद, लघुता, मृदुता, कर्मण्यता, (स्पर्श में तीन होने से बीस, ही गिना जाता है। शेष छः इसमें सत्तरह क्षण आयु नहीं हो सकता। काय, विज्ञप्ति, वची विज्ञप्ति, उपचय, सन्तति, जरता, अनित्यता, कुल अट्ठाइस रूप है। इसका विस्तार छठवाँ रूप परिच्छेद में आ जायगा।

(१६६) मनोद्वार वीथि का सारांश

पञ्चद्वार वीथि में अतिमहन्तादि वीथियों से गोचरों को लक्षित किया जाता है। इसमें ऐसा क्यों नहीं होता? मनोद्वारिक वीथि चित्त तो द्विकालिक गोचरों को मनन करता है। अतः अतिमहन्तादि से लक्षित न करके विभूत, अविभूतों से ही लक्षित किया गया है। चक्षु विज्ञानादि दश विज्ञान चित्त, पञ्चद्वारावर्ज्जन चित्त, दो सम्प्रतिच्छन चित्त, यह तेरह चित्त ही खास पञ्चद्वारिक है। अतः मनोद्वार में एकतालीस कामचित्त होता है।

(१६७) स्वप्न वीथि का सारांश

स्वप्न तब होता है जब भवङ्ग चित्त से बिलकुल सोया भी न हो। जवनादि चित्तों से जगा हुआ भी न हो। जैसा बंदर हलका निद्रा से चंचल चित्तों से सोता है। वैसा सोने वाले को ही देखता है। वह कुशल अकुशल, अव्याकृत. तीनों होता है। स्वप्न वीथि का नकशा निम्नलिखित है, दोनों प्रगट गोचर में मनोद्वार में ही होता है।

कर्म-कर्मनिमित्त गतिनिमित्त वन्दनीयादि गोचर

भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग न द ❀ म ज ज
ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—

ज ज ज ज ज त त भवङ्ग भवङ्ग
ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo

यह वीथि चैत्य पूजादि करते हुए स्वप्न में लब्ध है।

कर्म-कर्मनिमित्त गतिनिमित्त हिंसनीय गोचर

भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग न द ❀ म ज
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

ज त त भवङ्ग भवङ्ग
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००

भवङ्ग
०००—यह वीथि स्वप्न में हिंसा करते हुए देखने में लब्ध है।

(१६८) अप्रगट स्वप्न वीथि का नकशा नीचे देखिए

कर्म-कर्मनिमित्त गतिनिमित्त रूप गोचरादि

भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग न द ❀ म म
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००

यह दो वार मनोद्वारावर्ज्जन वाला अविभूत स्वप्न वीथि।

कर्म-कर्मनिमित्त गतिनिमित्त रूपादि गोचर

भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग न द म म
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

म भवङ्ग भवङ्ग
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००

यह तीन वार मनोद्वारावर्ज्जन वाला अविभूत स्वप्न वीथि।

इस स्वप्न वीथि में अतीतभवङ्ग और गोचर के उत्पत्ति-निरोध का कोई खास नियम नहीं। जो 'म' शब्द का निशान

मनोद्वारा वज्जन चित्त है। वह जैसा पञ्चद्वार में द्वितीय मोघवार में वोट्ठब्बन नाम से दो या तीन वार होता है। वैसा मनोद्वार स्वप्नवीथि में दो या तीन वार होकर दूसरा मनोद्वारावर्ज्जन चित्त से पाँच या छः भवङ्ग चित्त तक जवन चित्त का काम करता है। अथवा जवन के विषय में काम देता है यह पिछला दो वीथि, आखिर मनोद्वारावर्जन वाला स्वप्न वीथि हैं।

(१६९) अप्पनाजवन वार वीथि का विभाग

वह ध्यानवीथि, मार्गवीथि, फलसमापत्तिवीथि, अभिज्ञान वीथि, निरोधसमापत्तिवीथि-भेद से पाँच है। उनमें से ध्यान वीथि जो है। वह प्रथमध्यान वीथि,० नैवसंज्ञानासंज्ञायतन वीथि, इस प्रकार नव है। फिर उसको कुशल, क्रिया, दोनों से गुना करें तो अठारह फिर आदिकम्मिक, समापज्जन दो से गुना करें तो छत्तीस,। ३६ को तीक्ष्ण और मन्द से गुना करें तो, बहत्तर ध्यान वीथि होता है। यदि सबको अवयव करें तो आठ प्रथमध्यान वीथि, ८द्वि, ८तृ, ८चतु, ४० पञ्चमध्यानवीथि, वही ७२ होता है। प्रत्यवेक्षण वीथि भी प्रत्येक ध्यानङ्गों में जैसे वितर्क्क विचार, प्रीति, सुख, एकाग्रता, पृथक् २ एक २ वीथि लब्ध होने के कारण, प्रथमध्यान आठ वीथि के पश्चात् चालीस, द्वितीय ध्यान के वाद ३२-तृती०वाद २४, चतुर्थध्यान के वाद सोलह, पञ्चमध्यान ४० वीथि के बाद, उपेक्षा, एकग्गता, दो ध्यानाङ्ग होने से ८०। कुल १९२ वीथि है। इस अप्पना जवन वार वीथि में कसिणादि गोचर मनमें लगने अथवा

प्रकट होने से ही अप्पनाध्यान प्राप्त होता है। इसलिये विभूता-रमण ही होता है। काम जवनवार के माफ़िक अविभूत नहीं। आदिकम्मिक वीथि में भवङ्गचलन, भवङ्गुपच्छेद, मनोद्वारावर्ज्जन मन्द बुद्धिवाले को प, परिकर्म, उ, उपचार, अ, अनुलोम, गो, गोत्रभू, चारवार उपचार समाधि जवन। तीक्ष्ण बुद्धिवाले को बिना परिकम्म के, उपचार, अनुलोम, गोत्रभू, के बाद एक वार अप्पनासमाधि ध्यानजवन चित्त, फिर भवङ्ग यथायोग्य होकर निरोध है। आदिकम्मिक ध्यानवीथि का नकशा निम्नलिखित है। इसमें प, आदि अक्षरों के भाव ऊपर लिख चुका।

कर्म-०-गतिनिमित्त पृथ्वी कसिण प्रतिभाग गोचर

न द ❀ म प उ अ गो ध्यान

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

भवङ्ग

०००—यह मन्द बुद्धिवाले का है।

कर्म-०-गतिर्निमित्त पृथ्वी कसिण प्रतिभागनिमित्त गोचर

न द ❀ म उ अ गो ध्यान भवङ्ग

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

भवङ्ग

०००—यह तीक्ष्ण बुद्धिवाले का वीथि है।

समापज्जन वीथि में भी वीथि का नकशा तो एकही है। अन्त में अनेक वार ध्यान जवन चित्त होना ही विशेष प्रधान यह है कि प्राप्त किया हुआ ध्यान को ही सम्यक् प्रवेशन, अधिष्ठान, व्युत्थान, इस प्रकार के तीनों अभ्यासों से प्रवेश करता है।

(समापज्जन, अर्थात् ध्यान प्रवेशन वीथि का नकशा)

कर्म, कर्मनिमित्त, गति० पृथ्वीकसिण प्रतिभागनिमित्तगोचर

न द ❀ म प उ अ गो ध्यान

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

अनेकवार ध्यान

०००——०००—यह वीथि मन्द बुद्धिवाले का है। समापज्जन, समापत्ति, यह दोनों एक ही है।

कर्म-०-गतिनिमित्त पृथ्वी कसिण प्रति भाग निमित्त गोचर

न द ❀ म उ अ गो ध्यान अनेकवार

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

ध्यान

०००—यह वीथि तीक्ष्ण बुद्धिवाले का ध्यान प्रवेशन वीथि है।

इसी तरह बाकी आदि कम्मिक वीथि समापज्जन वीथियों में नकशा वना लीजिए। गोचर ही भेद होता है (पच्चवेक्खणा वीथि) अर्थात्, विचारना, ख्याल करना, प्राप्त होकर प्रवेश किये हुए ध्यानस्थित वितर्कादि ध्यानङ्गों को आवज्जनाभ्यास, पच्चवेक्खणाभ्यासों से अवयव विचारो, तो भवङ्ग चलन, भवङ्गु पच्छेद, मनोद्वारावज्जन, सात, या पाँच वार वेक्खणा, जवन चित्त के वाद यथोचित भवङ्ग चित्त होकर निरोध है।

कर्म-०-गतिनिमित्तों वितक्क विचारना

न द ❀ म ज ज

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

भवङ्ग भवङ्ग
०००—००० —यह पच्चवेक्खणा वीथि है।

मृदु इन्द्रिय वाले को पाँच वार तीक्ष्णेन्द्रिय वाले को चार वार प्रत्येक क्षण जवन चित्त को लगाकर (१९२) वीथि पूरा होने तक, वितक्क विचारने का पच्चवेक्खणा वीथि के तरह नकशा बना के विचार, पीति, सुख, एकग्गता ध्यानङ्गों को भी समझिए। इसमें पृथक्जन और शैक्षों को पाँच वार महाकुशल ज्ञान सम्प्रयुक्त प्रत्यवेक्षणा जवन, अर्हन्त को ज्ञान सम्प्रयुक्त महा-क्रिया जवन जानिए। ऋद्धि देखलानादिकाल में पाँच या चार वार होता है, अन्य काल में सात वार है।

(१७०) परिकम्मादि का उत्पत्ति क्रम

अप्पना को बनाने वाला जो चित्त है उसको परिकम्मं, दूसरा जो चित्त है उसको अप्पना के समीप होने के कारण उपचार, तीसरा जो चित्त है, उसको पूर्व "परिकम्म कहते हैं। अगला अनुलोम के अनुकूल होने के कारण अनुलोम, चौथा जो चित्त है। उसको कामावचर गोत्र को अभिभूत, अथवा पृथक् जन गोत्र को काट छेद करने के कारण गोत्रभू कहे हैं चौथा चित्त का विशेष है जो महग्गत ध्यान चित्त के पूर्व भाग में है। वह काम गोत्र को अभिभूत करता है। जो मार्ग चित्त के पूर्व भाग में है वह पृथक् जनगोत्र को काटन छेदन करता है। कसिणादि गोचरों में प्रवेशन या समीपगमन करने के कारण वितक्कादिध्यान धर्मों को अप्पना कहते हैं।

(१७१) लोकोत्तर वीथि का प्रकाशन

लोकोत्तर में मार्गवीथि जो है। वह स्रोतापत्ति मार्गवीथि,० अर्हत्तमार्ग वीथि, भेद से चार है। उनमें से जो स्रोतापत्ति मार्ग वीथि है वह प्रथम ध्यान, ० पञ्चमध्यान, भेद से पाँच है इनको तीक्ष्ण और मन्द से गुना करने से दश १० होता है फिर उसी को पादकध्यान, सम्मसितध्यान, पुद्गलज्झासयध्यानों से गुना करें तो तीस होता है। यह तीस गोत्रभू के नाम से गो वार कहे हैं। ऊपर सकृदागामिमार्ग, अनागामिमार्ग, अर्हत्तमार्गों में भी इसके समान गुना करके वोदान के नाम से नब्बे वो, वार कहे हैं। कुल मार्गवीथि (१२०) हैं। स्रोतापत्तिमार्गवीथि का उत्पत्ति क्रम भवङ्गचलन, भवङ्गुपच्छेद, मनोद्वारावर्ज्जन, परिकर्म्म, उपचार, अनुलोम, गोत्रभू के वाद एक वार मार्गचित्त वाद मन्द बुद्धिवाला हो तो दो वार फलचित्त, तीक्ष्ण बुद्धिवाला हो तो तीनवार फलचित्त के वाद यथायोग्य भवङ्ग होकर निरोध है। इसमें जो गोत्रभू है वह पृथक् जनगोत्र को अभिभूत होकर आर्य गोत्र को बढ़ाने के कारण गोत्र भू कहलाता है। नक्शा नीचे देखिए।

कर्म,कर्मनिमित्त, गतिर्निमित्तों में एक न एक त्रिलोकसंस्कार और निर्वाण

भवङ्ग भवङ्ग न द ॐ म प उ अ
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००-
गो मार्ग फल फल भवङ्ग भवङ्ग
०००—०००—०००—०००—०००,—०००—यह तो मन्द बुद्धि वाले में उत्पन्न मार्ग वीथि है।

निम्नलिखित मार्ग वीथि तीक्ष्ण बुद्धि वाले में होता है

कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्त   त्रिलोक संस्कार और निर्वाण

भवङ्ग भवङ्ग न द ❀ म उ अ गो
ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—
उथिभ

मार्ग फल फल फल भवङ्ग
ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—इसके समान बाकी सकृदागामि आदि तीन मार्ग वीथियों में गोत्रभू के स्थान पर 'वोदान' होकर मार्ग वीथि (१२०) पूरा बना लीजिए।

(१७२) चित्तादि का जाँचना

स्रोतापन्न का चित्त पाँच है, मनोद्वारावर्ज्जन, त्रिहेतुक महाकुशल ज्ञान सम्प्रयुक्त सौमनस्य प्रथम द्विक अपना मार्ग और फल, गोत्रभू, वोदान, मार्ग और फल चित्तों का गोचर निर्वाण है। शेष चित्त त्रिलोक संस्कार ही गोचर है। भवङ्ग चित्त का गोचर कर्म, कर्मनिमित्तों में एक न एक है। आश्रय तो हृदय वस्तु ही है। मार्ग, फल और निर्वाण, प्रहिनक्लेश और अप्रहीन क्लेश, इन पाँचों को विचार करके स्रोतापत्ति आदि तीनों मार्गों में पाँच २ वीथि है। अर्हत्त मार्ग में अप्रहीन क्लेश न होने के कारण चार प्रत्यवेक्षणा वीथि है। इसमें पच्चवेक्खणा वीथि संक्षेप से उन्नीस १९ है। विस्तार से स्रोतापत्ति प्रथम ध्यान में पाँच, द्वि० ५ तृ० ५ चतु० ५ स्रोतापत्ति मार्ग, पञ्चम ध्यान में पाँच, कुल पच्चीस २५ इसको तीक्ष्ण और मन्द दोनों

से गुना करे तो पचास ५० है। फिर इसको पादक, सम्मसित पुद्गलज्भासय, इन तीनों से गुना करे तो (१५०) होता है। सक्कदागामि और अनागामि मार्गों में भी १५०-२ होते हैं। अर्हत्त मार्ग में अप्रहीन क्शेश न होने से ४ अर्हत्त मार्ग प्रथम ध्यान ४ द्वु० ४ तृ० ४ चतु० ४ पञ्चम ध्यान, कुल बीस हुआ। इसको तीक्ष्ण और मन्द दोनों से गुना करे तो ४० फिर इसको ही पादक, सम्मसित, पुद्गलज्भासय इन तीनों से गुना करे तो १२० होता है। कुल चार मार्गों में प्रत्यवेक्षणा वीथि (५७०) होता है। मार्ग वीथि में प्रत्यवेक्षणा वीथि का उत्पत्ति क्रम प्राप्त हुआ। मार्ग, फल, निर्वाण, प्रहीन क्लेश और अप्रहीन क्लेश इन पाँच को विचार करे तो, भवङ्ग चलन, भवङ्गु पच्छेद, मनो-द्वारावर्ज्जन, सात वार विचार जवन, यथा योग्य भवङ्ग होकर निरोध होता है। इसमें शीघ्रता की जरूरत नहीं। अतः सात वार जवन होता है। ध्यान वीधि पर प्रत्यवेक्षणा से इतना फ़र्क है। नकशा निम्नलिखित है।

कर्म-०-गतिर्निमित्त (स्रोतापत्तिमार्ग गोचर को विचार करता है)

भवङ्ग न द ❀ म ज
ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—ooo—

ज भवङ्ग
ooo—ooo—ooo—ooo—इसमें महाकुशल ज्ञानसम्प्रयुक्त जवन को लीजिए। इससे ऐसा जानता है कि जो हमने प्राप्त किया। वह स्रोतापत्ति मार्ग है, मार्ग वीथि समाप्त।

फल समापत्ति या फल समापज्जन अर्थात् फल प्रवेशन वीथि

कर्म० गतिनिमित्त त्रिलोक संस्कार और निर्वाण गोचर

भवङ्ग न द ॐ म अनुलोम अ अ अनुलोम

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

फल फल फल फल भवङ्ग

०००—०००—०००—०००—०००—इसमें मन्द बुद्धिवाले को चार अनुलोम, तीक्ष्ण वाले को तीन वार अनुलोम, फल जवन चित्त तो यथिच्छित अनेक वार होकर भवङ्ग चित्त यथोचित्त होके निरुद्ध होता है। चार अनुलोभ अथवा तीन अनुलोभ तो महाकुशल ज्ञान सम्प्रयुक्त जवन ही को लेना चाहिए। इसमें मनोद्वारावर्ज्जन, अनुलोम तों त्रैलौकिक संस्कार ही गोचर है। फल जवन चित्त का गोचर निर्वाण है। प्रत्येक फलस्थ अपना २ फल में स्थित होके प्रवेश करता है। जैसे मार्ग वीधि में १२० होता है। वैसे ही इसमें भी गुना किया जाय तो फल समापत्ति वीथि भी १२० है।

(फल समापत्ति समाप्त)

(१७३) इन कहनेवाले नम्बरों का क्रमशः गोत्रभू, वोदान, अनुलोमों का संख्या मान लीजिये

फिर इनको क्रमशः संक्षेप ४६ विस्तार २०४ "संक्षेप ३० विस्तार १८०" संक्षेप १२६ विस्तार ६२४ इन सब का मतलब

१९५ में है। देखिए त्रिहेतुक एक पृथक्जन, सात शैक्ष, आठ हुआ। इनको प्राप्तोचित अप्पना जवन चित्त निम्नलिखित है।

नव = नौ महग्गत कुशल बीस = मार्ग चित्त पन्द्रह अर्हत्त वर्जित फल	४४ है, इनको सौमनस्य और उपेक्षा, दो हिस्सा कर लो, पहला सौमनस्य यह है। चार रूपावचर कुशल ध्यान, बीस मार्ग चित्तों में से सोलह, पन्द्रह फल चित्तों में से बारह ३२ अप्पना जवन सौमनस्य हैं।

उपेक्षा यह है, एक रूपावचर कुशल पञ्चम ध्यान, बीस मार्ग चित्तों में से चार पञ्चम ध्यान पन्द्रह फल चित्तों में से तीन पञ्चम ध्यान" १२ उपेक्षा अप्पना जवन चित्त है। अर्हन्त प्राप्तोचित अप्पना जवन चित्त निम्नलिखित है।

नव = नौ महग्गत क्रिया पाँच अर्हत्त फल	१४ है, इनको भी सौमनस्य, और उपेक्षा दो हिस्सा कर लो।

पहला सौमनस्य यह है, पञ्चम ध्यान वर्जित चार रूप क्रिया, रूप क्रिया जैसे चार अर्हत्त फल, "आठ सौमनस्य अप्पना जवन चित्त है। उपेक्षा यह है, एक रूप क्रिया पञ्चम ध्यान, चार अरूप क्रिया, एक अर्हत्त फल पञ्चम ध्यान" छः उपेक्षा अप्पना जवन चित्त हैं। इसलिए छब्बीस महग्गत, लोकोत्तर अप्पना जवन चित्तों के पूर्व भाग में परिकम्म, उपचार, अनुलोम, गोत्रभू वोदान, नामों से जो जवन चित्त होता है। वह आठ ज्ञान सम्प्रयुक्त कामावचर जवनों में से एक न एक है। ऐसा जानिए

आठ यह है, महा कुशल से चार दो सौमनस्य और दो उपेक्षा, महाक्रिया से भी कुशल के समान चार।

(यह संक्षिप्त फल प्रवेशन वीथि है)

(१७८) अभिज्ञान वीथि का प्रकाशन

दिव्य चक्षु अभिज्ञान वीथि, दिव्य श्रोत०, इद्धि—ऋद्धि विधान०, परिचित्त-विज्ञानन०, पूर्वनिवासानुस्मृति०, यथा कर्मुपग०, अनागतांश अभिज्ञान वीथि, ऐसा सात हैं। इनको कुशल और क्रिया से गुना करने से चौदह फिर इनको मन्द और तीक्ष्ण से गुना करे, तो अट्ठाईस होता है। वीथि का नकशा निम्नलिखित है।

कर्म० आलोककसिण, तेजोकसिण, ओदातकसिणों में से एक न एक मनन

न द * म प उ अनु गो ध्यान

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

भवङ्ग

०००—

स्मरण रखना चाहिए कि यदि मन्द बुद्धि वाला हो तो परिक्रम, उपचार, अनुलोम, गोत्रभू, चार वार के बाद ध्यान जवन। यदि तीक्ष्ण बुद्धि वाला हो तो उपचार, अनुलोम, गोत्रभू, तीन बार के बाद ध्यान जवन, होता है। इस तरह से आठ समापत्ति से सम्पूर्ण वाला दूर और समीप रूप गोचर को देखने की इच्छा हो तो तीन कसिणों में से एक न एक को

मनन करके प्रवेश किया हुआ एक रूपावचर पञ्चम ध्यान, पादक ध्यान वीथि। इसके बाद अदृष्ट अनागत रूप को मनन कर, एतस्य रूपं पस्यामि २ ऐसा अधिष्ठितोत्पन्न काम-मनोद्वार वीथि। इसके पश्चात् पहले के समान फिर प्रवेशित पादक ध्यान रूप पञ्चम ध्यान वीथि, आख़िरकार अधिष्ठित किया हुआ प्रत्यक्ष रूप को मनन कर अत्यन्ताधिक जानने वाला एक ध्यानोत्पन्न रूप पञ्चम ध्यान-अभिज्ञान वीथि, ऐसा चार वीथि होकर अभिज्ञान होता है। शेष छः अभिज्ञान वीथियों में भी ऐसा ही समझिए। इसमें पृथक्जन शैक्ष के लिए रूप चतुर्थ और पञ्चम ध्यान, अर्हन्त के लिए, क्रिया चतुर्थ, और पञ्चम ध्यान को लीजिए। चतुष्क और पञ्चक, दोनों चित्त परिच्छेद में आ चुका है।

(१७५) पाँच वशीभाव-अभ्यास और सात अभिज्ञान का अधिष्ठान

अधिष्ठानवशीभाव	अधिष्टान करना
समापज्जन०	ध्यान में प्रवेश करना
वुट्ठान०	ध्यान से उठना
आवज्जन०	ध्यान को विचार करना
पच्चवेक्खणावसीभाव	वितर्कादि ध्यानङ्गों को विचारना

सात अभिज्ञानों में अधिष्ठान का, विधि

दिव्य चक्षु अभिज्ञान	एतस्य रूपं पस्यामि
दिव्य श्रोत०	एतस्य शब्दं श्रुणोमि
ऋद्धि विध०	सतंहोमि सहस्रं होमि
परिचित्त विज्ञानन०	एतस्य चित्तं जानामि
पूर्व निवास०	पूर्व निवासं स्कन्धं जानामि
यथा कर्मूपग०	अतीतं कर्म जानामि
अनागतांश अभिज्ञान	अनागतं स्कन्धं जानामि

(१७६) अभिज्ञानों का गोचर

दिव्य चक्षु अभिज्ञान	दूर प्रच्छन्न सूक्ष्म रूप गोचर
दिव्य श्रोत०	प्रत्यक्ष शब्द गोचर
ऋद्धि विध०	पादक ध्यान निर्मित रूप गोचर
परिचित्त विजानन०	भूत और भविष्यत् दो हप्ताओं के अन्दर का अन्य चित्त चैतसिक गोचर,
पूर्व निवास अभिज्ञान	पूर्व जन्मोत्पन्न अपना और अन्य पाँच स्कन्ध और स्कन्ध सम्बन्ध छः गोचर,
यथा कर्मूपग०	अतीत लौकिक कुशलाऽकुशल चित्त और चैतसिक गोचर,
अनागतांश	अनागत पाँच स्कन्ध और पञ्च स्कन्ध प्रतिबद्ध रूपादि छः गोचर

रूपावचर कुशल पञ्चम ध्यान जो है वह ध्यान प्राप्त तिहेतुक पृथग्जन और तीन फलस्थ, इन चारों के लिए अभिज्ञान होता है। रूपावचर क्रिया पञ्चम ध्यान जो है। वह अर्हन्त फलस्थ अर्हन्त के लिए अभिज्ञान होता है। ऐसा अच्छी तरह समझिए। अभिज्ञान वीथि समाप्त।

(१५७) निरोध समापत्ति का प्रकाशन

इसको कामलोक और रूपलोक से गुना करे तो दो होता है फिर अनागामि और अर्हन्त से गुना करे तो चार होता है। फिर इसको तीक्ष्ण और मन्द से गुना करे तो आठ होता है।

कर्म० कसिण प्रतिभाग निमित्त गोचर को मनन कर प्रथम ध्यान प्रवेश

भवङ्ग भवङ्ग न द ❀ म प उ अ

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००-

गो अनेकवार प्रथम ध्यानजवन भवङ्ग

०००—०००—०००—०००—०००—

कर्म० प्रथम ध्यानस्थित संस्कार विपस्सना

भवङ्ग भवङ्ग न द ❀ म ज

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

ज भवङ्ग भवङ्ग

०००—०००—०००—०००—०००—०००—

ऊपर लिखित नकशा के समान द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, पञ्चम ध्यान, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्या-

यतन, आकिंचन्यायतन, तक दो २ 'वीथि बना लो। इसमें गोचर मात्र ही अन्तर है। इस तरह पञ्च रूप ध्यान, तीन अरूप ध्यानों को क्रमशः प्रवेशन कर फिर आकिंचन्यायतन ध्यान से व्युत्थित होकर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन ध्यान को प्रवेश करता है।

कर्म कर्मनिमित्त आकिंचन्यायतन ध्यान गोचर को मनन करके

भवङ्ग भवङ्ग न द ॐ म प उ अ

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

गो दो बार नैवसंज्ञा०

०००—०००—-०००——हसाह तक चित्त, चैतसिक और चित्त जरूप निरोध होके, निर्वाण को मनन करके एक बार अनागामि फल एक बार अर्हन्त फल के बाद यथोचित्त भवङ्ग चित्त होकर निरोध होता है।

(१७८) ऊपर लिखित वीथियों का भाव प्रकाशन

आठ समापत्ति—"चतुकनय से चार रूपावचर और चार अरूप ध्यान" सम्पूर्ण अनागामि और अर्हन्त, राज्यसम्पत्ति को भोगने वाले नरपति के मानिन्द अथवा दिव्य सम्पत्ति को भोगने वाले इन्द्र की तरह प्रत्यक्षात्मत्व में शान्त सुख से रहने के लिए समापत्ति सुख को भोगने की इच्छा होकर एकान्त स्थान में बिछाए हुए आसन पर कर्मस्थानाभिमुख स्मृति से बैठकर प्रथम

ध्यान में प्रवेश करते हैं फिर उस ध्यान स्थित संस्कारों को अनित्यतादि त्रिलक्षणों से विदर्शन करते हैं। इसी तरह द्वि, त्रि, चतु, आका, विज्ञा, आकिंचन्यायतन तक प्रवेशन और विपस्सन करके आकिंचन्यायतन ध्यान से व्युत्थित होकर समापत्ति के अन्दर ही—ध्यान में प्रवेशित होते हुए ही १ नाना बद्ध अविकोपन, २ संघपतिमानन, ३ सत्थुपक्कोसन, ४ अद्धान परिच्छेद, इन चार पूर्व कार्य्यों को करने के वाद नैवसंज्ञानासंज्ञायतन ध्यान (अनागामि हो तो कुशल, अर्हन्त हो तो क्रिया) को प्रवेश करते हैं। रूप लोक में तो चार पूर्व कार्य्य करने की जरूरत नहीं। यदि कामसुगति में हो तो दो बार नैव० ध्यान जवन चित्त के अन्त में एक हप्ताह, रूपलोक में हो तो यथेच्छ चित्त, चैतसिक, चित्तजरूप निरोध से कर्मज, ऋतुजों की स्थिति और उत्पत्ति ही निरोध समापत्ति है। निरोध समापत्ति से व्युत्थिते समय अनागामि को एक बार अनागामि फल, अर्हन्त को एक बार अर्हन्त फल, जवन चित्त, अनेक बार भवङ्ग चित्त हो के निरोध है। चार पूर्व कार्य्य का भाव (१) मेरा आश्रम, भिक्षा पात्र, वस्त्रादि, जल, अग्नि, राजा, चोर, अप्रियों से नाश न हो। २ अगर हमें भिक्षु संघ प्रार्थना करे तो समापत्ति से व्युत्थित हो। ३ यदि भगवान् की आज्ञा हो तो समापत्ति से व्युत्थित हो। ४ हप्ताह पूरा होते ही समापत्ति विगत हो। यह चार पूर्व कार्य्य अधिष्टान कामसुगति लोक में ही किया जाता है। निरोध समापत्ति समाप्त।

(१७९) दौर्मनस्य वीथि प्रकाशन

सौमनस्य प्रतिसन्धिवाले को अति इष्ट, महन्तारमण, अवि-भूतारमण, प्रज्ञप्ति, महग्गत गोचर होकर दौर्मनस्य जवन के बाद उपेक्षा तदारमण होने का अवकास न हो तो भवङ्ग चित्त होना चाहिए। उन चित्तों में सौमनस्य भवङ्ग चित्त भी दौर्मनस्य जवन के उचित नहीं। उपेक्षा भवङ्ग चित्त भी प्रतिसन्धि से योग्य नहीं। इस जन्म में पूर्व काल में अभ्यास किया हुआ काम गोचर को मनन करके उपेक्षा सन्तीरण ही बगैर आवर्ज्जन के आगन्तुक भवङ्ग एक बार होकर निरोध के बाद उसी से अनन्तरादि हेतु लेकर प्रतिसन्धि के समान सौमनस्य भवङ्ग होता है। दौर्मनस्य वीथि में उपेक्षा सन्तीरण भवङ्ग चित्त, निरोध समापत्ति वीथि में फल चित्त, इन दोनों को छोड़कर बिना आवर्ज्जन के कोई वीथि चित्त नहीं। मार्ग वीथि में गोत्रभू, वोदान, फल जवन चित्त, फल प्रवेशन वीथि में उत्पन्न फल जवन चित्त, इन दोनों को छोड़कर शेष सब वीथियों में जवन और आवर्ज्जन, भिन्न गोचर विषय नहीं होता। ऐसा अच्छी तरह स्मरण कर लीजिए।

कर्म ० गतिनिमित्त — अति इष्ट गोचर

ती न द ❀ च सं ण वोट्ठ ज

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

० ज आगन्तुक मूल

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

यह वीथि एक अतीत भवङ्ग के उत्पत्ति क्षण के समान काल में रूप गोचर के आविर्भाव के अनुसार होता है। नकशा का सारांश, अतीतभवङ्ग भवङ्ग-चलन भवङ्गोपच्छेद यह तीन कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्तों में से एक न एक ही गोचर है। चक्षु-विज्ञान, सम्प्रतिच्छन, सन्तीरण, वोट्ठब्बन, सात वार जवन अति इष्ट गोचर हैं। आगन्तुक भवङ्ग का गोचर ऊपर लिख चुका, मूल भवङ्ग जैसा अतीत भवङ्ग, कर्म० गोचर है। इसमें ८ लोभ २ मोह १ हसितुप्पाद, १६ कुशल और क्रिया कुल २७ चित्तों को को छोड़कर बाकी २७ चित्त लब्ध हैं। काम चित्त ५४,,' यह दौर्मनस्य वीथि चक्षुद्वार वीथि, श्रोत०, घ्रान०, जिह्वा०, काय, मनोद्वार वीथि, भेद से छः हैं। इन्हों में से चक्षुद्वार वीथि में, एक विगत, अतीत, भवङ्ग, दो विगत, अतीत भवङ्ग तीन विगत अतीत भवङ्ग ऐसा तीन किस्म के वीथि होने से पाँच द्वार में १५ वीथि मनोद्वार में तीर्थिकों के आत्मा में एक वीथि, ध्यानच्युत त्रिहेतुक पुद्गल में एक कुल १७ वीथि हैं। १५ पाँच द्वार वीथि समाप्त।

(१८०) दौर्मनस्य मनोद्वार वीथि का प्रकाशन

कर्म०

च्युत ध्यान गोचर

न द म जवन

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

ज आगन्तु मूल मूल ०

०००—०००—०००—०००—०००—

कर्म०　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　बुद्धादि अतिइष्ट गोचर

न　　द　　म　　ज

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

ज　आगन्तु मूल　मूल

०००—०००—०००—०००—०००—

यह दो, सौमनस्य प्रतिसन्धि वाले को दौर्मनस्य जवन होते समय महग्गत गोचर बुद्धादि अतिइष्ट गोचर होने से उपेक्षा तदारमण नहीं हो सका। उसी जवन के बाद उपेक्षा सन्तीरण पूर्व परिचय कोई न कोई काम गोचर को लेकर एक आगन्तुक भवङ्ग होने के अनन्तर उससे मदद पाकर महाविपाक सौमनस्य सहगत चित्त मूल भवङ्ग होता हुआ निरोध होता है। दौ० मनोद्वार समाप्त।

(१८१) मरणासन्न वीथि प्रकाशन

मरणासन्न वीथि जो है, वह चक्षुद्वार वीथि० मनःद्वार वीथि भेद से छः है। उनमें से चक्षुद्वार वीथि जो है वह भी जवन के बाद च्युति, जवन और भवङ्ग के बाद च्युति तदारमण के बाद च्युति, तदारमण और भवङ्ग के पीछे च्युति-वश चार है। इसके समान बाकी मनोद्वार तक प्रत्येक चार २ होने से ६+४ छः द्वारों में २४ होते हैं। यह सब मरणासन्न वीधि पहले लिखे हुए पञ्च-द्वार और मनोद्वारों में यथोचित शामिल हैं।

(वीथि चत्तावली) अतीत भवङ्ग, भवङ्ग चलन, भवङ्गु पच्छेद, पञ्चद्वारावर्ज्जन, चक्षुविज्ञान, सम्प्रतिच्छन, सन्तीरण

चोट्ठब्बन पाँच वार मरणासन्न जवन, बाद च्युति, ऊपर लिखितानुसार चार वीथि जानिए। इसके बाद नया जन्म में एक प्रतिसन्धि, बाद १५ वा १६ भवङ्ग चित्त, फिर भवङ्ग चलन, भवङ्ग पच्छेद, मनोद्वारावर्ज्जन, सात वार भवनिकन्ति लोभ जवन, इसके बाद अनेक बार भवङ्ग होकर निरोध होता है।

कर्म० प्रत्यक्ष रूप गोचर

ती न द प च सं ण वो
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

ज ज
०००—०००—०००—०००—०००—

नया जन्म

त त च्यु प्रतिसन्धि भवङ्ग भवङ्ग भ भ
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

भ भ भ भ भ भ भ भ भवङ्ग
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

भवङ्ग भवङ्ग भवङ्ग न द म जवन भवनि कन्ति
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

लोभजवन ज ज ज भवङ्ग भ भ भ
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

भ भवङ्ग अनेक
०००—०००—०००—०००—होकर निरोध है।

इसमें पहला वीथि जो है, प्रत्यक्ष पूराण मरणासन्न, बीच वाला जो है। नया जन्म प्रतिसन्धि, आखिर जो है भवनिकन्तिक, कुल तीन वीथि को एकट्ठा कर पूर्व भवङ्ग और पश्चिम भवङ्ग को जोड़ के प्रकाशित किया हुआ लम्बी वीथि समझिए। इसमें क्रिया जवन वर्जित ४५ कामावचर चित्त ही पहला प्रत्यक्ष पूराण भवङ्ग चित्त और च्युति चित्त, कर्म, कर्म निमित्त, गति-निमित्तो में से एक न एक गोचर हों, पञ्चद्वारावर्ज्जनादि वीथि-चित्त, मृत्यु के निकट काल में नवागत प्रत्यक्ष रूप गोचर को लेते हैं। नवीन प्रतिसन्धि और नया भवङ्गों का गोचर कर्म, कर्मनिमित्त, गतिनिमित्तों में एक न एक हैं। नया जन्म का मनोद्वारावर्ज्जन, सात वार भवनिकन्ति लोभ जवनों का गोचर भी नवीन प्रतिसन्धि-विपाक नामस्कन्ध कटत्तारूप है। चक्षु विज्ञानादि दश चित्त, च्युति चित्त से प्रतिलोम गिनने से सत्तरह चित्तक्षण के समान कालोत्पन्न पञ्च वस्तु को आश्रित है। प्रथम भवङ्ग और बाकी चित्त, च्युति चित्त के ऊपर सत्तरह चित्तक्षण से समान समयोत्पन्न हृदय वस्तु को आश्रित हैं। पश्चिम भवङ्ग शेष सब चित्त, अपने से पहले पहल अनन्तर चित्त के समान कालोत्पन्न हृदय वस्तु को आश्रित हैं। लोक से ग्यारह कामलोक में होते हैं। पुद्गल से कामलोक से च्युति होकर काम लोकोत्पन्न चार पृथक्जन स्रोतापन्न और सकृदागामि, इन छः पुद्गलों में ही होते हैं।

पञ्चद्वार मरणासन्न वीथि समाप्त।

(१८२) मरणासन्न मनोद्वार वीथि प्रकाशन

कर्म-कर्मनिमित्त गतिनिमित्त पूर्व प्रतिसन्धि गोचर

न द ॐ म ज मरणासन्न ज

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००–०००–

त त च्युति प्रति भवङ्ग १५ १६ भ म ज

०००—०००—०००—०००—०००—०००—:००—०००–०००–

भवनि कन्ति लोभजवन ज भवङ्ग अनेक

०००—०००—-०००—-०००—०००—०००—०००—०००-—

इसमें कामलोक से च्युति होकर कामलोक में होने वाले को पञ्चद्वार के माफ़िक चार वीथि समझिए। इसी तरह कामलोक से मरण होकर उसी में पुनरोत्पन्न वीथि, सात कामसुगति से मरण होकर पन्द्रह रूप लोकोत्पन्न वीथि, चार अरूपलोकोत्पन्न वीथि, १५ रूपलोक से च्युति होकर वहाँ ही पुनरुत्पन्न वीथि ऊपर चार अरूप लोकोत्पन्न वीथि, ७ कमसुगत्योत्पन्न वीथि, अरूपलोक से च्युति होकर फिर उसी में ही उत्पन्न वीथि, काम सुगत्योत्पन्न वीथि, सातकामसुगति से च्युति होकर असंज्ञसत्त-लोकोत्पन्न वीथि, असंज्ञसत्तलोक से जीवित नवकरूप से च्युति होकर फिर सतकामसुगत्योत्पन्न वीथि, इत्यादि ये पञ्चद्वार और मनोद्वार, संक्षेप से प्रत्येक द्वार में चार २ प्राप्त होने से २४ मरणासन्न वीथि है। विस्तार से तो अनगनित है।

(१८३) असंज्ञसत्तलोक में होनेवाला वीथि प्रकाशन

प्रज्ञप्ति कर्मनिमित्त गोचर

न द म ज, मरणासन्न जवन ज ज
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

च्युति रूप प्रतिसन्धि नया जन्म
०००——०००——इस तरह पाँच सौकल्प तक स्थित है।

जीवितछुष्क, जीवित नवकलाप असंज्ञसत्तलोक से मनुष्यलोक नाम नवीनजन्म

च्युति प्रतिसन्धि भवङ्ग नाम भवङ्ग
०००—०००—-०००—०००—०००—

१४-१५-१६ न द म जवन
०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—

जवन जवन भवङ्ग
०००—०००—०००—०००—०००—यह दो वीथि कामलोक से च्युति होकर असंज्ञ सत्तलोक में जीवित छुष्क, जीवित नव-कलाप ही सत्तरह आयु पूरा हो के निरोध और उत्पत्ति होते २ नदी के स्रोत जैसे लगातार पाँच सौ महाकल्प तक रूप ही भवङ्ग का काम करते हुए स्थित है। प्रज्ञप्ति कर्मनिमित्त के विषय में वायोकसिण प्रज्ञप्ति, केचित्‌मत में आकाश कसिण प्रज्ञप्ति को लीजिए। इस कसिण प्रज्ञप्ति को मनन कर पञ्चम ध्यान प्राप्त कर्म क्रिया वादी पुद्गल, धी चित्तं, धी चित्तं, इत्यादि से नाम में ऐब देखकर च्युति हो, तो जैसा मरण हुआ वैसा ही चित्र मूर्ति जैसे, सूरत होकर असंज्ञसत्त्वं लोक में प्रतिस्थित होने के बाद

वहाँ से च्युति होकर कामलोक में होने वाले के वीथि है। असंज्ञसत्त्व के प्रतिसन्धि, भवङ्ग और च्युति रूप ही प्रतिसन्धि भवङ्ग और च्युति हैं। काम प्रतिसन्धि और भवङ्ग काम तिहेतुक और दुहेतुक प्रतिसन्धि भवङ्ग ही होते हैं। असंज्ञ सत्तलोक से च्युति वाले को मरणासन्न जवन, न होने से कोई कर्म, रूप गोचरादि बिना लिए काम लोक में प्रतिसन्धि ग्रहण, नया दूसरा जन्म कैसा होता है? असंज्ञसत्तलोक में आने के पूर्वोत्पन्न पाँच सौ महाकल्प के ऊपर प्राप्त किया हुआ अपना भावना के आगे उपचार जवन चित्त ने आकर्षित होकर दिया हुआ कर्म निमित्त गतिर्निमित्त को लेकर कामलोक में प्रतिसन्धि संज्ञा होता है इसमें दो अहेतुक, चार दुहेतुक, इन छः च्युति के बाद दश काम प्रतिसन्धि होता है। चार तिहेतुक काम च्युति के बाद, बीस प्रति-सन्धि होता है। अरिया के चार तिहेतुक च्युति के बाद तेरह तिहेतुक प्रतिसन्धि होता है। वृहत्फल तक दश रूपलोक में पाँच पृथक्जन च्युति के बाद सत्तरह सहेतुक प्रतिसन्धि होता है। शुभकृत्स्न तक नव रूपलोक में चार आर्य्य च्युति के बाद अपना प्रतिसन्धि के साथ ऊपर २ नव रूपारूप प्रतिसन्धि होता है। वृहत्फल में एक आर्य्य च्युति के बाद एक अपना प्रतिसन्धि होता है। असंज्ञसत्त च्युति के बाद आठ महाविपाक प्रतिसन्धि होता है। चार नीचे शुद्धावास एक च्युति के बाद एक ऊपर प्रतिसन्धि होता है। अकनिष्ट च्युति के बाद प्रतिसन्धि नहीं होता। चार पृथक्जन अरूप च्युति के बाद अपना प्रतिसन्धि

के साथ ऊपर चार अरूप प्रतिसन्धि, चार तिहेतुक काम प्रतिसन्धि होता है। आर्य्य अरूप च्युति के बाद अपना प्रतिसन्धि के साथ नीचे २ ध्यान को छोड़कर ऊपर चार, तीन, दो, एक प्रतिसन्धि होता है। बृहत्फल, अकनिष्ठ, नैवसंज्ञाना संज्ञायतन, इन तीन लोकों में शैक्ष आर्य्य ब्रह्मालोग यदि इस प्रत्यक्ष में मुक्ति न हो सके। तब आयु प्रमाण पूरा होने के बाद च्युति हो तो भी अन्य लोक में न होकर अपना २ लोक में ही फिर प्रतिसन्धि ग्रहण होते हैं। अतएव आभिधर्म कोविद आचर्य लोग, वेहप्फले अकनिट्ठे भवग्गे च पतिट्ठिता, न पुनाञ्ञत्थ जायन्ति, सब्बेअरियपुग्गला, ब्रह्मलोकगताहेट्ठा, अरियानोपपज्जरे, इस श्लोक को कहे हैं।

(१८४) बुद्ध और अर्हन्तों का मरणासन्न वीथि प्रकाशन

छः द्वारों में से मनोद्वार ही है। तदारमण के बाद च्युति, तदारमण और भवङ्ग के बाद च्युति जवन के बाद च्युति, जवन और भवङ्ग के बाद च्युति, इस प्रकार चार वीथि होता है।

कर्म० यथोपस्थित नाम और रूप स्वभाव को मनन कर

न द म ज ज ज

०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००—०००

तदा तदा च्युति

०००—०००—०००—अनुपादि शेष निर्वाण धातु प्राप्त है।

यह तो हुआ तदारमण के बाद च्युति होकर निर्वाण प्राप्त अर्हन्त का वीथि। इस तरह बाकी तीन वीथियों को भी बना लीजिए। इसमें भवङ्ग और च्युतिः चार काम तिहेतुक भवङ्ग और च्युतियों में से एक न एक मरणासन्न जवन भी चार महा क्रिया ज्ञानसंप्रयुक्त जवनों में से अर्हन्तों को पुनः जन्म न होने से एक न एक मनोद्वारावर्ज्जन, पाँच वार मरणासन्न जवन, दो तदारमण, च्युति, पृथक्जन शैक्ष के समान, कर्म, कर्मनिमित्त गतिनिमित्त को नहीं लेते। यथोपस्थित संस्कार, लक्षण रूप, प्रज्ञप्ति ही मरणासन्न जवन चित्त का गोचर होते हैं।

(१८५) कामलोकोत्पन्न वालों का लब्ध चित्त प्रकाशन

हसितुप्पाद वर्जित उनतीस २९ अशोभण चित्त, आठ कामावचर कुशल, यह सैंतीस ३७ चित्त प्रायः दुर्गति अहेतुक वालों में होते हैं। मुख्यतः बारह अकुशल, सात अकुशल विपाक, चार ज्ञान विप्पयुक्त कुशल, यह तेईस २३ चित्त ही होते हैं। इसके समान प्रेतलोक, असूरकाय लोक, तिर्यक्लोक में भी जान लीजिए विस्तार चाहे तो मिलिन्द प्रश्न में देखिये। सुगति अहेतुक, दुहेतुकों में पहले ३७ चित्तों में चार ज्ञान विप्पयुक्त महाविपाक को मिलाकर ४१ हैं। तिहेतुक पृथक्जन में उस ४१ में ४ ज्ञान सम्प्रयुक्त महाविपाक मिलाकर ४५ होते हैं। स्रोतापत्ति फलस्थ, सकृदागामि फलस्थों को ४५ में से चार दिट्ठिगत सम्प्रयुक्त, एक विचिकित्सा, इन पाँचों को निकाल दें फिर अपना २ फल को

मिलाकर प्रत्येक ४१ होते हैं। अनागामि फलस्थ में दो दोषमूल चित्त को हटा के ३९ चित्त होते हैं। अर्हन्त में २३ कामविपाक ११ काम क्रिया, अर्हन्त फल, यह ३५ चित्त होते हैं। यह तो हुआ ध्यान रहितों के चित्त। यदि ध्यान प्राप्तों का चित्त जानना चाहे तो तिहेतुक पृथक्जन के ४५ चित्त में नव महग्गत कुशल मिलाकर ५४ नीचे के दो फलस्थों में प्रत्येक पचास २ है। अनागामि में ४८ अर्हन्त में नव महग्गत क्रिया मिलाकर ४४ चित्त होते हैं। चार मार्ग स्थितों को केवल प्रत्येक एकही अपना २ मार्ग चित्त है।

(१८६) रूपावचर पुद्गलों का चित्त प्रकाशन

रूप लोक में अहेतुक, द्विहेतुक नहीं और ध्यान से रहित भी, तिहेतुक पृथक्जन को तीस अशोभन चित्त में से, दो घ्राणविज्ञान दो जिह्वा विज्ञान, दो कायविज्ञान एक हसितुप्पाद, दो द्वेष मूल चित्त, इन नौ चित्तों से शेष एकीसचित्त, आठ महाकुशल, महग्गत कुशल नौ ध्यान चित्त, पाँच रूपविपाक, यह ४३ चित्त लब्ध है। स्रोतापन्न, सकृदागामिओं अनागामियों को, ४३ में से चार दृष्टिगत सम्प्रयुक्त और विचिकित्सा, इन पाँचों को निकालकर अपनार फल चित्त मिला के ३९ लब्ध हैं। अर्हन्तों को बीस क्रिया चित्त, नौ अहेतुक विपाक, पाँच रूप विपाक, इन ३४ चित्तों में अपना फल चित्त मिलाकर ३२ चित्त लब्ध है। अहेतुक विपाक १५ हैं, सात अकुशल विपाक, आठ कुशल विपाक। इनमें से दो घ्राण

विज्ञान, दो जिह्वा विज्ञान, दो कायविज्ञान, को छोड़कर बाकी नौ अहेतुक विपाक होता है।

(१८७) अरूप पुद्गलों का चित्त प्रकाशन

तिहेतुक पृथक्जन अरूप पुद्गल को दो द्वेष मूल वर्जित दश अकुशल, एक मनोद्वारावर्ज्जन, आठ महाकुशल, चार अरूप कुशल और चार विपाक यह २७ चित्त लब्ध हैं। स्रोतापन्नादि तीन आर्य्यों को २७ में से चार दृष्टिगत सम्प्रयुक्त, एक विचिकित्सा, इन पाँचों को हटा के बाकी २२ में अपना २ फल मिलाकर प्रत्येक तेईस २ लब्ध हैं। अरूप अर्हन्तों को आठ काम क्रिया चार अरूप विपाक और चार क्रिया, एक मनोद्वारावर्ज्जन, एक अपना फल, यह अठारह चित्त लब्ध हैं।

(१८८) वीथि चित्तों का प्रकाशन

लोक में वीथि चित्तोत्पत्ति प्रकाशन, वीथि मुक्त नौ महग्गत विपाकों को हटाकर कामलोक में अस्सी ८० वीथि चित्त होते हैं। उनमें से द्वेषमूल, आठ महाविपाक, छः घ्राणादि, इन सोलह चित्तों को हटाकर शेष ६४ वीथि चित्त रूपलोक में होते हैं। उनमें से भी दो चक्षुविज्ञान, दो श्रोतविज्ञान, तीन मनोधातु, तीन सन्तीरण, एक हसितुप्पाद, पाँच रूप क्रिया, एक श्रोतापत्ति मार्ग, कुल २२ चित्तों को हटाकर बाकी ४२ वीथि चित्त अरूप लोक में होते हैं।

(१८९) वीथि चित्तों का पृथक् २ करके स्वभाव प्रकाशन

दश पञ्चविज्ञान द्विक, तीन मनोधातु, चार मार्ग चित्त, यह सत्रह चित्त, एक बार ही होते हैं। एक सुख सन्तीरण चित्त, सन्तीरण कार्य में एक वार, तदारमण कार्य में दो बार होता है। नैव संज्ञानासंज्ञायतन कुशल और क्रिया को छोड़कर शेष पचीस महग्गत चित्त, आदिकर्मिक वीथि के समय एक बार ध्यानसमापज्जन वीथि के समय दो बार अथवा अनेक बार होते हैं। एक मनोद्वारावर्ज्जन चित्त, आवर्ज्जन कार्य में एक बार, वोट्ठब्बन कार्य में दो या तीन बार होते हैं। दश काम प्रतिसन्धि चित्त, प्रतिसन्धि, और च्युति कार्य में एक बार, तदारमण कार्य में दो बार, भवङ्ग कार्य में अनेक बार होते हैं। नैवसंज्ञाना संज्ञायतन, कुशल और क्रिया, यह दो चित्त, आदिकर्मिक वीथि में एक बार, समापज्जन वीथि में अनेक बार होते हैं। स्रोतापत्ति और सकृदागामि, यह दो फल चित्त, मन्दबुद्धि वाले को दो बार और तिक्खबुद्धि वाले को तीन बार, फल समापज्जन वीथि में अनेक बार फलजवन होते हैं। अनागामि और अर्हत्तफल, यह दो फल चित्त, निरोधसमापत्ति से उठते समय एक बार फल जवन, मन्दबुद्धि वाले को दो बार, तिक्खबुद्धि वाले को तीन बार, फलसमापत्तिवीथि में अनेक बार होते हैं। बारह अकुशल, चार ज्ञानविप्पयुक्त महाकुशल और चार ज्ञानविप्पयुक्त महा क्रिया, एक हसितुप्पाद, यह एक्कीस चित्त, मरणासन्न काल में

पाँच वार, मूर्च्छा काल में पाँच बार होते हैं। आठ ज्ञानसंम्प-युक्त महाकुशल और महाक्रिया, चित्त, तिक्तबुद्धिवाले को उपचार, अनुलोम, गोत्रभू, तीन बार, मन्द बुद्धि वाले को परिकर्म, उप-चार, अनुलोम, गोत्रभू, चार बार, मरणासन्न काल में पाँच बार मूर्च्छाकाल में छः बार, प्राकृति काल में सात बार होते हैं। सब मिला लेने से नावासी चित्त हैं।

१	७	एक बार होता है।	८९ चित्त
	१	१ वार २ बार	
२	५	१ वार २ वार अनेक वार	
	१	१ वार २ वार ३ वार	
१०		१ बार २ वार अनेक वार	
	२	१ वार २ वार अनेक वार	
	२	२ वार ३ वार अनेक वार	
	२	१ वार २ वार ३ वार अनेक वार	
२	१	५ वार ६ वार ७ वार	
	८	३ वार ४ वार ५ बार छः वार ७ वार	

चतुर्थ वीथि परिच्छेद का सारांश समाप्त।

ဝတ်ဆရာကြွေးဦးသွင်ဗိုလ်
ရွှေကတော့ဒေါ်ဒေါ်သိန်း

पाँच बार, मूर्च्छा काल में पाँच बार होते हैं। आठ ज्ञानसं[illegible]युक्त महाकुशल और महाक्रिया, चित्त, तिक्ष्णबुद्धिवाले को उपचार, अनुलोम, गोत्रभू, तीन बार, मन्द बुद्धि वाले को परिकर्म, [illegible] बार, अनुलोम, गोत्रभू, चार बार, मरणासन्न काल में पाँच बा[illegible] मूर्च्छाकाल में छः बार, प्राकृति काल में सात बार होते हैं। [illegible] मिला लेने से नानावीथि चित्त हैं।

१ ७ एक बार होता है।
१ १ बार २ बार
२ [illegible] १ बार २ बार अनेक बार
१ १ बार २ बार ३ बार
१० १ बार २ बार अनेक बार
२ १ बार २ बार अनेक बार
२ २ बार ३ बार अनेक बार
२ १ बार २ बार ३ बार अनेक बार
२ ४ ५ बार ६ बार ७ बार
८ ३ बार ४ बार ५ बार छः बार ७ बार

८९ चित्त

चतुर्थ वीथि परिच्छेद का सारांश समाप्त।

စက်သူဌေးဦးသွင်-သူ
ဌေးကတော်ဒေါ်ဒေါ်သိန်း